माणिकचन्द्र-दि०-जैनग्रन्थमालायाः पञ्चत्रिंशतितमो ग्रन्थः

पण्डितराजमल्लविरचितम्

जम्बूस्वामिचरितम्

अध्यात्म-कमलमार्तण्डश्च



संशोधकः

श्रीजगदीशचन्द्रशास्त्री एम्० ए०



प्रकाशिका

मा०-दि०-जैनग्रन्थमाला-समितिः



आश्विन १९९३ वि



मूल्यं सार्धरूप्यकम्

प्रकाशक
नाथूराम प्रेमी
मंत्री मा. दि. जैनग्रंथमाला
हीराबाग, बम्बई

मुद्रक
रघुनाथ दिपाजी देसाई,
न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस,
६ केळेवाडी गिरगांव बंबई ४



जिनवाणी भक्त लाला मुसद्दीलालजी वल्द उम्मेदसिंहजी
[आपने इस ग्रन्थमालाके स्थायी फण्डमें एकमुश्त १ [illegible] १) रु० दिये हैं और इसके समस्त ग्रन्थोंका सबसे अधिक प्रचार किया है।]
जन्मतिथि—१ जुलाई सन् १८५८ ई०

प्रस्तावना

कवि राजमल्ल

दिगम्बर-परम्परामें राजमल्ल अथवा रायमल्ल नामके कई विद्वान् हो गये हैं। प्रस्तुत विद्वान् पण्डित राजमल्ल अथवा कवि राजमल्लके नामसे प्रख्यात थे। आप अपने नामके साथ 'स्याद्वादानवद्यगद्यपद्य विद्याविशारद' विशेषणका प्रयोग करते हैं। कवि राजमल्लकी रचनाओंके ऊपरसे मालूम होता है कि आप जैनागमके बड़े भारी वेत्ता एक अनुभवी विद्वान् थे। आपने जैन वाङ्मयमें पारंगत होनेके लिये कुन्दकुन्द समन्तभद्र, नेमिचन्द्र, अमृतचन्द्र आदि विद्वानोंके ग्रन्थोंका विशाल तथा सूक्ष्म दृष्टिसे अध्ययन और आलोडन किया था। पं० राजमल्ल केवल आचार-शास्त्रके ही पण्डित न थे, बल्कि आपने अध्यात्म, काव्य और न्यायमें भी कुशलता प्राप्त की थी, यह आपकी विविध रचनाओंसे स्पष्ट मालूम होता है।

पं० राजमल्ल स्वयं अपने विषयमें कोई परिचय नहीं देते। इसलिये आप कहाँके रहनेवाले थे, आपके गुरुका क्या नाम था इत्यादि बातोंकी जानकारीसे हमें सर्वथा वंचित ही रहना पड़ता है। लाटी-संहिताकी प्रशस्तिमें एक स्थानपर आप अपनेको हेमचन्द्रकी आम्नायका विद्वान् कहकर उल्लेख करते हैं। इससे केवल इतना ही ज्ञात

होता है कि आप हेमचन्द्रकी आम्नायके थे। पर ये हेमचन्द्र कौन थे इसका कुछ पता नहीं चलता।

राजमल्लकी कृतियाँ

आजसे अनेक वर्ष पूर्व जब स्व० पं० गोपालदासजी बरैयाकी कृपासे जैन विद्वानोंमें पञ्चाध्यायी नामक ग्रन्थके पठन-पाठनका प्रचार हुआ, उस समय लोगोंकी यह मान्यता हो गई कि यह ग्रन्थ अमृतचन्द्र-सूरिकी रचना है। परन्तु लाटीसंहिताके प्रकाशमें आनेपर यह धारणा सर्वथा निर्मूल सिद्ध हुई। और अब तो यह और भी निश्चय-पूर्वक कहा जा सकता है कि पञ्चाध्यायी, लाटीसंहिता, जम्बूस्वामि चरित और अध्यात्मकमलमार्तण्ड ये चारों ही कृतियाँ एक ही विद्वान् पं० राजमल्लकी हैं।

पञ्चाध्यायीके मङ्गलाचरणमें ग्रन्थकार पञ्चाध्यायीको 'ग्रन्थराज' के नामसे उल्लेख करते हैं और इस स्वात्मका लिखनेमें प्रेरित होते हैं इस ग्रंथको पाँच अध्यायोंमें लिखनेकी प्रतिज्ञा की गई है। दुर्भाग्यसे

---

१ पं० जुगलकिशोरजीका कहना है कि यहाँ जिन हेमचन्द्रका उल्लेख है वे ही काष्ठासंघी भट्टारक हेमचन्द्र जान पड़ते हैं, जो माथुरगच्छ और पुष्कर गणान्वयी भट्टारक कुमारसेनके पट्टशिष्य तथा पद्मनन्दि भट्टारकके पट्टगुरु थे और जिनकी कविने लाटी-संहिताके प्रथम सर्गमें बहुत प्रशंसा की है। ... ...इन्हीं भट्टारक हेमचन्द्रकी आम्नायमें ताल्हू विद्वान्को भी सूचित किया है। इस विषयमें कोई सन्देह नहीं रहता कि कवि राजमल्ल एक काष्ठासंघी विद्वान् थे। आपने अपनेको हेमचन्द्रका शिष्य या प्रशिष्य न लिखकर आम्नायी लिखा है, और फामन के दान मान आसन आदिसे प्रसन्न होकर लाटी-संहिताके लिखनेको सूचित किया है। इससे यह स्पष्ट ध्वनि निकलती है कि आप मुनि नहीं थे बहुत संभव है कि आप गृहस्थाचार्य हों या ब्रह्मचारी आदिके पदपर प्रतिष्ठित हों। लाटीसंहिताकी भूमिका (माणिकचन्द ग्रन्थमाला) पृ० ११

यह समस्त ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता। जितना उपलब्ध है उसमें केवल दो प्रकरण मिलते हैं—एक द्रव्यसामान्यनिरूपण जिसमें ७७० श्लोक हैं, और दूसरा द्रव्यविशेषनिरूपण जिसमें ११४५ श्लोक हैं। दूसरा प्रकरण अधूरा है। इन दोनोंको मिलाकर लगभग पौने दो अध्याय कहा जा सकता है। पंचाध्यायी कविकी सर्वोत्तम प्रौढ़ रचना प्रतीत होती है। जीवोंको सुगम उक्तिसे धर्मका बोध करानेके लिये ही कवि इस ग्रन्थकी रचना करनेमें प्रेरित हुए हैं। इसमें प्रतिपाद्य विषयको शंका-समाधानके रूपमें उपस्थित करके विषयको बहुत ही सुन्दर और सरलरूपमें रक्खा गया है। द्रव्य, गुण, पर्याय, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य प्रमाण, नय आदिसंबंधी द्रव्यानुयोगकी चर्चाको ग्रन्थकारने अनेक दृष्टांत आदि देकर तार्किक दृष्टिसे खूब ही प्रस्फुटित किया है। विशेष करके कविका व्यवहार और निश्चयनयका समन्वय करना, श्रद्धा आदि गुणोंसे स्वात्मानुभूतिकी उत्कृष्टताका प्रतिपादन करना आदि, कविकी मौलिक प्रतिभा, समर्थता और अनुभवपूर्णताको द्योतित करता है। निस्सन्देह पंचाध्यायी अपने ढंगकी एक अनोखी ही रचना है।

कविकी दूसरी रचना लाटीसंहिता है। यह आचार-शास्त्रका

---

१ अध्यात्मकमलमार्तण्डमें भी द्रव्यसामान्य और द्रव्यविशेषके निरूपणके लिये दो अलग अलग परिच्छेद रखे गये हैं। इसी तरह पंचाध्यायीमें भी द्रव्यसामान्य और द्रव्यविशेषनिरूपणको अलग अलग अध्याय समझा जा सकता है।

२ सर्वोऽपि जीवलोकः श्रोतुंकामो वृषं हि सुगमोक्त्या।
विज्ञप्तौ तस्य कृते तत्रायमुपक्रमः श्रेयान्। १-६।

३ स्वानुभूतिसमावेश(शि)न् सन्ति श्रद्धादयो गुणाः।
स्वानुभूतिं विनाभासा नार्थाच्छ्रद्धादयो गुणाः २-४१७।

ग्रन्थ है। कविने इस रचनाको अनुच्छिष्ट और नवीन कहकर सूचित किया है। इसमें सात सर्ग हैं। इसकी पद्य-संख्या लगभग १६०० के है। यह ग्रन्थ अग्रवाल-वंशावतंस गर्गगोत्री साहु दूदाके पुत्र संघके अधिपति 'फामन' नामके धनिकके लिये बनाया गया था। कविने फामनके वंशका विस्तृत वर्णन करते हुए, फामनके पूर्वजोंका मूल निवासस्थान 'डोकनि' नगरी बताया है। इन फामनने स्वयं ही वैराट नगरके 'ताल्हू' नामक विद्वान्की कृपासे धर्म-लाभ किया था। कविने इसी वैराट नगरके जिनालयमें रहकर लाटी-संहिताकी रचना की है। लाटी-संहितामें कविने वैराट नगरका और इस नगरके स्वामी अकबर बादशाहका विस्तृत वर्णन किया है। यह सब ऐतिहासिक वर्णन लाटी-संहिताके कथामुख-वर्णन नामके प्रथम सर्गमें उपलब्ध होता है। अन्य छह सर्गोंमें ग्रन्थकारने आठ मूलगुण, सात व्यसन सम्यग्दर्शन और श्रावकके बारह व्रतोंका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। ग्रन्थमें सम्यग्दर्शनका वर्णन करनेके लिये दो सर्ग और अहिंसाणुव्रतके लिये एक स्वतंत्र सर्गकी रचना की गई है। ग्रन्थमें अनेक उद्धरण 'उक्तं च' के रूपमें पाये जाते हैं; जो विशेष करके कविके गोम्मटसार-सटीक आदि सिद्धान्त-ग्रन्थोंके और कुन्दकुन्द आचार्यके अध्यात्म-ग्रन्थोंके विशाल विस्तृत अध्ययनको सूचित करते हैं। कवि राजमल्लने लाटी-

---

१ "यह वैराट नगर वही स्थान मालूम होता है जिसे 'वैराठ' भी कहते हैं और जो जयपुरसे करीब ४ मीलके फासलेपर है। किसी समय यह विराट अथवा मत्स्य देशकी राजधानी थी और जहाँपर पाण्डवोंका गुप्त वेशमें रहना कहा जाता है।" लाटीसंहिताकी भूमिका पृ. १९

संहिताको वि० सं० १६४१ में आश्विन-शुक्ला दशमी रविवारके दिन समाप्त किया था।

कवि राजमल्लकी तीसरी रचना जम्बूस्वामिचरित है। यह ग्रन्थ वि० सं० १६३२ में चैत्र वदी ८ के दिन पुनर्वसु नक्षत्रमें बनाकर समाप्त किया गया था। अर्थात् यह काव्य लाटी-संहितासे नौ वर्ष पूर्व बन चुका था। उस समय अर्गलपुर (आगरे) में अकबर बादशाहका राज्य था। इसमें भी कविने चगत्ता (चगताई) जातिके शिरोमणि बाबर और हुमायूँ बादशाहका वर्णन करते हुए बादशाह अकबरका सविस्तर वर्णन दिया है, और अकबरके 'जेजिया' कर और मद्यकी बन्दी करानेका उल्लेख किया है। ग्रन्थकारने इस काव्यको अग्रवाल जातिमें उत्पन्न गर्गगोत्री साहु (साधु) टोडरके लिये बनाया था। ये साहु टोडर महाउदारता, परोपकारिता, दानशीलता, विनयसंपन्नता आदि सर्व गुणोंसे सम्पन्न थे। ये भटानियाँ (कोल[1]) नगरके रहनेवाले, काष्ठसंघी कुमारसेनकी आम्नायके थे। कविने लाटी-संहिताकी तरह यहाँ भी साहु टोडरके वंश आदिका विस्तृत वर्णन किया है। साहु टोडरको कविने वैष्णवमतानुयायी गढमल्ल साहु और अरजानी-पुत्र ठाकुर कृष्णमगल चौधरीका प्रियपात्र, तथा टकसालके काममें बहुत दक्ष बताया है।

एक बारकी बात है कि ये साहु टोडर सिद्धक्षेत्रकी यात्रा करने मथुरामें आये। वहाँपर बीचमें जम्बूस्वामीका स्तूप (निःसहिस्थान) बना हुआ था, और उनके चरणोंमें विद्युच्चर मुनिका स्तूप था।

---

१ कोल अलीगढ़का पुराना नाम है। भटानियाँ अलीगढ़के पास कोई स्थान मालूम होता है।

आसपास अन्य मोक्ष जानेवाले अनेक मुनियोंके स्तूप भी मौजूद थे। इन मुनियोंके स्तूप कहीं पाँच, कहीं आठ, कहीं दस और कहीं बीस इस तरह बने हुए थे। साहु टोडरको इन स्तूपोंको जीर्ण-शीर्ण अवस्थामें देखकर इनका जीर्णोद्धार करनेकी प्रबल भावना जागृत हुई। फलतः टोडरने शुभ दिन और शुभ लग्न देखकर अत्यन्त उत्साहपूर्वक इस पवित्र कार्यका समारम्भ कर दिया। साहु टोडरने इस पुनीत कार्यमें बहुत-सा धन व्यय करके ५ १ स्तूपोंका एक समूह और १३ स्तूपोंका दूसरा समूह, इस तरह कुल ५१४ स्तूपोंका निर्माण कराया। तथा इन स्तूपोंके पास ही १२ द्वारपाल आदिकी भी स्थापना की। यह प्रतिष्ठाका कार्य वि० सं० १६३० में ज्येष्ठ शुक्ला १२ को बुधवारके दिन नौ घड़ी व्यतीत होनेपर सूरि मंत्रपूर्वक निर्विघ्न सानन्द समाप्त हुआ। साहु टोडरने चतुर्विध संघको आमंत्रित किया। सबने परम आनन्दित होकर टोडरको आशीर्वाद दिया और गुरुने उसके मस्तकपर पुष्प-वृष्टि की। तत्पश्चात् साहु टोडरने सभामें खड़े होकर शास्त्रज्ञ कवि राजमल्लसे प्रार्थना की कि मुझे जम्बूस्वामि-पुराणके सुननेकी बड़ी उत्कण्ठा है, सो आप कृपा करके इस कथाको विस्तारसे कहिये। इस प्रार्थनासे प्रेरित होकर कवि राजमल्लने जम्बूस्वामिचरितकी रचना की।

इस काव्यमें कुल १३ सर्ग हैं जिनकी पद्य-संख्या सब मिलाकर लगभग २४ के है। जान पड़ता है कि कविने जम्बूस्वामि चरितको आगरेमें रहकर ही बनाया था। कविने कथामुख-वर्णन नामक सर्गमें आगरेके बाजारों आदिका वर्णन भी किया है। काव्यमें वैराग्यकी प्रधानता है। कहींपर युद्धका वर्णन करते समय वीररस

भी आ गया है। बीच बीचमें धर्मशास्त्र, और कहीं कहीं नीति भी आती है। जम्बूकुमारके साथ जो उनकी स्त्रियों और विद्युच्चरके संवाद हुए हैं, वे बहुत रोचक हैं, और ऐतिहासिक दृष्टिसे भी महत्त्वके हैं।

कवि राजमल्लकी चौथी कृति अध्यात्मकमलमार्तण्ड है। इस ग्रन्थमें चार परिच्छेद हैं, जिनमें सब मिलाकर २५० श्लोक संख्या है। पहिले परिच्छेदमें मोक्ष और मोक्षमार्गका लक्षण, दूसरेमें द्रव्यसामान्य, तीसरेमें द्रव्यविशेष और चौथे परिच्छेदमें सात तत्त्व और नौ पदार्थोंका वर्णन है। कविने इस ग्रन्थका 'काव्य' कहकर उल्लेख किया है, और इसके पठन करनेसे सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होना बताया है। अमृतचन्द्रसूरिके आत्मख्याति समयसारकी तरह यहाँ भी ग्रन्थके आदिमें चिदात्मभावको नमस्कार करके, संसार-तापकी शान्तिके लिये कविने अपने ही मोहनीय कर्मके नाश करनेके लिये इस शास्त्रकी रचना की है। ग्रन्थकारने ग्रन्थमें कुन्दकुन्द आचार्य और

---

१ कविने वीरोंको बोध देते हुए लिखा है —

कलोऽयं क्षात्रधर्मस्य सम्मुखत्वं यदाहवे ।
वरं प्राणात्ययस्तत्र नान्यथा जीवनं वरं ॥
ये धूर्तविद्धं पूर्वं पूर्वं प्रभात्युपद्रवे ।
पलायंते गिरा युद्ध किंतु तान्यस्यमर्धीमयान् ॥

जम्बूस्वामिचरित १–३ ११।

२ उदाहरणके लिये मधु-बिन्दुवाले दृष्टान्तकी कथा महाभारत स्त्रीपर्वमें, बौद्धिक अवदान साहित्यमें और क्रिश्चियन साहित्यमें पाई जाती है, इसलिये यह संसारके सर्वमान्य कथा-साहित्यकी दृष्टिसे बहुत महत्त्वकी है। शृगाल और बगुलेकी कथा भी हितोपदेशमें आती है। इसी तरह अन्य कथाओंके भी तुलनात्मक अध्ययन करनेसे इस विषयकी विशेष खोज हो सकती है।

अमृतचन्द्रसूरिको स्मरण किया है। कविने इस छोटेसे ग्रन्थमें आत्मख्याति समयसारके ऊपर अनेक छन्द, अलंकार आदिसे सुसज्जित अध्यात्मशास्त्रकी एक अति सुन्दर रचना करके सचमुच जैन साहित्यके गौरवको वृद्धिंगत किया है।

कवि राजमल्लकी इन चार कृतियोंमें, जैसा ऊपर कहा जा चुका है जम्बूस्वामिचरितकी रचना वि० सं० १६३२ और लाटीसंहिताकी रचना वि सं १६४१ में हुई है। शेष दो ग्रन्थोंके समयके विषयमें ग्रन्थकारने स्वयं कुछ भी उल्लेख नहीं किया। परन्तु मालूम होता है कविकी सर्वप्रथम रचना जम्बूस्वामिचरित है, और इसी रचनाके ऊपरसे इन्होंने 'कवि' की प्रख्याति प्राप्त की। इसके बाद किसी कारणसे कविको आगरेसे वैराट नगरमें जाना पड़ा, और वहाँ जाकर इन्होंने जम्बूस्वामिचरितके नौ वर्ष बाद लाटीसंहिताका निर्माण किया। जम्बूस्वामिचरितके कई पद्य भी लाटीसंहितामें अक्षरशः अथवा कुछ परिवर्तनके साथ उपलब्ध होते हैं। पंचाध्यायी और अध्यात्मकमलमार्तण्ड कविकी इन रचनाओंके बादकी ही कृतियाँ जान पड़ती हैं। मालूम होता है जैसे जैसे कवि राजमल्ल अवस्था और विचारोंमें प्रौढ़ होते गये वैसे वैसे उनकी रुचि अध्यात्मकी ओर बढ़ती गई। फलतः उन्होंने अपने आत्म-कल्याणके लिये इन दोनों ग्रन्थोंका निर्माण किया। अब इन दोनोंमें संभव है कि पंचाध्यायी पहिले बनी हो, और उसके संक्षिप्त सारको लेकर

१ पं० जुगलकिशोरजीने लाटीसंहिता और पंचाध्यायीके ४१८ समान पद्योंके पाये जानेका उल्लेख अपनी उक्त भूमिकामें किया है। इन पद्योंका लाटीसंहितामें-से ज्योंका त्यों पंचाध्यायीमें लाया जाना अधिक ठीक जान पड़ता है।

अध्यात्मकमलकी रचना की हो, अथवा यह भी संभव है कि पहिले अध्यात्मकमलकी रचना हो चुकी हो तथा कविने पंचाध्यायीका निर्माण आरम्भ कर दिया हो और असमयमें ही वे काल-धर्मको प्राप्त हो गये हों।

इन चार कृतियोंके अतिरिक्त समय जान पड़ता है कि कविने और भी रचनाओंका निर्माण किया है और उन रचनाओंमें किसी एक गद्यकी कृतिके होनेका भी अनुमान है।

जैन-साहित्यमें जम्बूस्वामीका स्थान

दिगम्बर और श्वेताम्बर परम्परामें जम्बूस्वामीका नाम बहुत महत्त्वके साथ लिया जाता है। महावीर स्वामीके निर्वाणके पश्चात् गौतम, सुधर्मा और जम्बूस्वामी इन तीन केवलियोंका होना दोनों ही आम्नायोंको मान्य है। इसके बाद ही दोनों सम्प्रदायोंकी परम्परामें भेद पाया जाता है। दिगम्बर-परम्परामें जम्बूस्वामीके पश्चात् विष्णु, नन्दी, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु, तथा श्वेताम्बर-परम्परामें प्रभव, शय्यंभव, यशोभद्र, आर्यसंभूतविजय और भद्रबाहु इन पाँच श्रुतकेवलियोंके नाम आते हैं। जो कुछ भी हो, जम्बूस्वामी दोनों संप्रदायोंमें अन्तिम केवली स्वीकार किये गये हैं और इसी कारण दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों विद्वान् इनका जीवनचरित लिखनेमें प्रवृत्त हुए हैं। श्वेताम्बर वाङ्मयमें सर्वप्रथम पयन्ना (प्रकीर्णक) साहित्यमें जम्बूपयन्नाका नाम आता है। श्वेताम्बर जैन कान्फरेन्सद्वारा प्रकाशित जैन-ग्रन्थावलिसे विदित होता है कि जम्बूपयन्नाकी यह प्रति डेक्कन कालेज पूनाके भंडार (भांडारकर इन्स्टिट्यूट) में मौजूद है। इसके कर्त्ताका नाम अविदित है। श्लोकके कॉलममें 'पत्र ४५ साइज ५'

लिखा हुआ है। इसके पश्चात् अन्य श्वेताम्बर विद्वानोंने भी जम्बूस्वामि-चरितका निर्माण किया है परन्तु इनमें कलिकाल-सर्वज्ञ हेमचन्द्र आचार्य और जयशेखरसूरिका नाम विशेष महत्त्वका है। हेमचन्द्र १२ वीं शताब्दिके प्रसिद्ध आचार्य हो गये हैं। इन्होंने अपने परिशिष्ट पर्वके आदिके चार अध्यायोंमें जम्बूस्वामीका चरित लिखा है। जयशेखरसूरिका समय वि. सं० १४३६ है। ये कवि-चक्रवर्तीके नामसे प्रसिद्ध हो गये हैं। इन्होंने ६ प्रकरणोंमें ७२६ श्लोक-प्रमाण जम्बूस्वामिचरित नामक काव्यकी रचना की है।

दिगम्बर-साहित्यमें भी प्राकृत और संस्कृत भाषामें कई जम्बूस्वामि-चरित होनेका अनुमान किया जाता है। उक्त जैन-ग्रन्थावलिमें प्राकृत संस्कृत और गद्यमें लिखे हुए नौ जम्बूस्वामि-चरित और कथानकोंका उल्लेख किया गया है और उनमें पाँच ग्रन्थकर्त्ताओंके तो नाम भी दिये हैं। वे नाम निम्न प्रकारसे हैं—पं. सागरदत्त, भुवनकीर्ति, पद्मसुन्दर, सकलहर्ष और मानसिंह। इन सब ग्रन्थकर्त्ताओंका विशेष परिचय नहीं दिया गया है। भुवनकीर्तिके विषयमें लिखा है—'भुवनकीर्ति सकलचन्द्रके शिष्य थे'। यद्यपि भुवनकीर्ति श्वेताम्बर आम्नायमें भी हो गये हैं परन्तु प्रस्तुत भुवनकीर्ति दिगम्बर-परम्पराके ही मालूम होते हैं। प्रो. वेबर (Weber) ने सकलचन्द्रका समय १५२० वि. सं. लिखा है। संभवतः भुवनकीर्तिने इस काव्यको विक्रमकी सोलहवीं शताब्दिमें लिखा है। एक प्रति राधनपुरमें मौजूद है। दिगम्बर आम्नायमें कवि राजमल्लके अतिरिक्त जिनदासने भी हिन्दीमें सम्भवतः जम्बूस्वामिचरितकी रचना की है। सम्भवतः ये जिनदास वही ब्रह्मचारी जिनदास हैं जो सकलकीर्तिके

शिष्य थे। इस पुस्तकको जिनदासने किसी संस्कृत काव्यके आधारसे रचा है। इसमें और पं० राजमल्लके जम्बूस्वामीके कथानकमें कुछ
कथामें भेद भी पाया जाता है।

जम्बूस्वामीकी कथा

जम्बूद्वीप-भरतक्षेत्रमें मगध नामक देश है। उसमें श्रेणिक नामका राजा राज्य करता था। एक दिन राजा श्रेणिक सभामें बैठे हुए थे। वनपालने आकर विपुलाचल पर्वतपर वर्धमान स्वामीके समवशरणके आनेका समाचार दिया। श्रेणिक सुनकर परम आनन्दित हुए और उन्होंने अपने सैन्य, कुटुम्ब आदिके साथ भगवान्‌का दर्शन करनेके लिये प्रयाण किया। श्रेणिक वर्धमान स्वामीको नमस्कार करके बैठ गये और उन्होंने तत्त्वोपदेश सुननेकी अभिलाषा प्रकट की। श्रेणिकने तत्त्वोपदेशका श्रवण किया। इतनेमें कोई तेजोमय देव आकाश मार्गसे अवतरित होता हुआ दृष्टिगोचर हुआ। श्रेणिक राजाके द्वारा इस देवके विषयमें पूँछे जानेपर गौतम स्वामीने उत्तर दिया कि इसका नाम विद्युन्माली है और यह अपनी चार देवांगनाओंके साथ यहाँ

१ इस पुस्तकको मुन्शी नाथूराम लमेचूने सन् १९०१ में कलकत्तेमें छपाया था। इसीके आधारसे मास्टर दीपचंदजीने इसे हिन्दी गद्यमें किया है जो सूरतमें छपा है।

२ हेमचन्द्र आचार्यकी कथानुसार महावीरकी वन्दना करनेके लिये जाते हुए दो सैनिक मार्गमें तपश्चरण करते हुए प्रसन्नचन्द्र मुनिको देखकर उनके उनके विषयमें कुछ चर्चा करते हैं। मार्गमें उसी मार्गसे जाते हुए श्रेणिक राजा उस मुनिको वन्दना करके समवसरणमें पहुँचकर गौतम स्वामीसे उक्त मुनिके विषयमें प्रश्न करते हैं। गौतम स्वामी इस प्रश्नके उत्तरमें पोतनपुरके राजा सोमचन्द्र तथा उनके प्रसन्नचन्द्र और वल्कलचीरी नामके दो पुत्रोंकी कथाको विस्तारसे कहते हैं। यह कथा बहुत रोचक है। इसके लिये पाठकोंको परिशिष्टपर्व देखना चाहिये।

वन्दना करनेके लिये आया है। यह आजसे सातवें दिन स्वर्गसे चय कर मध्यलोकमें उत्पन्न होकर उसी भवसे मोक्ष प्राप्त करेगा। श्रेणिकने इस देवके विषयमें विशेष जाननेकी अभिलाषा प्रगट की। गौतम स्वामी कहने लगे —" इसी देशमें वर्धमान नामक एक नगर है। उसमें आर्यवसु नामका एक ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्रीका नाम सोम-शर्मा था। इस दंपतिके भावदेव और भवदेव नामके दो पुत्र हुए। इन दोनोंने विद्यामें अति निपुणता प्राप्त की। कुछ समय बाद आर्यवसु कुष्ठ रोगसे पीड़ित हुआ और परलोक सिधार गया। सोमशर्माने भी पतिके वियोगसे अत्यन्त दुःखी होकर चितामें प्रवेश करके अपने प्राणोंका त्याग किया। कुछ दिन बीतनेके पश्चात् उस नगरमें सौधर्म नामके मुनिका आगमन हुआ। मुनिने धर्मका उपदेश दिया। भावदेवने भी इस धर्मका श्रवण किया और सुनकर मुनिसे दीक्षा लेने की अभिलाषा प्रकट की। भावदेव दीक्षित होकर तपस्या करने लगे। कुछ समय बीतनेपर एक दिन सौधर्म मुनि संघसहित वर्धमान नगरमें पधारे। भावदेवको अपने कनिष्ठ भ्राताके ऊपर करुणा उत्पन्न हुई। वे गुरुकी आज्ञा लेकर भवदेवको बोध देनेके लिये चले। उस समय भवदेव अपने विवाहके उत्सवमें संलग्न थे। भवदेवने अपने ज्येष्ठ भ्राताको मुनिके वेषमें देखकर उसका बहुत आदर किया। भवदेवने धर्म-श्रवण करनेके पश्चात् मुनिको आहार दिया। जब मुनि विहार करने लगे, उस समय और लोगोंके साथ भवदेव भी उनके पीछे पीछे चले। थोड़े

---

१ जयशेखरसूरिके जम्बूस्वामिचरितमें यहींसे कथाका आरंभ होता है। इसके पूर्वका भाग उसमें नहीं पाया जाता। हेमचन्द्र और जयशेखर दोनोंके अनुसार भावदेवकी जगह बड़े भाईका नाम भवदत्त आता है। तथा वे सुग्राम नगरके रहने-वाले थे और इनके पिताका नाम आर्यवान तथा माताका नाम रेवती था।

समयमें दोनों भाई गुरुके पास पहुँच गये। यह देखकर सब मुनि भावदेवकी प्रशंसा करने लगे। भवदेवको उपायान्तर न होनेसे दीक्षा लेनेके लिये बाध्य होना पड़ा। कुछ दिनों पश्चात् सौधर्म मुनि फिर वर्धमान नगरमें आये। भवदेव अपनी स्त्रीका विचार करके वहाँ एक जिनालयमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक आर्यिकाको देखा। उससे उन्होंने अपनी स्त्रीके सम्बन्धकी कुशल-वार्ता पूँछी। आर्यिकाने मुनिके चित्तको चलायमान देखकर उन्हें धर्ममें स्थिर किया और कहा कि वह आपकी स्त्री मैं ही हूँ। भवदेव छेदोपस्थापना पूर्वक चारित्रमें फिरसे तत्पर हुए। अन्तमें दोनों भाई मरकर सनत्कुमार स्वर्गमें देव हुए। भावदेव स्वर्गसे च्युत होकर पुण्डरीकिणी नगरीमें वज्रदन्त नृपतिके घर सागरचन्द्र नामका, और भवदेव वीतशोका नगरीमें महापद्म चक्रवर्तीके घर शिवकुमार नामका पुत्र हुआ। ये दोनों युवा होकर भोगोंके भोगनेमें मग्न हो गये। एक बार पुण्डरीकिणीमें कोई मुनि पधारे। सागरचन्द्रने मुनिका उपदेश श्रवण किया। पश्चात् मुनिने उन दोनों भाइयोंके पूर्वभवोंका वर्णन किया। सागरचन्द्रने संसारके भोगोंसे विरक्त होकर जिनदीक्षा ग्रहण की। तत्पश्चात् अपने भाईको बोध करानेके लिये सागरचन्द्र वीतशोका नगरीमें गए, और

---

१ इस कथा-भागमें भी श्वेताम्बर और दिगम्बर-सम्प्रदायमें कुछ भेद पाया जाता है। उक्त श्वेताम्बर विद्वानोंके अनुसार जिस समय भवदत्त (भावदेव) अपने लघु भ्राताको बोध देनेके लिये आये उस समय वहाँके वातावरणको देखकर स्वयं भवदत्तका ही मनोभाव परिवर्तित हो जाता है। वे वापिस लौट आते हैं और दूसरे साथी मुनि इसपर भवदत्तका उपहास करते हैं। भवदत्त फिरसे भवदेवको दीक्षित करनेकी प्रतिज्ञा करके उसके पास जाते हैं, और उसे किसी तरह गुरुके पास लाकर दीक्षित करते हैं।

उन्हें देखकर शिवकुमारको जातिस्मरण हो आया। शिवकुमारने अपने माता पितासे दीक्षा लेनेकी अनुमति माँगी, परन्तु उन्होंने दीक्षाकी अनुमति न दी। शिवकुमार १४० ० पर्यंतक घरमें तप श्चर्या करते हुए रहने लगे। अन्तमें सागरचन्द्र और शिवकुमार दोनोंने जीव ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें गये। शिवकुमार तपश्चरणके प्रभावसे विद्युन्माली नामका यह देव हुआ है।"

तत्पश्चात् श्रेणिक राजाने विद्युन्मालीकी चार देवियोंके विषयमें विशेष जाननेकी जिज्ञासा प्रकट की। गौतम स्वामीने कहा कि चंपापुरी नामकी नगरीमें सूरसेन नामक कोई सेठ रहता था। इसके चार स्त्रियाँ थीं। पापोदयसे सेठका शरीर रोगग्रस्त हो गया। वह अपनी स्त्रियोंको मारने पीटने लगा और उन्हें नाना प्रकारके कुत्सित वचन बोलने लगा। स्त्रियोंने अति दुःखित होकर आर्यिकाके व्रत ग्रहण किये। ये स्त्रियाँ मरकर इसी स्वर्गमें विद्युन्मालीकी देवियाँ हुई हैं।

श्रेणिक राजाके विद्युच्चरके विषयमें प्रश्न करनेपर गौतम स्वामीने कहा कि हस्तिनापुरके संवर नामके राजाके विद्युच्चर नामका पुत्र हुआ। विद्युच्चरने सब विद्याओंमें कुशलता प्राप्त की थी। एक चौर्य-विद्या ही ऐसी रह गई थी जो उसने नहीं सीखी थी। राजाने विद्युच्चरको बहुत समझाया, पर उसने चोरी करना न छोड़ा। विद्युच्चर राजगृह नगरमें जाकर कामलता वेश्याके साथ रमण करते हुए समय व्यतीत करने लगा। गौतम स्वामीने कहा कि यह विद्युन्माली देव राजगृह नगरीमें अर्हद्दास नामक सेठके पुत्र होगा, और उसी भवसे मोक्ष जायेगा।

यह कथन हो ही रहा था कि इतनेमें एक यक्ष वहाँ आकर

नृत्य करने लगा। श्रेणिकके इसके नाचनेका कारण पूछा तो गौतम स्वामीने उत्तर दिया कि यह यक्ष अर्हद्दासका लघु भ्राता था। यह सप्त व्यसनमें आसक्त था। एक बार यह जूँएमें द्रव्य हार गया और इस द्रव्यको न दे सकनेके कारण दूसरे जुआरीने इसे मार मारकर अधमरा कर दिया। अर्हद्दासने इसे अन्त समय नमस्कार-मंत्र सुनाया, जिसके प्रभावसे यह मरकर यक्ष हुआ है। यक्ष यह सुनकर हर्षसे नृत्य कर रहा है कि उसके भ्राता अर्हद्दासके अंतिम केवलीका जन्म होगा।

यहाँसे, पाँचवें पर्वसे, असली जम्बूस्वामीका चरित आरम्भ होता है। अर्हद्दासके घर जम्बूकुमारका जन्म हुआ। जम्बूकुमार युवा हुए। उनकी श्रीमत सेठोंकी चार कन्याओंके साथ सगाई हो गई। उन्होंने मत्तगयन्द हाथीका वशमें करके अपनी वीरता प्रकट की। जम्बूकुमारने एक बार रत्नचूल नामके विद्याधरको पराजित करके मृगांक विद्याधरकी सहायता की, जिससे मृगांकने अपनी पुत्रीका श्रेणिक राजाके साथ विवाह किया। तत्पश्चात् जम्बूकुमार सौधर्म नामक मुनिसे, जो भवदेवका जीव था, भवान्तर सुनकर वैराग्यको प्राप्त हुए। जम्बूकुमारने माता पितासे प्रव्रज्या लेनेकी अनुमति माँगी। माता पिताने बहुत समझाया, पर जम्बूकुमार न माने। अन्तमें पिताकी आज्ञाको शिरोधार्य करके उन्होंने विवाह करनेके एक दिन बाद दीक्षा ले लेनेका निश्चय किया। खूब ठाठ-बाटसे जम्बूकुमारका विवाह हो गया। चारों स्त्रियोंने अनेक हाव-भावोंसे जम्बूकुमारको विषय-भोग भोगनेके लिये आमन्त्रित किया, पर वे मेरुके समान अडोल और दृढ़ रहे। रात्रिमें वहाँ विद्युचर चोर भी पहुँच गया। चारों नव-विवाहिता वधुओं और

विद्युच्चर तथा जम्बूकुमारका बहुत रोचक संवाद हुआ। अन्तमें जम्बू स्वामीकी विजय हुई। उन्होंने जिन-दीक्षा ग्रहण की। साथमें विद्यु-च्चरको भी उपदेश लगा। वह भी अनेक लोगोंके साथ दीक्षित हुआ। अन्तमें ये दोनों अनेक मुनियोंके साथ विपुलाचल पर्वतपर निर्वा-णको पधारे।

मूल प्रतियाँ

अन्तमें कुछ शब्द मूल प्रतियोंके विषयमें भी लिख देना उचित है। जम्बूस्वामिचरित देहलीके सेठके कूचेवाले जैनमन्दिरकी प्रतिके ऊपरसे संपादित किया गया है। इसके लिये इसके प्रेषक बाबू पन्ना-लालजी अग्रवालको अनेक धन्यवाद हैं। इस प्रतिके ऊपर कोई संवत् नहीं है। फिर भी यह प्रति प्राचीन मालूम होती है। यह बीचमेंसे कई स्थलोंपर त्रुटित भी है। बहुत प्रयत्न करनेपर भी इस पुस्तककी दूसरी कोई प्रति न मिलनेसे, इसी एक और सो भी अशुद्ध प्रतिके आधारसे ग्रन्थका सम्पादन करना पड़ा है। मूल प्रतिके जो पाठ अशुद्ध जान पड़े, उन्हें मूल पाठमें रखकर कोष्ठकमें शुद्ध पाठ दिया

१ हेमचन्द्र और जयशेखरके कथानकमें जम्बूकुमारके पिताका नाम ऋषभदत्त और माताका नाम धारिणी आता है। तथा जम्बूकुमारका चार कन्याओंकी जगह आठ कन्याओंके साथ विवाह होता है। इन कथानकोंमें विद्युच्चरकी जगह प्रभव चोरका नाम आता है। (पं॰ राजमल्लके जम्बूस्वामिचरितमें भी— प्रभवादिमुखं-[illegible] —प्रभवका नाम आता है, पर वे कौन थे, इसका इसमें कुछ जिकर नहीं आता)। इसके अतिरिक्त जम्बूकुमार और उनकी स्त्रियों तथा प्रभवके बीचमें जो संवाद हुए उनमें कुबेरदत्त महेश्वरदत्त [illegible] [illegible], विद्युन्माली बुद्धि-सिद्धि, [illegible] [illegible] आदिकी कथायें आती हैं जो पं॰ राजमल्लके जम्बूस्वामि-चरितमें नहीं पाई जातीं। हेमचन्द्र और जयशेखरसूरिकी [illegible] भी कुछ सामान्य हेर फेर पाया जाता है।

गया है। इसकी और अध्यात्मकमलमार्तण्डकी प्रेस-कापी नातेपूते (शोलापुर) के अध्यापक पं० फूलचन्द्रजी शास्त्रीके द्वारा तैयार कराई गई थी।

अध्यात्मकमलमार्तण्डकी दो ही प्रतियाँ उपलब्ध हो सकीं। एक सरस्वती-भवन बम्बईकी और दूसरी प्रति पं० नाथूराम प्रेमीजीके पास की। सरस्वती-भवनकी प्रतिके लेखकने उसकी भांडारकर इन्स्टिट्यूटकी सं० १६६३ वैशाख सुदी १२ शनिवारके दिन लिखी हुई प्रतिके आधारसे नकल की है। मालूम नहीं मूल प्रतिके इतनी प्राचीन होनेपर भी यह प्रति इतनी अशुद्ध क्यों है? संभव है नकल करनेमें लेखक महाशयकी कृपा हुई हो। दूसरी प्रति सं० १८४४ श्रावण कृष्णा षष्ठीके दिनकी लिखी हुई है। इस प्रतिके ऊपर रबरकी मोहर मारी हुई है, जिसपर ' भट्टारक श्री महेन्द्रकीर्तिजी, सवाई जयपुर संवत् १९३९ ' खुदा हुआ है। दुर्भाग्यसे यह प्रति भी शुद्ध नहीं है। इस प्रतिके लेखक सुरेन्द्रकीर्ति भट्टारक हैं। यह जिनदास पंडितकी अशुद्ध प्रतिके आधारसे शीघ्रतामें सर्वसुख नामके छात्रके लिये, जिस समय वृन्दावती नगरीमें व्यसनहरि (?) नृपका राज्य था, पार्श्वनाथके मन्दिरमें लिखी गई है। इस प्रतिमें लगभग दो परिच्छेदोंके ऊपर टिप्पणी भी है। मालूम नहीं यह अधूरी टिप्पणी स्वयं पं० राजमल्लजीकी है अथवा किसी दूसरे विद्वान्‌की। इन दोनों प्रतियोंके खास खास पाठांतरोंको फुटनोटमें दे दिया गया है।

जुबिलीबाग, तारदेव
बम्बई
९।१०।२६

जगदीशचन्द्र

नमः श्रीवीतरागाय

पण्डितराजमल्लविरचित

जम्बूस्वामिचरितम्

जयति (श्री ?) कृतपरमानन्दाप्यात्मवशुद्धरूपं च सुधाः ।
निगदंति यस्य गर्भादुत्सवमिह तं स्तुवे वीरम् ॥ १ ॥
परिहरतरंगभंगं संगच्छन्निः स्वभावपर्यायैः ।
परिणममानः शुद्धः सिद्धसमूहोऽपि वो श्रियं दिशतु ॥ २ ॥
परिभ्रमोहारिविनिर्जयापविविरक्त्य मध्यमाश्रयनाञ्छनादपि ।
व्रतं तपःशीलगुणांश्च धारयन्नयीव श्रीयापदि या मुनिमयी ॥३॥
रवेः करालीव निधुन्वती तमो यथांतरं स्यात्स्वपादिभारती ।
पद्मापसार्यां पद्मी ददर्श या मनोम्बुजे मे पद्मावतोस्तु सा ॥४॥
अथास्ति दिल्लीपतिरस्तुवोदयो दयान्वितो बब्बरनंदनंदनः ।
अकब्बरः श्रीपदशोभितोऽभितो न केवलं नामतयार्यतोऽपि यः ५
अस्ति स्म याथापि विभाति भाति' परा जगत्यामिपया पृथिव्याम्
परंपराभूरिव भूपतीनां महान्वयानामपि माननीया ॥ ६ ॥

---

१ श्रमणकप्रत्यमार्नं नमामि तीर्थकरं महावीरम् ।
यदिति विमलबोधं ध्याविपि महागमेणमेव नमामि ॥ आदिपुराणम् १–२ ।

२ मयी समस्तं जिनजिनवाणिर्या सतां मुनीनामुपयोगपरोपकारम् ।
पदत्रयं भारतता विशेषतस्तनं गुणेविविधाविशेषतः ॥ आदिपुराणम् १–४ ।

तत्र जातावपि जातजन्मनः समेकछत्रीकृतदिग्वसुंधरान् ।
महाभिदं नासमिहानुभूतमः कवीन्द्रवदा लसदिंदुकीर्ति ॥ ७ ॥
अतः क्वचित् कृतसाहिमल्लकः स माननीयो विविधद्विपभिवाम् ।
यथा कृपा बाबरपंचपाभिता प्रकाश्यते मत्रिरया निरंतरम् ॥८॥
हुमाऊंबाबरपातिसाहिरमनाभिजित्य समुन्नता–
दिल्लीशोऽपि समुद्रवारिवसनां क्षोणीं वशमापयत् ।
दुर्गमेकवशो द्विगणमर्त्यं कोटन् ययेच्छं विभुः
स्यात्रपास्तकपालमौलिशिखरस्यापीव सम्यग्यश ॥ ९ ॥
तस्मिन्नोऽस्ति मातृभाजिव गिरराक्रम्य भूमेरत
भूपेभ्य करभारमपि धनं यच्छन् जनेभ्योऽधिकम् ।
चक्रच्छत्रसमरमतापतरसा मात्सर्यमभ्येरयः
मन्नापासवशा भवत्यमररमाणा हुमाऊन्नृपः ॥ १० ॥
तत्सूनुः मिषमुद्रम समसमादिष्टतपनो भुवि
श्रीमत्साहिरकब्बरो वरमतिः साम्राज्यराज्यवपुः ।
तेनाःपुंनमयो व्यसनमत्यासाक्राशानल
सचारीन् दहति स्म निर्दयमना उन्मूल्य मूलावपि ॥ ११ ॥
सर्वीव धीरः किल शत्रवऽपि यः
कम्राकमार्यैर्पवप समुन्नतैः ।

१ लाटीसंहितायामपि तृतीयमुक्त
समासूपरिडम्भुरिव परा कातिमयकाधिवा ।
तत्पं बाबरपातिसाहिरमनाभिजित्य पत्न्य् नम–
द्विमिनयमानिशम्यमकवा पूर्णप्रवालनकः ॥ लाटीसंहितायाम् १–५९ ।

तदापि नम्रीकृतभूमिपालक-
कपालमालामभिभिद्य मिद्विषाम् ॥ १२ ॥

ततः कमार्थामनसाभिता थय
स्तत्र व्रजन् संगरसंगतः क्षणात् ।
स्त्रियाऽपि कंदर्पमपमपारत
द्विपम सकाषिन तापसंहृतः ॥ १३ ॥

गमाश्वयान्तातिरयाद्रिकपु यो
मंभासिदुर्गद्विमिणपु क्वान्तिपु ।
सिलस्व कुस्वां भवितव्यताभिता
धनं स्वसाद्रिक्रममाभसंभवम् ॥ १४ ॥

छम्माषकाश्चाद्यथा मसंगा
घता हता दुर्जनकिंकराकराः ।
तदपि नामापि न श्रूयते मया
लघुमहार्णो ननु पौरुषं कियत् ॥ १५ ॥

अथास्ति किंचिदपि विभक्तृत्क
मुत्स्यातिलखीकृतविभङ्गकम् ।
अतारणस्तममवाप हेलया
किमद्भुतं सम ममानमानस ॥ १६ ॥

जगाम (अ) गामी भ्रमरातमप्यगा प्रगाधिपाऽप्यपिकः ममावत ।
मदच्युतो धरिगमस्तदानीमितस्तना याति पत्नायपालः ॥ १७ ॥

---

१ प्रभुत्वम् । २ अवध्यमेत । ३ इत्येषु । ४ स्नापीर्य कृतवान् । इति हस्तलिखितपुस्तकटिप्पणम् ।

ततोऽपि धृत्वा गिरिगह्वराग्नि भिता सर्व केचन बंधन क्षणात् ।
महाहया मंबलाद्यिाहताः मपेतुरापमिपिसंनिपानके ॥ १८ ॥
न केवल दिग्विजयस्य भूभृतां सहस्रसंवेरिद भावितं भूम्नम् ।
भुवाऽपि निश्वासवमानयानया यत्वभूमारभरातिमाभवः॥१९॥
अपि क्ष्मास्सुरतिसंक्रको गिरेरपांनिधः सनिधितः समस्सर ।
कदापि कनापि न स्वविती यतस्ततोऽस्ति दुर्गो भक्तिनां हि दुर्जय
अनेन सोऽपि क्षणमात्रवेगाद्नेकलवै कृतमर्जरा जितः ।
विलंघ्य यद्दि रघुनायवचपा परं विपिपः कश्चिकौतुकादिव ॥२१॥
अवापुः के(चित्)रिपवः पयोनिधेः परं तट कोटिमध्य नर्दत ।
ततोऽस्य मन्ये न कुतोऽप्यपूयत सर्ववदार्थिकमयक्रमाजवम् ॥२२॥
क्षितिं कृपाणेऽस्य विदारितारितः (पाः १)
पलायनात्कर्पवि पानमभ्यितः ।
ततोऽधिकं सारतया मुहुसितः अगस्त्यं मासमगादनहंसः ॥२३॥
तथाविधोऽप्युद्धवीरकर्मणि दयाख्या चास्य निसर्गताऽभवत् ।
क्रमेण युगपद्यथा रसाः स्फुटमचिन्त्यविधा महतां हि प्रकृयः२४
मपालयामास प्रमाः प्रमापतिरसंघर्दं यदसंवमेंद्रसम् ।
असंवलदर्पवपु सुरार्थं जितामरानेव स वंपुप्पदिपः॥ २५ ॥
क्व न मन भगवतीऽतिपुष्कर परंतुकसौ यदि योषितां मृदुम् ।
मर्द्र म भगादि कुतोऽपि कारणादपि द्विर्पमानिह तद्वताप्यया २६
सुमाय शुल्कं स्वप भैमियामिर्ष स यावर्त्रमीपरयूपरापरम् ।
भराश्च सर्वेः सरितांपतेः पयः यथाजसीमीमहकल्मरस्य च २७
बंधनमेवपर्न यशस्वती म मिर्गतं क्वापि निसर्गतं स्थि(तम्पि?)तिम
अनेन तपूतदुरस्तमनसः सुषमरामः किल वर्ततेऽधुना ॥ २८ ॥

१ धीरसौ । २ कक्षः । ३ महताः । ४ कराल्दं न इति वा पाठः ।

प्रमादमादाय जन प्रवर्तेत कुपथमार्गेषु यतः प्रमत्तधीः ।
सताऽपि पथ तद्भयकारणं निवारयामास विदांवर स हि ॥२९॥
अन्नपतः स्वादुमलं न मादृशां समानदानादिगुणानसम्पत ।
ततोऽस्य दिव्याश्रतयाधितु सम पयाधितो वा भस्मंजासिस्थितम्
चिरं चिरंजीव चिरायुरायतौ प्रजाधिपः सततसमाप्रिमाप्रिमम् ।
ययाभिनन्दुवसुधासुधाधिपं कलाभिरेन पश्यत मुदा मुने ॥ ३१ ॥
अथाधिपानामिव राजपत्तन महानिहास्ति नगराधिपाधिप ।
यत्राधिपत्यं मनुते स्म भूपति समस्तवस्त्वाकर आगराख्यया ३२
यदीयशाल सुविशालतामया दिवं दिदृक्षु सुरनिम्नगामिव ।
त्रिलोकपादुपरमपर नयन् वपुस्वदूर्धमपद्मारुरादयत् ॥ ३३ ॥
यदभ्रमभ्रंलिहसौधमंडलीशिरःस्खलद्वारकपादवर्पितैः ।
पद चकाराधरदक्षिणायने स भीतभीतोऽम्र यतस्विरोभवति ॥३४॥
नानामनैःसमाकीर्णं सरितां सलिलैरिव ।
सर्वापरतिगर्भारैरुन्नतैरमिवाम्मिमि ॥ ३५ ॥
महस्त्विव महाभाग रत्नाभ्याकमहापितम् ।
गजाश्वादिघनाघातयात्राभिरिव दुर्घटम् ॥ ३६ ॥
पंकजाननसंघर्षार्दर्पितं कमलाकृतिम् ।
सन्नूपुररणत्कारसैरारविमं कचित् ॥ ३७ ॥
सद्गसादिविभ्रासापर्पीक्षिनरभूतास्पदम् ।
भद्राप्नरस्फराद्भूतमग्नमद्याख्यानम्म् ॥ ३८ ॥
सोपाभिरचणिग्भुर्भः पीतस्थैरिव सस्थितम् ।
महामोल्यानि वस्तूनि नीत्वा गच्छद्भिरात्मन ॥ ३९ ॥

१ मन्थैरिव । २ नम्यक् धाम्राधे अम इति भ्रष्टाभिधः ।

भिन्ननामानि सुव्यक्तमापणानि बहूनि चै ।
अंतरीपाणि तानीव सवस्त्राणि पृथूनि च ॥ ४० ॥
सौधस्थितमहातुंगकुम्भाग्राभिराम्बुतम् ।
पताकाभिः समुद्धीनं चद्धपस्त्यस्य शोभितम् ॥ ४१ ॥
राजनीतिप्रतापागामुत्पथापथगामिनाम् ।
निग्रहात्साधुवर्गाणां संग्रहात्सारसंग्रहम् ॥ ४२ ॥
चतुर्दिक्षु महावीथ्योऽप्यंतर्वीथ्यस्ततोऽपरा ।
इति कश्चिद्वदेद् धाता समासनामिव भिन्नम् ॥ ४३ ॥
राज्ञा यत्र ध्वजाङ्किन वद्धमाने ऽन्वि दिनम् ।
वर्णयामि कथं धन्यं नगरस्य महार्णवम् ॥ ४४ ॥
पर कश्चिद्विशेषोऽत्र नीचर्स्य मसतास्मता ।
तावदुच्चपताकं कनकाद्रिमिवासमम् ॥ ४५ ॥
जात्यजाम्बूनदाकारं सौधाङ्गाग्रैः सचूलिकम् ।
गायन्तीकिन्नराभिश्च निषेव्यं विबुधाधिपः ॥ ४६ ॥
द्रुमं पश्यन्तभूभागमूपर्णमूपिवं कचित् ।
रम्यं प्रसाद्यमच्छायनन्नादिपर्णैरिव ॥ ४७ ॥
गजदंतसमाकारैरुन्नितैः सुनिम्नगम् ।
पंचवर्णमयैः रत्नैः कपिसिकूर्मीरितं मृभम् ॥ ४८ ॥
चतुर्दिग्गमार्गेषु मध्यगं समयाकृतिम् ।
ज्योतिर्षविमानस्य सूर्यैरिव सन्मितम् ॥ ४९ ॥
जिनचस्यप्रद्धैः सर्गैः शुद्धैरिव समन्वितम् ।
तत्रस्यजिनबिम्बस्य पूर्तं रत्नमयैः स्वतः ॥ ५० ॥

१ पारिभद्रोऽन्नमयी वन् तट वन् । २ पंक्तिमि । ३ विनिर्तम् ।

तस्माभिपरमात्माय मिनाथाग्निशन्नत ।
गीर्भिरिव गजेन नम्मृशि मशार्ण ॥ ५१ ॥
वाग्भिर्गतिभीमि मर्न भवदपनिमिष ।
नारिनार्थिस्याने परिगण्यानिस्तपाणि ॥ ५२ ॥
भवनाग्यराथाग्निगाग्निनामेधि गम्य ।
शृणयनां महाभागे धारयतोनिमि ममम् ॥ ५३ ॥
परिपत्याप्तिगाम्भानमृगाम्पपन परम् ।
देवं सर्वानिरामस्तं पमध्यानातम्योविंश ॥ ५४ ॥
इत्यागिर्भिवर्णेम्य ह्यान्प्रणतमया ।
भवानपन पूर्ण निरवद्यतमया स्थ ॥ ५५ ॥ (वृत्तम्)
मह ि स्वनुणमहन्नप मम्मानापूष इत्याम्पया
शृण्वायमग्न्याधर्वाति त्रिभि ताप स्वस्या ग ,शिर ।
धीमन्गत्रिम्मर्ग्नानिक गराधिकाराय
गाव मनमप ममार्तनिक्र भीमान गम्भे परम् ॥ ५६ ॥
मनातानि मतोमानम्पने शिर्ष मृत्याश्मन
वाभिर्गतिस्मृभिः गोविधिन नन्याय शिवांशिके ।
मानानम मृतामदृन्तोरस्त मारम्नाभावर्या–
कम्पीतम्पानमगागृहत्ता भंगाश्नं भुगने ॥ ५७ ॥
समाह नदत्तमाददर्श मागृतिनरूपथी
सायमगर्तिन्तं वरतदन्ति नै दर्शात म वाग्जय ।
धीव न्नम्मानवाद आर्य सन्तिनीते न
धीन्मोन वोक्तम्ताराम ज नर्तिन्तां माभवेद् । ५८ ॥

तथाईपीः मीतिरसामृतात्मकः स भाति नानाप्रकसारदत्तकः ।
कथं कथायां श्रवणोत्सुकः स्यादुपासकः कथं तन्न्वयं वदे ॥५९॥
श्रीमंति काष्ठासंघे माथुरगच्छेऽथ पुष्करे च गणे ।
लोहाचार्यप्रभृती समन्वये वर्तमानेऽथ ॥ ६० ॥
तत्पट्टे परमतपस्यकीर्तिदिषास्ततः परं चापि ।
श्रीगुणभद्रः सूरिर्भट्टारकसंज्ञकस्त्वाभूत् ॥ ६१ ॥
तत्पट्टमुदयादिमिवाशुमाली
श्रीमानुकीर्तिरिह भाति हलोपकार¹ ।
तत्पादपद्मभिलिसन्मूर्त्यपदाषसार्यान्
भट्टारको भुवनपालकपावनपुः ॥ ६२ ॥
तत्पट्टमम्बुममभिवद्धनहेतुरिन्दुः
सौम्यः सदाद्यमयो ससदंशुजालैः² ।
प्रशमब्रताचरणनिर्जितमारसेनो
भट्टारको विजयतेऽथ कुमारसेनः ॥ ६३ ॥
अग्रोतकवंशसमो वरमतिगोत्रे च गर्गोऽभवत्
काष्ठासंघमथानियां (?) च नगरं कार्येषि माक्षा वरात् ।
श्रीसाधुर्मदनास्त्यथा तदनुजो भ्राता स आस् सुधी
स्तत्पुत्रो जिनधर्मकर्मनिरतः श्रीकृष्णचंद्राह्वय³ ॥ ६४ ॥
तत्पुत्रः पुनरत्र सोदयगुणग्रामैकचूडामणिः
श्रीपासांवरसाधुसाधुगतितः सर्वैः सर्म साधुभिः ।
रेखा यस्य विराजते धुरि तदारंभ महामनस्विनां
धर्मश्रीसुखदानमानधर्मसां जैनेऽथ धर्मे रतः ॥ ६५ ॥

१ कथं श्रीमदः काशीतीर्थिताप्यापि उपकारभते ।
२ अर्थीयत इति प्रतिभा ।

तत्पुत्रोऽस्त्ययं विख्यातः श्रीसाधुटोडरः सुधीः ।
महोदारो महाभागो महिम्ना कुलदीपकः ॥ ६६ ॥
श्लाघ्यः साधुसभामध्ये प्रियावान् धर्मतत्परः ।
देवशास्त्रगुरूणां च भक्तश्च विनयान्वितः ॥ ६७ ॥
परेषां चोपकाराय शक्तिस्त्यागे च यस्य धीः ।
वित्तं च धर्मकार्येषु चित्तमर्हद्गुणादिषु ॥ ६८ ॥
रागी धर्मफले धर्मे कुधर्मे तद्विपर्ययः ।
विमुखः परदारासु सन्मुखो दानसंगरे ॥ ६९ ॥
सद्गुणांस्तेऽपि वाचाली मूको दोषव्रजेष्वपि ।
नात्मोत्कर्षविधौ वाग्मी स्वप्नेऽपि न कुराश्रयः ॥ ७० ॥
किमत्र बहुनोक्तेन सर्वकार्यविधौ क्षमः ।
विश्वभूमादिसंपूर्णेष्वेकोऽपि लक्षायते ॥ ७१ ॥
कृपालुः सर्वजीवेषु सर्वशास्त्रेषु बुद्धिमान् ।
दक्षः सर्वविधानेषु श्रावकेषु महत्तरः ॥ ७२ ॥
तस्य भार्या यथा नाम्ना कौसुम्भी शोभनानना ।
साध्वी पतिव्रता धैर्यं भर्तुश्छन्दानुगामिनी ॥ ७३ ॥
तयोः पुत्राश्च संति भाग्या मान्यारिनाशवः ।
उग्राश्चापि सदाप्येषु निर्भयोपकारिण ॥ ७४ ॥
ऋषिदासाभिधं नीयात्र ज्यायान् गुणैरपि ।
स्वजनाम्बुमतं येन दिदीप धिर(स्थिर)मनसा ॥ ७५ ॥
मोहनाख्यश्चिरायुः स्याद्द्वितीयोऽप्यद्वितीयकः ।
रणेऽप्यभयया दार्ढ्यं भस्मसात्कृत्य रिपून् ॥ ७६ ॥

१ नरवरेषु । २ वैरा ।

वर्द्धतां मातुरेकस्यस्तृतीया रूपमागत ।
शिशुरप्यंशुमानामिमहानेव मणिर्यथा ॥ ७७ ॥
एतेषां च पुनर्गणानां मध्ये श्रीसाधुटोडरः ।
ख्यापर्णितोऽपि यः पूर्वं सम्बन्धः सूच्यतेऽधुना ॥ ७८ ॥
अथैकदा महापुर्यां मथुरायां कृतागमः ।
यात्राय सिद्धक्षेत्रस्य चैत्यानामगमत्सुखम् ॥ ७९ ॥
तस्याः पर्यन्तभूभागे दृष्ट्वा स्थानं मनोहरम् ।
महर्षिभिः समासीनं पूर्वं सिद्धास्पदोपमम् ॥ ८० ॥
तत्रापश्यत्स धर्मात्मा निःसहीस्थानमुत्तमम् ।
अंत्यकेवलिना जम्बूस्वामिना मध्यमादिमम् ॥ ८१ ॥
ततो विद्युच्चरो नाम्ना मुनिः स्यात्तदनुग्रहात् ।
अतस्तस्यैव पादान्ते स्थापितः पूर्वसूरिभिः ॥ ८२ ॥
ततः कृतोऽपि महासत्त्वाः दुःखसंसारभीरवः ।
सन्निधाने तयोः प्राप्य पदसाम्यं समं दधुः ॥ ८३ ॥
उक्तं च—
“ दोसाण्हढिणियठा जह जह संभवइ भव्वपुरिसस्स ।
तह तह जायइ णूनं सुसम्मसामग्गिमोक्खस्स ॥ ८४ ॥”
तथा भूतमहामात्रा धर्मसंव्रतधारिणः ।
स्थापुरिति यथास्थानं जग्मुस्तेभ्यो नमो नमः ॥ ८५ ॥
ततः स्थानानि तेषां हि तथा पार्श्वे सुयुक्तितः ।
स्थापितानि यथाकार्यं प्रमाणनयकोविदैः ॥ ८६ ॥

---

१ वक्तिन्दौ इति । २ सम्यक्त्वादिर्के इति वा पाठः ।
३ दोषाण्हढिनिपाता जहा जहा संभवति भव्यपुरुषस्य ।
तथा तथा जायते नूनं सुसम्यक्त्वसामग्रीमोक्षस्य ॥

रथिन्यस्य हविष्यत्ता हविषश्च मम परम् ।
हविर्भिर्निमितं स्यात्स्मृतानां च यथायथम् ॥ ९७ ॥
तस्मादि विस्तरामं च द्रव्याणां परिणामतः ।
स्मृतानां तु तदस्यास्य मीमांसा स्यात्तथाविधा ॥ ९८ ॥
तां दृष्ट्वा स यथात्मा तस्यमूलमनुस्मृतः ।
स्वाध्याय मीमांसाणि यथा यथा (समानमर्थं) नरम् ॥९९॥
यदा स्यात्तास्यायाम यथार्थं स पुष्टिमान् ।
नातच्छस्त्यास्तस्य धरजाना रूपानतान ॥ १० ॥
सम्यगात्मानामिदं च मन्त्रात्मात्मायामपरम् ।
तथानेकगुणासाभिभत्तत्रापि तस्मात् ॥ ११ ॥
स यात्रता प्रवर्त्तधा भगवत् गुरुदक्ष ।
कामभक्त्यादिस्यासदानां गुणानां मन्त्र बहावस्नाय ॥ १२ ॥
नारगारचर्यदेवादर्श कार्य सर्वाणि ।
गानां गमपञ्चमदानां भावसाम्यार्थं यम ॥ १३ ॥
देवा या तु भवदाय स कृता स यदिदर्थं ।
देवा विज्ञानतां याव गा कथा निवृत्तिमाम् ॥ १४ ॥
तथापि प्रतयाधान्य सम्प्रदायानुरूपकार्ये ।
कार्याणि हस्तोत्तान हेतन देवार्थं गुणम् ॥ १५ ॥
[illegible] ॥ १६ ॥
[illegible] ॥ १७ ॥

[illegible]

यस्योदयाद्दया जंतोरल्पापि स्यात्कथंचन ।
यत्रापि दयाभावो घटते निर्दयेऽपि च ॥ ९८ ॥
तद्दर्शं व्याख्यया चास्य भाषा वक्तुमशक्यया ।
एवं सूक्ष्मनयानां यावतां (?) तत्परम्परा ॥ ९९ ॥
तन्मिथ्यात्वं परित्यज्यमाद्या धर्ममभीप्सुभिः ।
सम्यक्त्वं मार्गमादेयं मूलं धर्मतरोरिव ॥ १०० ॥
स धर्मः कथितो द्वेधा निश्चयाद्व्यवहारतः ।
तत्र स्वात्माभिवस्थायः स्याद्द्वितीयः पराश्रितः ॥ १०१ ॥
आत्मा चैतन्यमेकार्थस्तत्र वाचामगोचरः ।
स्वानुभूत्येकगम्यस्तात्म धर्मः पारमार्थिकः ॥ १०२ ॥
स पर्यायादि शुद्धात्मा स एव परमं तपः ।
स एव दर्शने ज्ञाने चारित्रं सुखमच्युतम् ॥ १०३ ॥
स एव संवरः मोक्षः निर्जरा चाष्टकर्मणाम् ॥
किमत्र विस्तरेणापि वस्तुतो मुक्तिरात्मनः ॥ १०४ ॥
अथ तत्रासमर्थः सन् कश्चिन्मोहोदयावृतः ।
व्यावहारिकधर्मेषु स्यान्निरीहोऽपि वर्तते ॥ १०५ ॥
माऽस्कार्षीत्संशयं कश्चिन्न ह्यार्थिनिश्चयात् ।
पिपासुर्मेघसूरस्याऽप्यापभाणोऽस्ति तद्गुणात् ॥ १०६ ॥
यथा स्वदारतः सद्दृष्टिः स्वात्मोत्पन्नसुखामृते ।
तत्सुखाप्तेषु संप्रीतिः परवस्तुषु भावत ॥ १०७ ॥
तत्र रागादिकत्यागात्मा तद्गुणग्रामचिंतनात् ॥
व्यावहारिकधर्मे स्यान्नास्था व्रतधारिणि ॥ १०८ ॥

१ दर्पसहित ।

कषायादिषु दुर्ध्यानवधनार्थं तदर्पयन् ।
अर्हत्पूजादिकं षष्ठेऽनशनादिविधेः क्रमात् ॥ १०९ ॥
एकाक्ष्यादिषु पंचाक्ष्यपर्यन्तेषु च जंतुषु ।
समता स्यात्स्वतस्तस्य यः स्वयं दुःखभीरुकः ॥ ११० ॥
हिंसादेर्विरतिः प्रोक्तं व्रतं तद्द्विविधं मतम् ।
देशतः सर्वथा चैते श्रावकाऽणु यतिमहत् ॥ १११ ॥
तल्लक्षणं तु संक्षेपाद्वक्ष्यमाणं यथागमम् ।
नात्र विस्तरतः प्रोक्तं इतो संबन्धमात्रतः ॥ ११२ ॥
यत्फलं चास्य धर्मस्य महेन्द्रादिमहोदयः ।
सर्वं धर्मांस्तल्लभ्य धान्यार्थिन कुटुंबिन ॥ ११३ ॥
ज्ञातधर्मफलः सोऽयं स्तूपान्यभिनवस्वतः ।
कारयामास पुण्यार्थं यत्र केन निवार्यते ॥ ११४ ॥
यत्र कृते धनं वैनुः केचिद्धर्मकृतेऽर्थतः ।
तद्व्यायमसौ तत्र यथा स्यादु महोपमम् ॥ ११५ ॥
श्रीमं शुभदिने लग्ने मंगलद्रव्यपूर्वकम् ।
तास्ताह स समारंभं कृतवान् पुण्यवानिह ॥ ११६ ॥
ततोऽप्येकाग्रचित्तेन सावधानतयानिशम् ।
महादरतया सप्तमिन्यी पूर्णानि पुण्यभाक् ॥ ११७ ॥
स्तूपानां पंच चापैकं शुद्धं चाविमलोदय ।
स्तूपानां तत्समीपे च द्वादश द्वारिकादिकम् ॥ ११८ ॥
संवत्सरे गताम्यानां स्तूपानां पार्श्वं क्रमात् ।
शुद्धैस्त्रिसप्तभिरन्यैश्च साधिकं दधति स्फुटम् ॥ ११९ ॥

१ धान्यस्य तुषः । २ ठोकर । ३ विस्तारयामासुः ।

शुभे ज्येष्ठे महामासे शुक्ले पक्षे महोदये।
द्वादश्यां शुभवारे स्याद् यत्रीनां च नवोपरि ॥ १२० ॥
परमाद्यर्पयं पूर्ण स्थानं तीर्थमनुत्तमम्।
स्वभ्रं रुक्मगिरेः साक्षात्प्र सप्तमिवारिवृतम् ॥ १२१ ॥
पूजया च यथाभक्ति सूरिर्मे प्रतिष्ठितम्।
चतुर्विधमहासंघ समाहूयाम धीमता ॥ १२२ ॥
ततोऽप्याशीर्वचः पूर्व परमानन्दशालिनाम्।
गुरुणा स्वेन दत्तानि दर्भा कुसुमानि मस्तके ॥ १२३ ॥
ततोऽभिवर्द्धयामास पयोंत्साहः मुहुर्मनात्।
यथेन्दुदर्शनाद्वार्द्धिर्वर्धते पयसाधिकम् ॥ १२४ ॥
अथ मध्यसभं स्थित्वा कुड्मलीकृतकरद्वयम्।
पृच्छति स्म स भूभृपुः सर्वमेतत्कथानकम् ॥ १२५ ॥
यूयं परोपकाराय बद्धकक्षा महाधियः।
उत्तीर्णाश्च परं तीरं कृपापारिमहार्णवं ॥ १२६ ॥
ततोऽनुग्रहमाधाय वाञ्छयत्यं तु मे मनः।
जम्बूस्वामिपुराणस्य शुश्रूषा हृदि वर्तते ॥ १२७ ॥
कथं श्रेयोऽर्जितं तेन कथं प्राप्तं महोदयम्।
कथं केवलमुत्पाद्य सुखमव्यं सुखमव्ययम् ॥ १२८ ॥
कथं विद्युच्चरो नाम्ना तमिमित्तादभून्मुनिः।
तेन सार्द्धं मुनीनां स्यात्पञ्चशतं पञ्च जितेन्द्रियम् ॥ १२९ ॥
इदं महोपसर्गं हि सपापाप सहिष्णवः।
समभूवन्त महात्माना न स्खलन्तेपु समापिताः ॥ १३ ॥

कथं चैतत्कथावृत्तं कथयाम्यसमविस्तारात् ।
यथा बालैरपि मायो वाच्यं स्याल्लघुमृदूक्तितः ॥ १३१ ॥
इत्युक्त्वा युक्तिताऽभिज्ञः स्थितो मार्गयमीव सः ।
साधु साधुभिराज्ञातं साधा मृक्तिभि॰ त्वया ॥ १३२ ॥
ततः श्रीमत्सुपर्णश्री मल्ल प्रोवाच मिष्टवाक् ।
मन्येऽसम गुरूणां वा कृपया ज्ञापिता यतः ॥ १३३ ॥
सर्वेष्योपि लघायांम कथलं न क्रमादिह ।
वयसाऽपि लघुबुद्धो गुणैर्ज्ञानादिभिस्तथा ॥ १३४ ॥
गुरोरनुग्रहं ज्ञात्वा सर्वैरादेशितस्स्वयम् ।
अन्यथा तादृशो रंकः कथं वाचालतां दधौ ॥ १३५ ॥
मृगारिरिति नाम्ना स्यादुत्कर्षो न गजद्विषाम् ।
अत्र छायावतारेऽपि महत्त्वं महतां कियत् ॥ १३६ ॥
किं तम प्रभयेनेह च निसगाच्च सज्जना ।
धाराधरायत येषां कृपाम्बुशिशिरं वच ॥ १३७ ॥
पविभीकुरुते चित्तं निर्वापयति तपन[1] ।
पुण्यसस्यादिक ध्रुव सदास्तां हृदि मेऽनिशम् ॥ १३८ ॥
दुर्जनाऽप्यधमो वा सद्विक्रियायै स दुष्टधीः ।
यतोऽप्यनुद्धत नम्र यत्र सन्मानिताऽपि च ॥ १३९ ॥
भवेत्साधुरसाधुर्वा कृतं चिंतनयानया ।
स्पष्टं सुसाम्यं कार्यं सर्वः स्वार्थं समीहताम् ॥ १४० ॥
यदि सति गुणा प्राप्यामभीष्टायाऽप्या क्रमात् ।
साधवः साधु मन्यन्त का भीतिः मठविद्विषाम् ॥ १४१ ॥

१ पावकः । २ प्रीतिं करोति । ३ ममम् ।

अथ साधूनसाधूंश्च मनिषिज्ञापयाम्यहम् ।
अम भ्रान्तः प्रमादाद्वा समर्थ्यं स्वसिन मयि ॥ १४२ ॥
मृदूक्त्या कथितं किंचिदन्ययाप्यस्तमत्सरा ।
स्वानुभूत्यादि तत्सर्वं परीक्ष्यास्तनुमर्हथ ॥ १४३ ॥
इत्याराधितसाधूक्तिर्हृदि पंचगुरून् नयन् ।
जम्बूस्वामिकथाख्याप्रासादारमार्ने तु धुनाम्यहम् ॥ १४४ ॥
सोऽहमात्मा विशुद्धात्मा चिद्रूपी रूपवर्जित ।
अतः परं य(च) का संज्ञा सा मदीया न सवत' ॥ १४५ ॥
यज्जानाति न तनाम यन्नामापि न बाधवत् ।
इति भेमात्वयानाम कथ कर्तुं निपुणस्वे ॥ १४६ ॥
अथास्म्याल्लैखिसावेकोऽहं भ्रम्यनिभयात् ।
नाम्ना पयायमात्रत्वादनंतस्यपि किं वदे ॥ १४७ ॥
धन्यास्ते परमात्मतत्त्वममलं प्रत्यक्षमत्यक्षतः
साक्षात्स्वानुभवकगम्यमहसा विंदंति ये साधवः ।
सान्द्रं सज्जनतया न मज्जनतया प्रज्ञाम्बितार्तमेखा–
स्वभानंतमुम्स्वामृताम्बुसरसीहंसाश्च तेम्यो नम ॥ १४८ ॥

इतिश्रीजम्बूस्वामिचरिते भगवत्पूर्वापरविमलतीर्थकरोपदेशानुसरित–
स्याद्वादानवद्यगद्यपद्यविद्याविशारदपण्डितराजमल्लविरचिते
साधुपासाख्यसाधुटोडरसमभ्यर्थिते
कथाऽमुखवर्णनो नाम प्रथम सर्ग ।

अथ द्वितीयः सर्गः



सम्यक्त्वरत्नं ममताम्बुराशौ पोतायमानं निपतज्जनानाम्
श्रीसाधुसाधार्द्धवि श्रेष्ठरस्य पासास्पजस्यासिलक्षर्मणे वै ॥ १ ॥

इत्याशीर्वादः ।

श्रीनाभेयं जिनं वंदे वृषतीर्थप्रवर्तकम् ।
अजितं निर्जिताशेषकर्माणं च जगद्गुरुम् ॥ १ ॥

नानान्तरीपनिकरैः परितः परीतं
स्वर्णाचलस्फुरदनूपमवारणोऽसौ ।
गंगौघचामरसुशोभित एष जंबू–
द्वीपोऽधिराज इव राजति मध्यवर्ती ॥ २ ॥

तत्रार्द्धेन्दुसमाकारं क्षेत्रं स्याद्भारताह्वयम् ।
उत्सर्पिण्यवसर्पिण्योर्षट्कीर्षमामिभास्पदम् ॥ ३ ॥

गंगासिन्धुनदीभ्यां च षड्खंडीकृतविग्रहम् ।
विजयार्द्धनगं भित्त्वा गताभ्यां लवणाम्बुधौ ॥ ४ ॥

द्विरुक्ता सुषमाद्या स्याद्द्वितीया सुषमा मता ।
सुषमा दुःषमान्त्यान्या सुषमांता च दुःषमा ॥ ५ ॥

---

१ द्वीपान्तरीपनिकरैः परितः परीतः
स्वर्णाचलस्फुरदनूपमवारणोऽसौ ।
गंगौघचामरविराजित एष जम्बू–
द्वीपोऽधिराज इव राजति मध्यवर्ती ॥ आदीश्वरचरित्रम् १–७ ।

२ तत्र । ३ अवस्थाः । ४ वर्तते ।

पञ्चमी दुःषमा ज्ञेया समा षष्ठ्यतिदुःषमा ।
भेदा इमेऽवसर्पिण्या उत्सर्पिण्या विपर्ययः ॥ ६ ॥
उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यौ कालौ सान्तर्मिताविमौ ।
स्थित्युत्सर्पावसर्पाभ्यां सान्वयाभिधानकौ ॥ ७ ॥
कालचक्रपरिभ्रान्त्या षट्समाः परिवर्तनं ।
तावुभौ परिवर्तेते तामिस्रेतरपक्षवत् ॥ ८ ॥
पुरा स्यादवसर्पिण्यां क्षेत्रेऽस्मिन् भरताह्वये ।
सुषमं सुषमाभिख्य प्रथते प्रथमा समा ॥ ९ ॥
सागरोपमकोटीनां कोटी स्याच्चतुराहता ।
तस्य कालस्य परिमा यथा स्थितिरियं मता ॥ १० ॥
देवोत्तरकुरुष्वासु या स्थितिः समवस्थिता ।
सा स्थितिर्भारते वर्षे युगारंभे स्म जायते ॥ ११ ॥
तदा स्थितिर्मनुष्याणां त्रिपल्योपमसम्मिता ।
षट्सहस्राणि चापानामुत्सेधो वपुषः स्मृतः ॥ १२ ॥
तत्रास्थितमनाः सौम्याः सुन्दराकारधारकाः ।
निष्टप्तकनकच्छाया दीप्यन्ते ते नरोत्तमाः ॥ १३ ॥
मुकुटं कुण्डले हारो मेखला कटकाङ्गदौ ।
केयूरं ब्रह्मसूत्रं च तेषां शश्वद्विभूषणम् ॥ १४ ॥
एते पुण्योदयाद्भूतरूपलावण्यसंपदः ।
रमन्ते चिरं स्त्रीभिः सुरा इव सुरालये ॥ १५ ॥
महासत्त्वा महाधैर्या महोरस्का महौजसः ।
महानुभावास्ते सर्वे महीयन्ते महोदयाः ॥ १६ ॥

१ सान्वयाभिधानौ । २ [illegible] । ३ [illegible] । ४ देवाः । ५ निरंतरं । ६ महात्मानः ।

तेषामाहारसंप्रीतिर्जायते दिवसैस्त्रिभिः ।
कुवलीफलमात्रं च दिव्यान्नं विघ्नणन्ति ते ॥ १७ ॥
निर्व्यायामा निरातंका निर्नीहारा निरामयाः ।
निःस्वेदास्ते निराबाधं जीवन्ति पुरुषायुषं ॥ १८ ॥
स्त्रियोऽपि तावदायुष्कास्तावदुत्सेधवृत्तयः ।
कल्पद्रुमेषु संसक्ताः कल्पवल्ल्य इवोज्ज्वलाः ॥ १९ ॥
पुरुषेष्वनुरक्तास्तास्ते च तास्वनुरागिणः ।
यावज्जीवमसंक्लिष्टा भुंजते भोगसंपदः ॥ २० ॥
स्वभावसुंदरं रूपं स्वभावमधुरं वचः ।
स्वभावचतुरा चेष्टा तेषां स्वर्गच्युतामिव ॥ २१ ॥
मद्याहारगृहावाद्यमाल्यभूषाम्बरादिकम् ।
भोगसाधनमेतेषां सर्वकल्पतरूद्भवम् ॥ २२ ॥
मंदगंधवहाधूतचलच्छुकपल्लवाः ।
नित्यालोका विराजन्ते कल्पोपपदपादपाः ॥ २३ ॥
कालानुभावसम्भूतप्रभासामर्थ्यशालिनो ।
कल्पद्रुमास्तदा तेषां कल्पन्तेऽभीष्टसिद्धये ॥ २४ ॥
मनोभिरुचितान् भोगान् यस्मात्पुण्यकृतां नृणाम् ।
कल्पयंति ततस्तज्ज्ञैर्निरुक्ताः कल्पपादपाः ॥ २५ ॥
मद्यतूर्यविभूषास्रग्ज्योतिर्दीपगृहांगकाः ।
भोजनामत्रवस्त्रांगा दशधा कल्पवासिनः ॥ २६ ॥

---

१ बदर इति दैवीभाषायां । २ भक्षयन्ति । ३ मलमूत्ररहिता । ४ निरुपद्रवित । ५ देवानामिव । ६ चारित्रं । ७ चेष्टा । ८ पवन । ९ कल्पवृक्षा । १० वर्णिता ।

इति स्वनामनिर्दिष्टां कुर्वतार्थक्रियाममी ।
संज्ञाभिरेव विख्यातास्तदा भाक्तिमतन्वत ॥ २७ ॥
ततो भुक्त्वा चिरं भोगान् स्वपुण्यपरिपाकजान् ।
स्वायुरन्ते विलीयन्ते ते घना इव शारदाः ॥ २८ ॥
भूमिकारणमासाद्य तत्क्षणात्स्वप्नवर्ने वा ।
आविर्भाव तद्वं स्वपत्या ते दिवं यान्त्यनेनसः ॥ २९ ॥
इत्याद्यकालसन्दर्भोऽवसर्पिण्या वर्णितो मनाक् ।
लसत्कुरुसमः सपा विविरधामपार्यताम् ॥ ३० ॥
ततो यथाक्रमं तस्मिन् काले गलति मन्दताम् ।
यातायां वृक्षवृद्धायुःशरीरोत्सवभूमिषु ॥ ३१ ॥
सुषमासमः कालो द्वितीयः समवर्तत ।
सागरोपमकोटीनां तिस्रः कोट्योऽस्य संमितिः ॥ ३२ ॥
तदास्य (तदास्मिन्) भारते वर्षे मध्यमभोगभुवां स्थिति[1] ।
आसीत् स्म परां भूतिं धन्यानां कल्पपादपैः[3] ॥ ३३ ॥
तदा मर्त्या हि मर्त्यामा द्विपल्योपमजीविनः[4] ।
धनुःसहस्रद्वयोच्चविग्रहाः[2] शुभचेष्टिताः ॥ ३४ ॥
कलोधरकलास्पर्धिदेहज्योत्स्नास्मिताननाः ।
दिनद्वयेन तेऽश्नन्ति वार्क्षमक्षोभमात्रकम् ॥ ३५ ॥
शेषो विधिस्तु निःशेषो हरिवर्षसमो मतः ।
ततः क्रमेण कालेऽस्मिन्नवसर्प्यत्यनुक्रमात् ॥ ३६ ॥
प्रक्षीणाम्भ्रासवीर्यादिविशेषाः साकला यदा ।
जघन्यभागभूमीनां मर्यादाविरभूत्तदा ॥ ३७ ॥

१ स्थिति । २ विग्रहाः । ३ पादपः । ४ [illegible] । ५ [illegible] ।

यथावसरं संप्राप्तस्तृतीयः कालपर्ययः ।
प्रवर्तते सुरामत्र स्वां मर्यादामलङ्घयन् ॥ ३८ ॥
सागरोपमकोटीनां कोट्यौ द्वौ लब्धसंस्थिती ।
कालेऽस्मिन् भारते सर्वे मर्त्याः पल्योपमायुषः ॥ ३९ ॥
गव्यूतिमितोच्छ्रायाः प्रियङ्गुश्यामविग्रहाः ।
दिनान्तरेण संप्राप्ता धात्रीफलमिताशना ॥ ४० ॥
ततस्तृतीयकालेऽस्मिन् व्यतिक्रामत्यनुक्रमात् ।
पल्योपमाष्टभागस्तु यदास्मिन् परिशिष्यते ॥ ४१ ॥
तदा कुलकरा नाम्ना प्रतिश्रुत्यादयः क्रमात् ।
चतुर्दश भवन्त्यत्र कर्म्मभूस्पर्शभूपवत् ॥ ४२ ॥
तदा कर्मभुवां सर्वो व्यवहार[1] भवत ।
मर्त्येप्रभूपंवराद्यामनुलंघ्य ममा इव ॥ ४३ ॥
काले मोत्स्यस्य चापस्य मपशरुपाद्यः क्रमात् ।
जायन्तेऽत्र यथा नाभिराजः कुलकरस्य च ॥ ४४ ॥
तस्यैव काले सत्सदा नाभिकार्कपुरस्थिपः ।
प्रादुरासन्नभोभाग सान्द्रा[2] सेन्द्रशरासना ॥ ४५ ॥
नभानीरप्रभारूपजमृम्भऽर्म्भोमुचो घन ।
कालादुद्भूतसामर्थ्यरारूपः मुक्तपुद्गलै ॥ ४६ ॥
सिषुर्दन्तो मराध्माना सर्पता रैमिर घना ।
सदैमरंसा मन्दिना नागा इव सबृंहिता ॥ ४७ ॥

१ कालपादी । २ प्रभवभूले । ३ विपुर । ४ मिर्व क्विंस्त्यस्यापवनेऽत्र वर्णो इत्यतः । ५ प्रमदीमवत् । ६ हस्तोन्नताश्रिताः ।

घनाघनघनध्वानैः महता गिरिभित्तयः ।
मन्याक्रोशमिवातन्वुः प्रवृष्टाः प्रतिशब्दकैः ॥ ४८ ॥
यथा च वातवान्कुर्वन् कलापौघान् कलापिनाम् ।
घनाघनाभिमुक्तांभः कणधारी समीरणः ॥ ४९ ॥
चातका मधुरं रेणुरभिनंद्य घनागमम् ।
अकस्माद्वारिधारमपातन शिखिनां कुलम् ॥ ५० ॥
अभिषेक्तुमिवारब्धा गिरीनेभासुर्घा पयाः ।
अकूपारं प्रपर्वतः प्रसरद्वारिनिर्झरात् ॥ ५१ ॥
घनंतो बद्धमुक्तकरवृष्टधारा पयोधराः ।
रुदंत इव शोकार्ताः कल्पपक्षपरिक्षय ॥ ५२ ॥
विद्युन्मद्यी नभोरंगे विविधाकारधारिणी ।
प्रतिक्षणविवर्तांगी नृत्यारंभमिवातनोत् ॥ ५३ ॥
तडित्कलत्रसंसक्तं कलापसर्पहासतः ।
कपिमवर्त्ककर्मेषेर्म्यर्कं पामरैकाधिपम् ॥ ५४ ॥
तदा जलभरोन्मुक्ताः मुक्ताफलकलपद्धगाः ।
मही निर्वापयामासुर्दिवाकरकराप्पतः ॥ ५५ ॥
गुणानामिस्य सामग्रीं प्राप्य ग्रुम्यादिलक्षणम् ।
संरक्षार्थ्यांकुरावस्थामगुत्पा कणिषाश्रिवः ॥ ५६ ॥
शनैः शनैर्विवृद्धानि क्षेत्रेषु विरलं तदा ।
सस्यान्यकृष्टपच्यानि नानाभेदानि सर्वतः ॥ ५७ ॥
प्रजानां पूर्वमुक्तानाकारादपि च तादृशान् ।
सुपक्वानि यथाकालं फलदायीनि प(ज)ज्ञिरे ॥ ५८ ॥

१ मयूरनिष्कलम्बुम्म । २ माध्यत्वमिदं इति वा पाठः ।

नातिवृष्टिरवृष्टिर्वा समासीत्किन्तु मध्यमा ।
वृष्टिस्तत्सर्वधान्यानां फलावाप्तिरविप्लुता ॥ ५९ ॥
षष्टिकाः कलमव्रीहियवगोधूमकङ्गवः ।
श्यामाककोद्रवोदारनीवारवरकास्तथा ॥ ६० ॥
तिलातस्यौ मसूराश्च सर्षपो धान्यजीरकौ ।
मुद्गमाषाढकीराजमाषनिष्पावकाश्चणाः ॥ ६१ ॥
कुलत्थत्रिपुटौ चेति धान्यभेदास्त्विमे मताः ।
सकुसुम्भाः सकार्पासाः प्रजाजीवनहेतवः ॥ ६२ ॥
उपभोगेषु धान्येषु सत्स्वप्येषु तदा प्रजाः ।
तदुपायमजानानाः स्वतो मूर्च्छामुहुर्मुहुः ॥ ६३ ॥
कल्पद्रुमेषु कार्त्स्न्येन प्रलीनेषु निराश्रयाः ।
युगस्य परिवर्तेऽस्मिन्नभूवन्नाकुलाकुलाः ॥ ६४ ॥
तीव्रायामशनासा (या) यां क्षुत्क्षीणाहारसंज्ञया ।
जीवनोपायसंशीतिव्याकुलीकृतचेतसः ॥ ६५ ॥
युगमुख्यमुपासीना नाभिमन्वमुपश्चिमम् ।
ते तं विज्ञापयामासुरिति दीनगिरो नराः ॥ ६६ ॥
जीवामः कथमेवाथ नाथानाथा विना द्रुमैः ।
कल्पदायिभिराकल्पमभिस्माधरपुण्यकाः ॥ ६७ ॥
इमे केचिदितो देव तरुभेदाः समुत्थिताः ।
शाखाभिः फलनम्राभिराह्वयन्तीव नोऽधुना ॥ ६८ ॥

१ त्रपुटश्च । २ नाडी । ३ आमनी । ४ 'वणिजः' । ५ दिव्यरसमधु । ६ युगमुख्यम् । ७ प्रथमा ।

किमिमे परिहर्तव्याः किं वा भोग्यफला इमे ।
फलेग्रहीनिमेऽस्मान्वा निरुणन्त्यनुपान्ति वा ॥ ६९ ॥
अमीषामुपशल्येषु केऽप्यमी तृणगुल्मकाः ।
फलन्नविसा भान्ति विषवृक्षा इतोऽमुतः ॥ ७० ॥
एतेषामुपयोगः स्याद्विनियोज्य कथं नु वा ।
किमिमे स्वैरसंप्राप्या न वेद्मीदं वदाद्य नः ॥ ७१ ॥
त्वमेव सर्वमप्येतद्वेत्सि नाथेऽनभिज्ञकाः ।
पृच्छामो यथयथार्थांस्त्वत्तो भूरि प्रसीद नः ॥ ७२ ॥
इति कर्तव्यतामूढानविज्ञातस्वदार्थकान् ।
नाभे (मि)र्न भयमित्युक्त्वा व्याजहार पुनः सतान् । ७३ ।
इमे कल्पतरूच्छेदे द्रुमाः पक्वफलानताः ।
युष्मानवाद्य पुष्णन्ति पुरा कल्पद्रुमा यथा ॥ ७४ ॥
भवद्भिरस्त्विमे भोग्याः कार्या न भ्रान्तिरत्र वः ।
अमी च परिहर्तव्या दूरतो विषवृक्षकाः ॥ ७५ ॥
इमाश्च कारवनौषध्यः स्तंबकार्यादयो भवाः ।
एताः संमेत्य संभाव्य व्यंजनाद्यैः सुसंस्कृतम् ॥ ७६ ॥
स्वभावमधुराश्चैते दीर्घाः पुंड्रेक्षुदण्डकाः ।
रसीकृत्य यथायथ्या दन्तैर्यन्त्रैश्च पीडिताः ॥ ७७ ॥
गजकुम्भस्थले तेन मृदा निर्वर्तितानि च ।
पात्राणि विविधान्येषां स्थाल्यादीनि दयामुना ॥ ७८ ॥
इत्याद्युपायकथनैः प्रीत्या सत्कृत्य तं मनुम् ।
भेजे (जु) स्वतर्पिता भूमिं प्रजाः कालोचितां तदा ॥ ७९ ॥

१ समीपेषु । २ यथार्थमिति त्वत्तः पृच्छामः ।

प्रभान्तां विकृत्यूत्वा भोगभूमिस्थितिच्युतौ ।
नाभिराजस्ततोऽभूतो भेजे कल्पतरुस्थितिम् ॥ ८० ॥
तस्याद्वाहकल्याणं मरुदेव्या समं यदा ।
यथाविधि सुराश्चक्रुः पाकशासनशासनात् ॥ ८१ ॥
तत्राथापि महादेशानयोध्यां च पुरीं व्यधुः
ग्रामपत्तनसीमादि सर्वं चक्रु[१] सुरास्तदा ॥ ८२ ॥
ततःप्रभृति देशेऽस्मिन् वर्तते कर्मभूरिति ।
अवस्थांतरमेव स्यात्कालचक्रपरिभ्रमात् ॥ ८३ ॥
सागरोपमकोटीनां कोटि स्याच्चतुर्थस्थितिः ।
तुर्यपंचमषष्ठाश्च भेदास्तत्राप्यमी क्रमात् ॥ ८४ ॥
सप्तोत्कर्षस्य कस्तुर्यो कालः स्यात्किंचिदूनक[२] ।
द्वाचत्वारिंशदब्दानां सहस्राणि विनैव सः ॥ ८५ ॥
तदादौ तुर्यकालस्य वृषभस्तीर्थकृद्भवेत् ।
ततःप्रभृति मासस्य भागस्य भक्ष्याऽभवत् ॥ ८६ ॥
तदोत्सेध शरीरस्य धनुः पंचशतं मतम् ।
उत्कर्षेण मनुष्याणां पंचविंशतिसाधिकम् ॥ ८७ ॥
आयुःप्रमाणमाख्यातं पूर्वाणां कोटिरुत्तमम् ।
अप्यर्धं च निकृष्टं च विज्ञेयं परमागमात् ॥ ८८ ॥
तत्र तीर्थकराः सर्वे चतुर्विंशतिसम्मिता ।
जायन्ते पंचकल्याणमासपूजार्द्धिवैभवा ॥ ८९ ॥
तत्र केचिन्महात्मानः कालमत्रिपयमादिह ।
मासावीन्द्रियसौख्यास्त निर्वाणेत्सा तुमा वयम् ॥ ९० ॥

१ पाठे [illegible] । २ [illegible] । ३ [illegible] ।
४ निर्वाणं सता ।

केचित्सम्यक्त्वपूर्वाणि व्रतानि पाल्य महाधियः ।
सर्वार्थसिद्धिपर्यंतं सुगतिं सुखसंगिनः ॥ ९१ ॥
परे व्रतानि संप्राप्य सम्यक्त्वेन विना भुवि ।
कुदत्वाऽपि मिथ्यायागाद् प्रेमयक्षसुखं ययुः ॥ ९२ ॥
केचित्सम्यक्त्वरिक्ताश्च व्रतेनापि परिच्युताः ।
भद्रा दानरतिं प्राप्य भोगभूमौ प्रयान्ति हि ॥ ९३ ॥
परे पूर्वं हि बद्धायुः पश्चादुत्पन्नदर्शनाः ।
सत्पात्रदानतो नूनमगुर्भोगभूसुखम् ॥ ९४ ॥
केचिद्रागेषु संसक्ताः प्राणिवर्गेषु निर्दयाः ।
धर्मोत्तरास्तथा दुष्टाः दुःखं श्वभ्रे पतंत्यमी ॥ ९५ ॥
हा दुस्त्याज्यं महदुष्कर्म दुर्लक्ष्यं प्राणिनां महत्
येन धर्मस्य सामग्री सर्वापि विफलीकृता ॥ ९६ ॥
इत्यस्य दुर्विपाकोऽसौ यथा स्यात्पुण्यपापयोः ।
तस्माज्जिनपदे सद्भिः कर्मभूरिविनाशतः ॥ ९७ ॥
अपि चास्मिन् महाभागाश्चक्रिणो द्वादश स्मृताः ।
केशवास्तावदेवैव बलाश्चापि नव स्मृताः ॥ ९८ ॥
त्रिषष्टिस्तुसमाख्यैते महापुरुषगोचराः ।
जायंते यत्र निर्दिष्टा साऽत्र कालश्चतुर्थकः ॥ ९९ ॥
सर्वत्र मुनयः सन्त्यसंति सद्व्रतधारिणः ।
दृढव्रतधराः केचित्संति ये गृहमेधिनः ॥ १०० ॥

१ भरते । २ भरावत्य । ३ प्रतिमाधारका ।

गृहस्थाश्च सदाचाराः पूजादानादितत्पराः ।
एकादिकं यथाशक्ति प्रतिमारूपं व्रतं दधुः ॥ १०१ ॥
किन्त्वैकादशसंख्यव्रतधानिह कश्चन ।
त्यक्तागारः सनिर्विण्णस्तिष्ठेत मुनिवत्तथा ॥ १०२ ॥
भागोपाङ्गमयाचारं सर्वो जैन समाजनः ।
कदाचिदुन्मना न स्याद्यत्कं पार्श्वजिनामिह ॥ १०३ ॥
किन्तु हुण्डावसर्पिण्यां कालदोषादिह क्वचित् ।
प्रादुर्भवति पाखण्डास्तथापि च नृपसतिः ॥ १०४ ॥
गतायामवसर्पिण्यामुत्सर्पिण्यां तथैव च ।
असंख्यकोटिवारे स्यादेका हुण्डावसर्पिणी ॥ १०५ ॥
अवश्य भाविनी सेयं भूत्वा चापि गता पुरा ।
अनवानवदृश्चापि वत्सरे सम्मासवत् ॥ १०६ ॥
तदा भवत्यनर्थानां प्रादुर्भावो बलादिह ।
सीमान कालचक्रस्य भर्तुं शक्यो न कश्चन ॥ १०७ ॥
यथा स्वयं स्वभावाद्धि वर्धन्ते सरिदम्बव ।
तथा कालपरिभ्रान्त्या द्रव्याणां च व्यवस्थितिः ॥ १०८ ॥
तथया तत्र हुण्डावसर्पिण्यां या यथागमम् ।
तीर्थेशानामुपसर्गो हि महानर्थो महात्मनाम् ॥ १०९ ॥
मानभङ्गश्च चक्रेश जायते भरतपूर्वकः ।
इत्यादि बहवोऽन्यथा सन्ति चाचारगोचराः ॥ ११० ॥
हिंसा प्राणिवधश्चैव दुष्कर्मार्जनकारणम् ।
यागार्थं भवत हिंसा मन्यन्ते दुर्धियो द्विजाः ॥ १११ ॥

एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन ।
संति वेदान्तिनः केचिद्ब्रह्माद्वैतप्रवादिनः ॥ ११२ ॥

तन्मतं यथा—

“विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतः पात्
संबाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एक एव” ॥१॥

सर्वथानित्यमेवैतत्तत्त्वं केचिज्जगुर्यथा ।
आकाशं च तथात्मादि सर्वथैकान्तवादिनः ॥ ११३ ॥
यत्सत्तत्क्षणिकं सर्वं यथा स्वप्नश्च वारिदः ।
इति बौद्धादयः केचित् क्षणिकैकान्तवादिनः ॥ ११४ ॥
पंचभूतात्मकं तत्त्वं जीवो नास्तीह कश्चन ।
ततो बंधो न मोक्षोऽस्ति यतः कापालिका इति ॥ ११५ ॥
ज्ञानानां यदि धर्माणां संतानोच्छेदनात्मकः ।
मोक्षो वाच्यः स जीवस्य मन्यते दुर्धियः पर ॥ ११६ ॥
इत्यादि बहवो प्रोक्तास्तेषामंतर्भिदात्मकाः ।
ते च हुंडावसर्पिण्यां जायंते नान्यदा क्वचित् ॥ ११७ ॥
स्याद्वादगर्भिणी जीयाज्जैनी सिद्धान्तपद्धतिः ।
ययैव सप्रसारेण खंडिताः कुमतादयः ॥ ११८ ॥
निग्रहस्थानमेतेषां पुरस्ताद्दर्शयते कविः ।
मुख्यो विपश्चितो वाच्यस्तत्र दिग्मात्रतोऽपरः ॥ ११९ ॥

१ सर्वं वै खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन ।
आरामं तस्य पश्यन्ति न तत् पश्यति कश्चन ॥
इति छान्दोग्य-उपनिषदि ३-१४।

२ शुक्लयजुर्वेदसंहितायां १७-१९।

अपि चैषां कुलिंगानि नानारूपाणि सर्वशः ।
त्रिशूलादिमयशस्त्रैर्विकृतानि भवन्त्यहो ॥ १२० ॥
एकदंडी द्विदंडी च त्रिदंडी चापि कश्चन ।
हंसः परमहंसोऽपि महारण्ये पशूपमाः ॥ १२१ ॥
इतिप्रभृति यावन्ति कुलिंगानि कुलिंगिनाम् ।
नाममात्रतया तानि समा भवन्तु न कश्चन ॥ १२२ ॥
अलं वर्णनया चास्य यत्र पापा समस्ततः ।
हन्यन्ते यवना भूपाः साधवो व्याधिपीडिताः ॥ १२३ ॥
इदमत्र समाकूतं विज्ञेयं परमार्थिभिः ।
जैना धर्मं क्षणं यावद्विस्मार्यो न महात्मभिः ॥ १२४ ॥
यथाप्याताऽपि सौवर्ण्यं जात्यजांबूनद स्वतः
न जहाति तथा साधुः क्षुद्रैः क्षुण्णोऽपि धर्मवत् (त्वम्) ॥१२५॥

१ ते च त्रिदण्ड एव भगवन्नामधेयानुचिन्त्यमिषीक्ते कुटीचर–बहूदक–हंस–परमहंसभेदात् । तत्र त्रिदण्डी शिखी यज्ञसूत्री गृहत्यागी यजमानपरिग्रही सकृत्पुत्रगृहेऽश्नन् कुट्यां निवसन् कुटीचर उच्यते । कुटीचरतुल्यवेषो विप्रगेहे नैराश्यभिक्षाशनो विष्णुजापरतो नदीतीरवासी बहूदकः कथ्यते । ब्रह्मसूत्रशिखाभ्यां रहितः कषायाम्बरदण्डधारी ग्रामे चैकरात्रं नगरे च त्रिरात्रं निवसन् विधूमेषु विगताग्निषु विप्रगेहेषु भिक्षां भुञ्जानस्तपःशोषितकलेवरो देशेषु भ्रमन् हंस उच्यते । हंस एवोत्पन्नतत्त्वज्ञानश्चातुर्वर्ण्यभिक्षाभोजी स्वेच्छया दण्डधारी ईशानीं दिशं गच्छन् शक्तिहीनतायामनशनग्राही वेदान्तैकध्यायी परमहंसः समाख्यायते । एषु चतुर्षु च परः परोऽधिकः । एते च चत्वारोऽपि [illegible] धर्मार्थकेवलिनामपेक्षया गुणैः [illegible] यथा [illegible] तथा [illegible] ।

गुणरत्नसूरिकृतायां हरिभद्रसूरिषड्दर्शनसमुच्चयटीकायां पृ. ११५ ।

उक्तं च—

"एष लोक बहुमानभावित स्यान्निर्जित विविधेन कर्मणा ।
पश्यतस्तद्विकृतीभवात्मन क्षोभमति हृदयं न योगिनः" ॥१॥

इति व्यावर्णितः सोऽपि नृपः कार्ये महानिह ।
शेषा विधिस्तु सर्वोऽपि विज्ञेयः परमागमात् ॥ १२६ ॥
यदा चतुर्थकालस्य शेषमासाऽवतिष्ठते ।
तत्र स्यात्तीर्थनाथस्य यथा वीरस्य निर्वृतिः ॥ १२७ ॥
तत्र केवलबोधस्य भानूद्गतिस्तथैव हि ।
यथात्र वर्द्धमानस्य पश्चान्मोक्षं गतात्परः ॥ १२८ ॥
सधर्मा च सुधर्मा च जम्बूनामोऽन्त्यकेवली ।
यावद्द्वाषष्टि वर्षं स्याद्भगवन्निर्वृतं परम् ॥ १२९ ॥
ततो यथाक्रमं विष्णुर्नन्दिमित्रोऽपराजितः ।
गोवर्द्धनो भद्रबाहुरित्याख्याता महाधियः ॥ १३० ॥
चतुर्दशमहाविद्यास्थानानां पारगा इमे ।
कालस्थमाणमेतेषां कार्त्स्न्येन शरदां शतम् ॥ १३१ ॥
विशाखप्रोष्ठिलाचार्यौ क्षत्रियो जयसाह्वयः ।
नागसेनश्च सिद्धार्थो धृतिषेणस्तथैव च ॥ १३२ ॥
विजयो बुद्धिमान्गङ्गदेवो धर्मादिसम्मतः ।
सेनश्च दशपूर्वाणां धारकाः स्युर्यथाक्रमम् ॥ १३३ ॥
अशीतं शतमष्टाभ्यां तेषां कालसंग्रहः ।
ततोऽप्यात्माश्रितध्यानां पूर्वोपरश्च एव हि ॥ १३४ ॥

१ केवल्यागतकेवलज्ञानं जम्बूस्वामिनः पश्चात् [illegible] इति [illegible] । २ [illegible] ।

ततो नक्षत्रनामा च जयपालो (लो) महातपाः ।
पांडुश्च ध्रुवसेनश्च कंसाचार्य इति क्रमात् ॥ १२५ ॥
एकादशांगविद्यानां पारगाः स्युर्मुनीश्वराः ।
विंशद्विशतमब्दानामेतेषां कालसंग्रहः ॥ १२६ ॥
तदा तत्त्वोपदेशस्य मार्गोऽयं हीनिरिष्यति ।
करस्यनीरवन्न्यायात्साक्षं विश्वविशारदैः ॥ १२७ ॥
सुभद्रश्च यशोभद्रो भद्रबाहुर्महायशाः ।
लोहार्यश्चेत्यमी ज्ञेयाः प्रथमांगाब्धिपारगाः ॥ १३८ ॥
समानां शतमर्धं स्यात्कालोऽष्टादशभिर्युतः ।
तदा तत्त्वार्थस्य मार्गक्षिनावशिष्यत ॥ १२९ ॥
ततोऽपि हीयमानोऽसौ श्रेयमार्गोऽवतिष्ठते ।
दोषात्पंचमकालस्य हीयते बुद्ध्या नृणाम् ॥ १४० ॥
तत्र दुःषमकालेऽस्मिन् प्रमाणं जिनदेशितम् ।
शुद्धवर्षसहस्राणामेकविंशतिसंख्यया ॥ १४१ ॥
ततः श्रेण्यारम्भः स्यान्मनःपर्ययबोधयोः ।
देशावधिं विना परमसर्वावधिबोधयोः ॥ १४२ ॥
ऋद्धीनां चापि सर्वासामभावस्तपसः सतः ।
नापि देवागमस्तत्र कल्याणानामभावतः ॥ १४३ ॥
कदाचित्क्वचित्कस्मिश्चिद्देवाः कथंचन ।
आगच्छन्ति पुनस्तत्र सन्ति मोक्षे जिनागमे ॥ १४४ ॥
समास्तत्र मनुष्याणामायुर्वर्षशतं मतम् ।
विंशत्यापि कमेयद धनुरर्कं वपुः स्मृतम् ॥ १४५ ॥

१ नावात् ।

कल्पाद्यायुःशरीराणां हानिः स्याच्च प्रतिक्षणम् ।
धर्मस्यापि च कस्मिंश्चिद्विपरीते सत्त्वं च श्रेयसः ॥ १४६ ॥
तत्राप्यस्ति निराबाधं सम्यक्त्वद्वयमादितः ।
क्षायिकं च भवेत्तत्र यत्र केवलिनो जिनाः ॥ १४७ ॥
उक्तं च—
"पढमं पढमे णियदं पढमं विदियं च सव्वकालेसु
खाइयसम्मत्तो पुण जत्थ जिणा केवली तम्हि" ॥ १ ॥
महाव्रतानि सन्त्यस्मिन् देशतोऽणुव्रतानि च ।
दुर्लभानीह केषांचिद्गुणस्थानसप्तकम् ॥ १४८ ॥
किं चापि भद्रका[१] केचिद्दयादानादितत्पराः ।
शीलोपवाससंपूर्णा[२] स्वर्गं गच्छन्त्यनारतम् ॥ १४९ ॥
इत्यादीनि च कार्याणि सिध्यन्ति यत्र योगिनाम् ।
आसीत्प्रदेशे च सोऽयं कालो दुःषमसंज्ञकः ॥ १५० ॥
पर्यन्ते चास्य यत्किंचिद् वृत्तान्तं तदिहोच्यते ।
लेशतोऽप्यल्पबुद्धीनां बुद्धिसंवर्धनक्षमम् ॥ १५१ ॥
यापिनि दुःषमकालेऽस्मिन् क्षीणमेष्यति चापरे ।
षष्ठे दुःषमदुःषाख्ये वक्ष्यमाणक्रमस्त्वयम् ॥ १५२ ॥
कल्किस्सर्वविरुद्धे देशे भूपोऽपि धर्मदः ।
स्यात्कल्कीति विख्यातो हासाङ्कपिपीपमः ॥ १५३ ॥

१ प्रथमं प्रथमे नियतं प्रथमं द्वितीयं च सर्वकालेषु ।
क्षायिकसम्यक्त्वं पुन यत्र जिनाः केवली तस्मिन् ॥
इयं गाथा क्षपितेतिप्रमाणमपि पाठे नेति क्रमेण उद्धृता ।
२ निरंतरं ।

तस्य क्रिया समस्तास्ताः प्रजापीडाकरा स्मृताः ।
तासामुद्देशमात्रेऽपि न क्षमो ब्रोऽपि क वयम् ॥ १५४ ॥
तावता धावकः सर्वे विलीयते क्षय यथा ।
लोकधर्ममयः सर्वैः स्यात्कृपा विक्रियाऽथवा ॥ १५५ ॥
धर्मबंधनमेर्न च धर्मो जल्पति दुष्टधी ।
मन्ये प्राणिविनाशाय केवलं कालनोदितः ॥ १५६ ॥
अथ तत्रापि नृपः साक्षादम्युच्छिन्नमधावृतः ।
यस्मादेको मुनिर्जैनो विद्यते भावलिंगवान् ॥ १५७ ॥
एका चाप्यार्यिका तत्र यथाक्रमव्रतधारिका ।
सम्मोनिः श्रावकश्चैको जैनधर्मपरायण ॥ १५८ ॥
अथान्यधुः कल्पकारमा ध्यायन्त्येवं स पापधीः ।
न कोऽप्यत्र मदाज्ञाया परो नास्ति कराहत ॥ १५९ ॥
एवं श्रुत्वाधमाः केचिज्जगुर्निष्ठुरया गिरा ।
मुनिमुद्दिश्य दत्वाऽस्य स्यादृक् करधर्षितः ॥ १६० ॥
उक्तं च—
"राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः ।
लोकास्तदनुवर्तंते यथा राजा तथा प्रजाः ।" ॥१६१॥
इत्याकर्ण्य स पापात्मा पापः प्रावाच निन्द्याम् ।
यथाकर्णचिद्र्यं दैत्य स्यापयाय विधीयताम् ॥ १६२ ॥

१ मार्गपतितः । २ श्रीकोल्ये नोमदेवरगणपर्तितस्तबमूपपभेऽप्रि उर्क चैति श्लोक उक्तोऽस्ति ।

ततो भूपाज्ञया कर्षिर्भल्ल पञ्चा मुनस्तदा ।
यद्यापपसंशुद्धया भिक्षायमगति स्म सः ॥ १६३ ॥
क्रमात्साप्ता विशुद्धात्मा तथापासक्तसद्मनि ॥
स्वामिप्रमाऽस्तु तिष्ठात्र भावकनापि सत्कृतः ॥ १६४ ॥
यथाम्नायं विधानज्ञा प्रसारितकरद्वय ।
मास्तुकाम स माभ्यस्य ग्रास जग्राह शुद्धधीः ॥ १६५ ॥
यावद्भक्तं स वाक्षद्ध धारिता भूपकिङ्करैः ।
मा मा भुङ्क्ष्वेति दुष्कर्म्यैरभ्यागातापर्वतरिव ॥ १६६ ॥
अयं च प्रथमा ग्रासो मागपयाचितस्त्वया ।
द्विपः प्रतिदिनं सावधानाद्ग्रासाऽभिर्ग्रसनम् ॥ १६७ ॥
तत्क्रमाभ दुराचारैर्मुनिरागमकाविदैः ।
सर्व विज्ञापयामास कालावस्थांतराद्विकम् ॥ १६८ ॥
भूनमवत्समापत्तं दृष्टकास्तानर्थंधिवम् ।
मन्यमानधर्मप्रविविरिव पापक्रिया कथम् ॥ १६९ ॥
इति निश्चित्य धर्मात्मा मीवनाशापरिस्पृहः ।
त्यक्त्वा पाणिपुटाहारं सावधाना भवन्मुनि ॥ १७० ॥
यावज्जीवं चतुर्धापि मनावाक्काययोगतः ।
त्यक्त्वा (क्त) माहारकं सर्व मुनिना भवभीरुणा ॥ १७१ ॥
ततोऽप्यार्यिकया मासाद्भुक्त साधादिकं स्वतः ।
सल्लेखनाविधा विधं सावधानतया धृतम् ॥ १७२ ॥
सद्दीप भावकश्चापि चक्र सल्लेखनाविधिम् ।
मुनिमन्त्रसमागम्या विरक्त स्वशरीरकः ॥ १७३ ॥

यस्याराऽपि महात्माना स्वल्पसम्यक्त्वभूमिका' ।
क्षमायमकृशशरीराश्च दिवि' यास्यंत्यसंशयम् ॥ १७४ ॥
सदास्त्यन्तरं तत्र मूर्ध्नि राज्ञाऽप्यनन्यपि' ।
तताऽप्यनन्तरं नश्यद्विद्धि(?)स्वल्पाल्पाद्दाम्भिकम् ॥ १७५ ॥
दधिदुग्धघृताद्याश्च सर्वे सारसपर्यया ।
क्षणाच्च विलीयंत पापोद्यादिव सपद् ॥ १७६ ॥
ततो दुःषमदुःषमास्य षष्ठः कालः प्रवर्तते ।
विनष्टभागसंपत्का दुष्टश्चान्यधर्मसंज्ञकः ॥ १७७ ॥
तत्र षोडशवर्षाणां परमायुर्जिनोदितम् ।
हस्तैकं वपुरुत्सेधमुत्कर्षेण नृणां मतम् ॥ १७८ ॥
मध्यं तथा जघन्यं च विज्ञेयं परमागमात् ।
तद्वदायुःशरीरेषु तिरश्चामपि तत्क्षयम् ॥ १७९ ॥
यथा दुःखातुराः सर्वे तिर्यञ्चश्च तथा नराः ।
फलाद्याहारमांसाशा भूरन्ध्रेषु निवासिनः ॥ १८० ॥
नरा वल्कलवस्त्राढ्या मिथस्ते च विरोधिनः ।
तिर्यञ्चोऽपि महाक्रूरा युद्धं कुर्वन्त्यहर्निशम् ॥ १८१ ॥
हत्वा परस्परं पापाः कर्म स्वादंति निर्दया ।
धर्मबुद्धेरभावाच्च दुष्टकालप्रभावतः ॥ १८२ ॥
यथा' कश्चित्कदाचिच्च तत्र सर्वाणि पपतः ।
तेषां नैसर्गिकी तृष्णा प्रशमं याति न कश्चित् ॥ १८३ ॥
इत्थं वर्षसहस्राणामेकविंशतिसंमितः ।
कालो गच्छति जन्तूनां दुःखं दुष्कर्मपाकतः ॥ १८४ ॥

१ स्वर्गं । २ पापम् । ३ भ्रमक्षितु ।

वर्द्धते यस्तपोऽवश्यं भावी कालस्वभावतः ।
वर्षति सप्तसप्ताहं कारीपाम्भ्यादयः क्रमात् ॥ १८५ ॥
इत्यमेकोनपञ्चाशद्दिनं यावदुपद्रवः ।
महादुःखाकरो भीमो रूक्षकर्मात्मको भवेत् ॥ १८६ ॥
ह्रासप्राप्तिमीयानां दंपतीमिथुनं तदा ।
तत्राधिकारिभिर्देवैर्नीयते गह्वरादिषु ॥ १८७ ॥
क्षेत्रमार्यखंडेऽस्मिन् कुभिमं भस्मसात्क्षपेत् ।
अकुभिमं तु केनापि कर्तुं शक्यं न चान्यथा ॥ १८८ ॥
ततश्चिमावनिर्नित्या क्षेत्रमाभारतद्वये ।
भूतपूर्वो नयः सोऽयमित्थमित्थमनन्तशः ॥ १८९ ॥
एवं षट् समया यत्र वर्तते पारिणामिका ।
अनुलोमैर्विलोमैश्च तत्क्षेत्रं भरताह्वयम् ॥ १९० ॥
तत्रापि(स्ति) मगधो देशो विख्यातो भुवि सारवत् ।
नित्यप्रमुदिता यत्र प्रजा भोगैः कृतोत्सवाः ॥ १९१ ॥
बलाकालीपताकाढ्या स्तनिता यत्र गुंजिता ।
जीमूता यत्र वर्षन्तो भांति मत्ता इव द्विपाः ॥ १९२ ॥
न स्पृशंति कराबाधां यत्र राजन्वतीः प्रजाः ।
सदा सुकालसंनिष्पाभेतयो नाप्यनीतय ॥ १९३ ॥
यस्य सीमाविभागेषु धान्यादिक्षेत्रसंपद ।
सदैवफलसंशालिन्या भांति धर्म्या इव क्रियाः ॥ १९४ ॥
यत्र शालिवनोपांते खात्पतंती शुकावली ।
शालिगोप्योऽनुमन्यंते दधती तोरणश्रियम् ॥ १९५ ॥

१ गर्जना । २ मेघाः । ३ गोपाङ्गनाः ।

मुद्गमाषयवा धृताः शालिममा' फलानताः ।
कृतसंराविणो यत्र छोत्कुर्वतीव पक्षिणः ॥ १९६ ॥
यत्र पुंड्रेक्षुवाटेषु यत्र चीत्कारहारिषु ।
पिबंति पथिकाः स्वैरं रसं सुरसमैक्षवम् ॥ १९७ ॥
यत्र कूपतडागाद्याः काम सति जलाशयाः ।
तथापि जनतातापं हरंति रसवत्तया ॥ १९८ ॥
जनतापच्छिदो यत्र वाप्यः स्वच्छांबुसंभृताः ।
भांति तीरतरुच्छाया निरुद्धोष्णा वसुमया ॥ १९९ ॥
विपंका प्रावृषेऽप्यत्र स्वच्छा' स्फटिकसन्निभ ।
अलंघ्याः सर्वभोग्याश्च विविधा यत्र निम्नगाः ॥ २०० ॥
सरसां तीरेषु दर्पेषु रुतं हंसा विकुर्वते ।
यत्र कंठविलासमृणालशकलाकुला' ॥ २०१ ॥
वनेषु वनमातंगा मदामीलितलोचनाः ।
भ्रमंत्यविरतं यस्मिन्माद्यद्रुमिव दिग्गजान् ॥ २०२ ॥
यत्र भृंगाग्रसक्तमकर्दमा दुर्दमा सृक्षम् ।
वत्सनंति वृषा दृष्ट्वा स्थलेषु स्थलपद्मिनीम् ॥ २०३ ॥
स्वर्गावाससमा' पुर्यो निगमाः कुरुसंनिभाः ।
विमानस्पर्द्धिनो गेहाः प्रजा यत्र सुरोपमाः ॥ २०४ ॥
यत्र भंगस्तरंगेषु गमेषु मदविक्रिया ।
वैदपारुष्यमम्भःसु सरःसु जलसंग्रह ॥ २०५ ॥
गवां गणा यथाकालमासृगमाः कृतस्वना ।
पोपर्यंति पयोभि' स्वैर्मेन यत्र घनै' समाः ॥ २०६ ॥

१ मण्डका । २ स्पर्धे ।

निसर्गसुभगा नार्यो निसर्गचतुरा नरा ।
निसर्गसम्मितालापा धाम्ना यत्र गृहे गृहे ॥ २०७ ॥
यत्र सत्पात्रदानेषु प्रीतिः पूजासु चार्हताम् ।
भक्तिरात्यंतिकी शीले प्रायश्च रतिर्नृणाम् ॥ २०८ ॥
देशस्यास्यन्तमध्येऽस्ति नाम्ना राजगृहं पुरम् ।
यत्र राजन्यकं स्वच्छमासत त्रिदिवादिव ॥ २०९ ॥
यत्राभ्रंलिहसौधाग्रलग्नस्थः प्रोतकुम्भजे ।
सदा संभाव्यते पारैः सप्तपर्णं नभस्तलम् ॥ २१० ॥
जिनप्रासादशिखरं संरोपितकुम्भकैः ।
किं किमाकाशगंगायाः प्रवाहः शतधा भवत् ॥ २११ ॥
सुखमावापनस्थानां नारीणां मुखपङ्कजैः ।
बद्धपुण्डरीकाणां सरसां श्रियमावहन् ॥ २१२ ॥
यत्सुन्दरीणां सौन्दर्यं वर्ष्मे वर्ष्मं सुरस्त्रिय ।
मत्पुरुषाकिता मन्ये वस्युरुम्मपिनक्षणा ॥ २१३ ॥
यत्र तौर्यत्रिकध्वानैर्धूपधूमविवर्तनैः ।
सदैव दुर्दिनभ्रान्त्या केकां तन्वन्ति केकिनः ॥ २१४ ॥
तत्र राजाधिराजोऽयं राजते श्रेणिकः सुधीः ।
निर्भिन्नाशेषभूपालमौल्यर्पितपदद्वयः ॥ २१५ ॥
सर्वथाऽस्य गुणस्थानानि नालं वर्णयितुं कविः ।
तस्मादिङ्मात्रमत्रापि लक्ष्यं सामुद्रिकं यथा ॥ २१६ ॥

१ नभसीव धनरूपे इत्यर्थः । २ पताकाभिः । ३ तौर्यत्रिकं नृत्यगीतवाद्यं मानपर्यन्तं भवम् इत्यर्थः । मेघभ्रान्त्या । ५ केका वाणी मयूरस्य ।

शिरस्यस्य बभुर्नीला मूर्द्धजा कुञ्चितायताः ।
कामकृष्णभुजगस्य शिशवो नु विजृंभिता ॥ २१७ ॥
नेत्रभृंगे मुखाब्जे सस्मितांशूत्करकेसरे ।
दधे स्म मधुरां वाणीं मकरंदरसोपमाम् ॥ २१८ ॥
नभपार्द्वितयं रेजे ससक्तं तस्य कर्णयो ।
शुश्रुती ताविवाश्रित्य शिक्षितुं तत्प्रदर्शिताम् ॥ २१९ ॥
उपकंठमसौ दध्रे हारं नीहारसच्छविम् ।
तारानिकरमास्येन्दोरिव सवायमागतम् ॥ २२० ॥
वक्षःस्थलेन पृथुना सोऽभात्स्वंद्रनचर्चिताम् ।
मेरोर्नितम्बलक्ष्मीं शारदीमिव चन्द्रिकाम् ॥ २२१ ॥
स्कन्धोल्लासिनौ मल्लमन्यस्य शिरसान्तिके ।
बाहू तस्यायतौ नीलनिषधाविव रेजतुः ॥ २२२ ॥
सरिदावर्तगंभीरा नाभिमध्येऽस्य निर्बभौ ।
नारीदृक्करिणीरोधे वारिखातेव हृद्भुवो ॥ २२३ ॥
रसनावेष्टितं तस्य कटिमण्डलमाबभौ ।
हेमवेदीपरिक्षिप्तमिव जम्बूद्रुमस्थलम् ॥ २२४ ॥
ऊरुद्वयमभात्तस्य स्म स्थिरं पृथु सुसंहतम् ।
रामामनोगजालानस्तंभलक्ष्मीं समुद्वहन् ॥ २२५ ॥
चरणद्वितयं सोऽभादारक्तं म्रदिमान्वितम् ।
श्रितं श्रियानपायिन्या सपारीव स्थलाम्बुजम् ॥ २२६ ॥

१ मकरंदः पुष्परस इत्यमरः । २ मेघनुस्यस्य । ३ कामेन । ४ सिंचितं ।
५ कन्दनावारस्तंभः ।

रूपसंपत्प्रसुर्म्यया भूषिता भूतसंपदा ।
शरच्चन्द्रिकयेवेन्दोर्मूर्तिरानन्दिनी दृशाम् ॥ २२७ ॥
पद्मानन्यप्रमाणेषु परं मानोण्यमागता ।
यस्य धीः सर्वभावेषु दीपकस्य व्यदीप्यत ॥ २२८ ॥
सकलः सकलो विद्वान् विनीतात्मा मितेन्द्रियः ।
राज्यलक्ष्मीकटाक्षाणां लक्ष्यतामगमत्कृती ॥ २२९ ॥
अनुराग सरस्वत्यां कीर्त्यां प्रणयनिर्भयाम् ॥
लक्ष्म्यां चालम्यमातन्वन्विदुषां मूर्ध्नि सोऽभवत् ॥ २३० ॥
यस्य व्यसनमवाप्नो सद्म्यरिपवः क्षणात् ।
मवप्रभसमासास्सर्वे दवपत्री तृणा इव ॥ २३१ ॥
यस्य पादद्वयं स्मनत्मणमेति महीश्वराः ।
यशोगंधरिपाकृष्टो भ्रमरा इव कुन्देयम् ॥ २३२ ॥
सोऽप्यमज्ञानतः पूर्वं मुनमाप्युपसर्गतः ।
तीव्रसंक्लेशभावेन भद्रापुनरकस्य च ॥ २३३ ॥
पश्चात्तापैर्विशुद्धः सन् कालसम्प्रिमसावतः ।
सम्यक्त्वसेनः सोऽप्यमासीत्कर्मोदकस्थुधीः ॥ २३४ ॥
तपयाद्यतर्कं यस्य विशेषं तत्कथानकात् ।
अत्र संक्षिप्यमस्याभार्क निस्तरता मया ॥ २३५ ॥
तस्य पत्नी तु भामाऽऽसीत्सन्तति पतिव्रता ।
भवधीसम्प्रषमोक्त्या सम्यक्त्वनवासिनी ॥ २३६ ॥
संस्पंत[1] पुरवासिन्यग्रमिया भवसरसाः ।
कलमर्पतपारमाने यथेव मनुते स्म सा ॥ २३७ ॥

---

१ इति पाठे इति क्वचित् पाठः ।

रूपयौवनलावण्यगुणवारितरंगिणी ।
साभूत्सरिदिवांभोधेर्भर्तुश्छन्दानुगामिनी ॥ २३८ ॥
भजस्रं तत्समीपं सा बिभर्ति स्म स्मरातुरा ।
यद्वासीत्कल्पवल्लीव ससक्ता रतकर्मणि ॥ २३९ ॥
अथान्येद्युर्महास्थानमासीनं हरिविष्टरे ।
नमत्कोटिकिरीटाग्रैर्नृपैरासेवितं भृशम् ॥ २४० ॥
निर्झरक्षीरसंकाशचलच्चामरराजिभिः ।
वीज्यमानं सभामध्ये गिरीन्द्रमिव निश्चलम् ॥ २४१ ॥
इंदुबिम्बसमाकारसितच्छत्रोपलक्षितम् ।
श्रेणिकं तं महाराजं ददर्श वनपालकः ॥ २४२ ॥
तं स्तूय प्रणम्यादावुवाच विनयान्वितः ।
देवाश्चर्यपदं किंचिद् दृष्टं मन्यसतो मया ॥ २४३ ॥
तत्सर्वं सेवकोऽपीह वक्तुं क्षमता न कश्चन ।
तथाप्युद्दिश्यताऽश्चर्यं वाच्य वच्मि नराधिप ॥ २४४ ॥
श्रीवर्द्धमाननाथस्य महतस्त्रिजगद्गुरा ।
समवसृतिरस्यासीद्विपुलाचलमस्तके ॥ २४५ ॥
वर्णयामि किमत्राहं यामातिशयशालिनी ।
यत्र संभूय नाकस्था[1] किंकरा इव कल्पगा[2] ॥ २४६ ॥
तत्र मधुभिर्वामीपर्वैराख्यानानुकारिणी ।
घंटा प्रसरयामास जगत्कल्पामरसद्मनाम् ॥ २४७ ॥
ज्योतिर्लोके महान् सिंहनादाऽभूत्समुत्थित ।
येनाशु निर्मदीभावमवाप सुरवारण ॥ २४८ ॥

१ मिलत्वने । २ देवा ।

दध्वान ध्वनदध्मातृध्मानितानि तिरोदधन् ।
वैयतरपु गेहपु महानानकनिःस्वनः ॥ २४९ ॥
संस्तः संसरत्तैः (?) सार्धं यूयमथ निघ्नसथः ।
इतीव धापय न्नुच्चैः फणीन्द्रभवनं ध्वनन् ॥ २५० ॥
चिघ्नरान्यमरस्थानामासनं प्रचकम्पिरे ।
असमापीव तद्दृर्वं सार्धुं जिनजयोत्सव ॥ २५१ ॥
पुष्पांजलिमिवातनुः समंतात्सुरभूरुहः ।
पचश्चासाकरैर्दीप्तिर्भिगसस्कुसुमोत्करैः ॥ २५२ ॥
दिवः मसाधिमासस्त्रुम्पत्राजे ध्वमभवरम् ।
विरजीकृतभूलाक' शिशिरो मरुदाववौ ॥ २५३ ॥
इति प्रमादमातन्वमकस्मात्भुवनोदरे ।
कलशज्ञानपूर्णेन्दुर्जगदम्बिममपीपषन् ॥ २५४ ॥
तमैरावणमारूढः साक्षात्तास्ताऽभ्युपचराम् ।
पद्माकर इवात्फुल्लपंकजी गिरिमस्तक ॥ २५५ ॥
द्वात्रिंशद्वदनान्यस्य प्रत्यास्यं च रदाष्टकम् ।
सर प्रति रदं तस्मिन्नब्जिन्यका सरः प्रति ॥ २५६ ॥
द्वात्रिंशत्पसमास्तस्यास्तावत्मपितपत्रिकाः ।
तत्पत्रेषु दैवानां नचमम्तत्समा' पृथक् ॥ २५७ ॥
नृत्यंति सलपल्लवनमारभ्या सस्मितभ्रूभ ।
पश्यचित्तद्रुमपुष्पैर्नन्त्यंतः (?) प्रमर्त्यांकुरान् ॥ २५८ ॥
तासां सहासभ्रुंगाररसभावसयान्वितम् ।
पश्यंतः कौतुकीभावं मस्य पिपासिरे सुराः ॥ २५९ ॥

१ नगहज । २ देहयमतहसितम । ३ सुलोपं प्रासप्र. ।

प्रयाण सुरराजस्य ननृतुरप्सरस पुर ।
रक्तकंठाश्च किंनर्यो जगुर्जिनपतेर्जयम् ॥ २६० ॥
ततो द्वार्भिर्यदिंग्राणां पृतेना यद्गुरुकृतनाः ।
प्रसन्नुर्विलसच्छत्रचामरा प्रणतामराः ॥ २६१ ॥
अप्सर'कुङ्कुमारक्तकुचचक्राह्वयुग्मकं ।
हृद्यम्बपङ्कजच्छन्न लसन्नयनोत्पलं ॥ २६२ ॥
नभःसरसि हाराशुस्वच्छवारिणि हारिणि ।
चलन्त्यामरास्तत्र हसायन्त स्म नाकिनाम् ॥ २६३ ॥
इन्द्रनीलमयाहार्यकरश्मिभि' क्वचिन्नाततम् ।
श्यामाभांति बिभरामास चोवासिनिमम्बरम् (?) ॥ २६४ ॥
पद्मरागरुचा व्याप्तं क्वचिद्व्योमतलं बभौ ।
सांध्यरागमिवाश्रावन्तर्जुरंजितदिङ्मुखम् ॥ २६५ ॥
क्वचिन्मरकतच्छायासमाक्रांतमभोऽम्बरः ।
सशैवलमिवाम्भोधर्मलपर्यंतसास्पिपम् ॥ २६६ ॥
तन्व्यः सुरु विराकारा लसद्रत्नमूषणाः ।
तत्रामरस्त्रियो रजुः कल्पवल्ल्य इवांबर ॥ २६७ ॥
तासां स्मराणि वक्त्राणि पद्मबुद्ध्यानुधावताम् ।
रेजे मधुलिहां माला मन्तुर्ग्येव मनोभुवः ॥ २६८ ॥
सुरानकमहाध्वानैः पूजावेलापरां दधन् ।
नभश्छोलोल्लासकल्लोलो बभौ देवागमांबुधि ॥ २६९ ॥
तत्र दिव्यांगनासंपर्कवितस्त्वाद्रिपाहनैः ।
उत्थापवैनमायस्य भेजे विषपन्थियम् ॥ २७० ॥

१ सेना । २ हसाऽन्त्य । ३ हास्यपुष्पाणि । ४ इव' अथ ।

समाभाक्तरु रज पर्यंत मिगगत्पव' ।
ऊंपन्मार्गे क्रिममाना धुन्मम् मामाः स पामुभि २९१ ॥
छत्र धवलं ऋषिमत्कांस्या पार्थ्रीमजयमुचिरां लक्ष्मीम् ।
श्रेभा रुरुधे भ्रमभ्रन्नूनं सर्वा निरूपजगतां पत्युः ॥ २९२ ॥
पयः पर्यपेरिव मीचिमाला मकीणकानां समिति' समन्तात् ।
भिनन्त्रपर्यन्तनिपमिपसः करास्कैरगाभिरमृटिधृता ॥ २९३ ॥
मैनी क्रिमगपुतिरुत्थपंती किर्मिद्रुमासां तविरापतंती ।
इति स्म भर्मा वनुव पवती सा चामराली ध्वरविंदुशुभ्रा ॥२९४॥
सुरदुंदुमया मधुरध्वनयो निनदवि वशा स्म नमोविवरे ।
सम्त्रागमसर्किमिरुन्मविमि' मिसिसिपि परमीसितमपद्रवम' २९५
प्रमया परिता जिनदेहभुवा जगती सकला समवाविमृत्वे' (?) ।
रुरुच स चराचरमर्त्यमना क्रियपाष्टतपीयवि पाक्रि विमा।२९६
दिव्यमहाध्वनिरस्य मुखाज्जात्मेघरवानुकृतिं निरगच्छत् ।
भव्यमनोगतमाहतमाऽज्ञानमपुतदूप यथव तमाऽरिः ॥ २९७ ॥
इत्यष्टाभिः महीहारैरन्विता सूजिनाजिनः ।
विद्युन्माद्री स्थिता देव देवकेभरपिष्ठिना ॥ २९८ ॥
अपि तत्र विपुर्वेति मिथो वैरं परस्परम् ।
जन्मसंतानसंस्कारापयबाधा विरोधिनः ॥ २९९ ॥
कचिदरक्षमपपायसभावस्यद्विरोधिनः ।
नापि ते विक्रियां भेजुस्तसांनिध्यमवाप्य ॥ ३०० ॥
तपमा करिणी दुग्धं दीरूपीय हरिशावकः ।
मातृबुद्धया तथा सिंहीमापनति मृगार्भकाः ॥ ३०१ ॥

१ कलीये । २ सूर्याल्ये । ३ सम्मनामया ।

यत्र दर्दुरका नागफणायां च कृतासनाः ।
आश्रयंतीह छायायै पांथाः सान्द्रद्रुमेष्विव ॥ ३०२ ॥
द्रुमाः सर्वेऽपि सर्वर्तुफलश्री दलशालिनः ।
आनंदादिव नृत्यंति चलच्छाखाकरायताः ॥ ३०३ ॥
व्रीहयः फलसंपन्नाः स्वादुपकाश्च सांप्रतम् ।
विराजंते सर्वभूपृष्ठे सुकृतानामिवांकुराः ॥ ३०४ ॥
सर्वौषध्यो महावीर्याः सर्व्वामयविनाशकाः ।
दीप्यंतेऽतितरामद्य प्रजानां सुखहेतवे ॥ ३०५ ॥
दुर्भिक्षादीतयो नाशं यांति मूलादपि क्षणात् ।
पुण्यसूर्योदयादेव तमो नैशं यथा विभो ॥ ३०६ ॥
इत्याद्यतिशयाः सर्वे संति युगपज्जिनेशिनः ।
तांस्तावद्वक्तुं नर्क्तुं नाहं शक्नोमि सांप्रतं ॥ ३०७ ॥
इति श्रुत्वा वचो भूपो वनपालमुखादिह ।
आनंदामृतसंसिक्तदेहोऽभूद्भक्तिनिर्भरः ॥ ३०८ ॥
अथोत्थाय नृपस्तूर्णमासनात्संमुखं विभोः ।
गत्वा सप्तपदं यावत्त्रिधा चक्रे नमस्क्रियाम् ॥ ३०९ ॥
सानुजन्मासमवोन्तःपुरपौरपुरागमैः ।
भाव्याभिर्भ्यां पुरोधाय ससभ्याऽभूत्प्र भक्ति ॥ ३१० ॥
गुरौर्भक्तिं परां सन्वन्कुर्वन्धर्ममभासनाम् ।
स भूत्वा परयोत्कस्थे मगधर्द्धदनाधिपो ॥ ३११ ॥
अथ सेनांबुधेः क्षोभमातन्वन्नध्वनिःस्वनः ।
आनंदपटहो भेर्व दध्वान ध्वनयन् दिशः ॥ ३१२ ॥

सुरेन्द्रैरावयालोक्य विभीरास्थानमंडलम् ।
सुरशिल्पिभिरारब्धपरार्द्धरचनाञ्चितम् (?) ॥ २७१ ॥
एकयोजनविस्तारमभूदास्थानमीशितुः ।
हरिनीलमहारत्नघटितं विलसत्तलम् ॥ २७२ ॥
सुरेन्द्रनीलनिर्माणं समवृत्तं तदा बभौ ।
त्रिजगच्छ्रीमुखालोकमंगलादर्शविभ्रमम् ॥ २७३ ॥
संस्थानमप्यमस्यास्य संस्थानं को नु वर्णयेत् ।
सुत्रामा धनपालोऽपि निर्माणे यस्य कर्मठः ॥ २७४ ॥
तथाप्यनूद्यते किंचिदस्य शोभासमुच्चयः ।
श्रुतेन येन सम्प्रीतिं भेजे भव्यात्मनां मनः ॥ २७५ ॥
पंचवर्णमयोद्भासिरत्नपांशुभिराचितः ।
तस्य पर्यंतभूभागे धूलीशालः परिष्कृतः ॥ २७६ ॥
चतसृष्वपि दिक्ष्वस्य हेमस्तंभाग्रलंबिताः ।
तोरणानां करस्पर्शिरत्नमाला विरेजिरे ॥ २७७ ॥
ततोऽन्तरान्तरं किंचिद्गत्वा हाटकनिर्मिताः ।
रेजे मध्येषु वीथीनां मानस्तंभाः समुच्छ्रिताः ॥ २७८ ॥
अधिष्ठिता विरेजुस्ते मानस्तंभा मनोहराः ।
ये दूरादीक्षिता मानं स्तंभयंत्याशु दुर्दृशाम् ॥ २७९ ॥
उक्तं च—
" मानस्तंभाः सरांसि प्रविमलजलसत्खातिका पुष्पवाटी ।
प्राकारो नाट्यशाला द्वितयमुपवनं वेदिकान्तर्ध्वजाद्याः ।

१ समवसरणम् । २ स्तम्भाः ।

सालः कल्पद्रुमाणां सुपरिवृतवनं स्तूपहर्म्यावली च ।
प्राकारः स्फाटिकोऽन्तर्नृसुरमुनिसभा पीठिकाग्रे स्वयंभूः" ॥२८०
तत्र त्रिमेखलस्यास्य मूर्ध्नि पीठस्य विस्तृतौ ।
स्फुरन्मणिशिखाजालसरचितामरकार्मुके ॥ २८१ ॥
चलच्चामरसंघातप्रतिबिम्बनिपातने[१] ।
हंसैरिवासरो बुद्ध्या सेव्यमाने सखे पृथौ ॥ २८२ ॥
मार्तण्डमंडलच्छायामत्स्पर्द्धिनि महर्द्धिके ।
स्वर्धुनीफेननीकाशे[२] स्फटिकैर्घटिते क्वचित् ॥ २८३ ॥
शुचौ स्निग्धे मृदुस्पर्शे जिनांघ्रिस्पर्शपावने ।
पर्यंतरचितानेकमंगलद्रव्यसंपदि[३] ॥ २८४ ॥
त्रिमेखलांकिते पीठे सैषा गंधकुटी बभौ ।
यत्र त्रैलोक्यनाथस्य सत्या सर्वार्थदायिनी ॥ २८५ ॥
यथा सर्वार्थसिद्धिर्वा स्थिता त्रिदिवमूर्धनि ।
तथा गंधकुटी शोभा पीठस्याधितले बभौ ॥ २८६ ॥
सुगंधधूपनिःश्वासा सुमनोमालभारिणी ।
नानाभरणदीप्तांगी या वधूरिव दिद्युते ॥ २८७ ॥
तस्या मध्ये हैमं पीठं नानारत्नप्रभाकीर्णम् ।
मेरोः शृंगं न्यक्कुर्वाणं चक्रे शक्रादेशाद्धनदः ॥ २८८ ॥
विष्टरं तदलंचक्रे भगवानंतिमतीर्थकृत् ।
चतुर्भिरंगुलैः स्वेन महिम्ना पृष्टतलम् ॥ २८९ ॥
तमासीनं समिंद्राद्याः परिचर्यामहेज्यया ।
पुष्पवृष्टिं प्रवर्षंतो नभोमार्गे घना इव ॥ २९० ॥

१ स्वर्गंगेव । २ जिनस्पर्शेन । ३ चमर ।

तमालाङ्कुरवरु रज पर्यंत मिजगन्धर्व ।
रुंधन्मार्गं दिवसोनां धुन्वन् मारुता स चापुषि २९१ ॥
छत्रं चचमं रुचिमत्वास्या चांऽऽमिमयदुपिरां मरुर्मीम् ।
यथा स्कन्धे वज्रभृन्मूर्ने सेवां विदधज्जगतां प्रभु ॥ २९२ ॥
पय पयाधरिव वीचिमाला मर्त्याणस्थानां समिति समंतात् ।
जिनेन्द्रपर्यतनिपक्षियस्त्रः फरास्कंधराधिरमूद्भिपूना ॥ २९३ ॥
जैनी किमंगप्रतिरूस्वपंवती किमिंदूमासां वनितापतंवी ।
इति स्म देवो मनुन पवती सा चामराली वरदिद्युशुभ्रा ॥२९४॥
सुरदुंदुभयो मधुरध्वनया निनदंति तदा स्म नभाम्बिर ।
जलदागमशंकिभिरुन्मदिभि शिखिभिः परवीक्षितपद्धतय २९५
प्रभया परिता जिनदेहभवा जगतां सकल्पा समवायिसृतौ (?) ।
स्वर्थं स चराचरमर्त्यगनाः किमपाहृतमीदृग्नि चारित्र विभो।२९६
दिव्यमऽध्वनिरस्य मुखाम्भोजान्मेघरवानुकृति निरगच्छत् ।
भव्यमनोगततमोऽस्वमाऽम्नभगुरुद्य यथध तमोऽरिः ॥ २९७ ॥
इत्यष्टाभिः मर्वोहारैरन्विता भूजिनक्षिन ।
विपुलाद्रौ स्थिता दैव देवेन्द्रैरपि पिष्ठिता ॥ २९८ ॥
अपि तत्र विरुंधति मिथा वैरं परस्परम् ।
जन्मसंतानसंस्काराबद्धकाया विरोधिनः ॥ २९९ ॥
काचिपरप्रसपर्यायस्त्रभावत्वाद्विरापिनः ।
नापि ते विक्रियां भेजुस्तत्सांनिध्यप्रभावतः ॥ ३ ० ॥
तथया कारिणी दुग्धं वाम्पीत हरिबालकः ।
मातृबुद्ध्या तथा सिंहीमापनंति मृगार्भकाः ॥ ३०१ ॥

१ समीपे । २ सूर्येण । ३ मत्तसमता ।

यत्र दर्दुरका नागफणायां च कृतासनाः ।
आश्रयन्तीह छायायै पांथा सान्द्रद्रुममिव ॥ २०२ ॥
द्रुमाः सर्वेऽपि सर्वर्तुफलनम्रा दलशालिनः ।
आनंदादिव नृत्यन्ति चलच्छाखाकरापताः ॥ २०३ ॥
व्रीहयः फलसंपन्नाः स्वादुपाकाश्च सांप्रतम् ।
विद्यन्ते सर्वभूपृष्ठे सुकृतानामिवांकुराः ॥ २०४ ॥
सर्वौषध्यो महावीर्याः सर्वामयविनाशकाः ।
दीप्यन्तेऽतितरामत्र प्रजानां सुखहेतवे ॥ २०५ ॥
दुर्भिक्षान्नीतयो नाशं यान्ति मूलान्यपि क्षणात् ।
पुण्यसूर्योदयादत्र तमो नैशं यथा विभोः ॥ २०६ ॥
इत्याद्यतिशयाः सर्वे संति युगपज्जिनस्विनः ।
यांस्तानुद्धृत्य वक्तुं नाहं क्षमामि सांप्रति ॥ २०७ ॥
इति श्रुत्वा वचो भूपो वनपालमुखादिह ।
आनंदामृतसंसिक्तदेहोऽभूद्भक्तिनिर्भरः ॥ २०८ ॥
अथोत्थाय नृपस्तूर्णमासनात्सम्मुखं विभोः ।
गत्वा सप्तपदं यावत्त्रिधा चक्रे नमस्क्रियाम् ॥ २०९ ॥
सानुजन्मासमस्तोऽन्तःपुरपौरपुरागमैः ।
आप्याभिख्यां पुरोधाय ससज्जोऽभूद्गमं प्रति ॥ २१० ॥
शरीरैर्भक्तिं परां तन्वन्नुत्पन्नपरमभावनाम् ।
स भूत्वा परयोनस्थे भगवद्वन्दनाविधौ ॥ २११ ॥
अथ सनांगुपैः सोममातन्वन्नभिध्वनिःस्वनः ।
आनंदभम्ही मदं दध्वान ध्वनयन् दिशः ॥ २१२ ॥

प्रस्थितोऽथ महाभागो गजारूढः श्रेणिको नृपः ।
महाहस्त्यश्वपादातिरथकल्पा वृताऽभितः ॥ ११३ ॥
तेन प्रचलिता सेना तदानकपृथुध्वनि[1] ।
वेलेव वारिधेः प्रोद्यद्दर्पभुजवीचिकाः ॥ ११४ ॥
तया परिवृतः प्रापत्स जिनास्थानमण्डपम् ।
प्रसर्पत्तमसा दिक्षु जितमार्तण्डमण्डलम् ॥ ११५ ॥
परीत्य पूजयन्मानस्तंभान्साम्यैः तत परम् ।
खातां लतां वनं शालं वनानां च चतुष्टयम् ॥ ११६ ॥
द्वितीयशालमुल्लंघ्य ध्वजान् कल्पद्रुमावलीम् ।
स्तूपान् प्रासादमालाश्च पश्यन्विस्मयमाप सः ॥ ११७ ॥
ततो द्वारिकैर्देवैः संभ्राम्यद्भिः प्रवेशितः ।
श्रीमण्डपस्य वैदग्धीं साऽप्यपश्यत्स्वर्गजित्वरीम् ॥ ११८ ॥
ततः प्रदक्षिणीकुर्वन् धर्मचक्रचतुष्टयम् ।
स्वर्ण्यां वा पूजयामास प्राप्य प्रथमपीठिकाम् ॥ ११९ ॥
ततो द्वितीयपीठस्थान् विमाराष्टौ महाध्वजान् ।
सोऽर्चयामास संप्रीतः पूतैर्गन्धादिवस्तुभिः ॥ १२० ॥
मध्ये गंधकुट्यां त्रिदिपारार्द्धे हरिविष्टरे ।
उदयाचलमूर्द्धस्थमिवार्कं जिनमैक्षत ॥ १२१ ॥
चलच्चामरसंघातवीज्यमानं महाप्रभुम् ।
प्रपतन्निर्झरं मेरुमिव चामीकरच्छविम् ॥ १२२ ॥
इत्याद्यष्टप्रातिहार्यैर्विभ्राजितं जिनेश्वरम् ।
स त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणनाम जगद्गुरुम् ॥ १२३ ॥

१ तदानक पृथुः इति पाठान्तरम् । २ धूर्ली । ३ शोभां ।

इमाय पापयुक्तानां व्यापा प्राप्येष्टपा मखम् ।
पुनान्ते प्रणिपत्यैवं महानिरितजान्वसौ ॥ ३२४ ॥
नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं महात्मन ।
सप्रसूनमालाभिरित्यानर्च गिरांपतिम् ॥ ३२५ ॥
त्वं जिनः कामजिज्ञाता त्वमर्हन्नारिहारक ।
धर्मध्वजी धर्मपति कर्मारातिनिशुम्भन ॥ ३२६ ॥
तव हर्यासनं भाति विश्वभर्तुर्मनस्करम् ।
कृतपत्नैरिवाद्रौद्रं न्यगृह्यं मृगाधिपैः ॥ ३२७ ॥
तवायं प्रसरच्छायस्तुंगाऽशोकमहाद्रिपः ।
स्वच्छायासमिवान्पाति स्वत शिष्यानिवाभितान् ॥ ३२८ ॥
तवामी चामरव्राता यक्षैरुत्क्षिप्य वीजिताः ।
निर्धुनन्तीव निर्व्याजमागो वै सागसां नृणाम् ॥ ३२९ ॥
त्वामामनन्ति परितः सुमनाञ्जलया दिव' ।
तुष्टया स्वर्गलक्ष्म्येव मुक्ता हर्षाश्रुबिन्दवः ॥ ३३० ॥
देवदुंदुभयश्चामी निनदंति नभस्स्थिनाः ।
घोषयंति जयोत्साहं निर्मितासिलकर्मणः ॥ ३३१ ॥
ज्ञानदर्शनवीर्याणि विरतिः शुद्धदर्शनम् ।
दानादिलब्धयश्चेति क्षायिकास्तव शुद्धयः ॥ ३३२ ॥
छत्रत्रितयमाभाति शुभ्रं जिन तावकम् ।
मुक्तालम्बनविभ्राजि लक्ष्म्या' क्रीडास्थलायितम् ॥ ३३३ ॥
तव देहप्रभोत्सर्पैरिदमापूर्यते सद ।
पुण्याभिषेकसंभारं संवयज्ञिरिवाभित' ॥ ३३४ ॥
तव वाक्प्रसरो दिव्य' पुनाति जगतां मन ।
मार्दोपतमसां पुन्सांस्तमज्ञानान्धकारपमः ॥ ३३५ ॥

१ पूजयन्तो । २ सेवम् ।

४

ज्ञानमप्रतिघं विश्वं यथावस्तीच्चनाक्रमात् ।
यथा ज्ञानं तथैवामूत्क्षायिकं तव दर्शनम् ॥ २३६ ॥
वीर्यं भवानन्तोऽपीश यथानास्तां श्रमक्लमौ ।
अनन्तवीर्यताप्रस्तेरस्त्वन्माहात्म्यं परिस्फुटम् ॥ २३७ ॥
रागादिविप्रकाशत्म्यपापादुदिता तव ।
विरतिः सुसमास्यास्ये व्यनक्त्यात्यन्तिकं विभो ॥ २३८ ॥
मलाविलकलुषं तोयं यथेह स्वच्छतां व्रजेत् ।
मिथ्यात्वकर्दमापायाद् दृक्शुद्धिस्ते यथार्थताम् ॥ २३९ ॥
सत्याऽपि सम्पदः क्षेपास्त्वयि नार्थक्रियाकृतः ।
कृतकृत्ये बहिर्दिव्यसंपदो हि निरर्थकम् ॥ २४० ॥
एवं भाषा स्तुत्वा नाथ भवतोऽनन्तया मताः ।
तानहं श्रियताऽप्येश न स्तोतुमसमल्पधीः ॥ २४१ ॥
भगवंतमभिष्टुत्य विष्टपाधिगवैभवम् ।
महतः श्रीमंडपारंभे स्वकोष्ठेऽवीविशन्नृपः ॥ २४२ ॥
जम्बूद्वीपेऽत्र वर्षे समयमभिगते भारते तत्र देशे ।
नाम्ना विस्मापकीर्तौमिह भुवि मगधेऽपायसंपन्निधाने ।
तथापि श्रीगिरा राजगृह इति महाराजधानी पुरेऽस्मिन् ।
भूपः श्रीश्रेणिकाऽऽख्यः प्रभुसगिरिगिरौ वर्धमानस्य भूमौ ॥२४३॥

इति श्रीजम्बूस्वामिचरिते भगवत्पूर्वपश्चिमतीर्थंकरोपदेशानु-
सरितस्याद्वादनवपद्यगद्यविद्याविशारदपण्डितराजमल्ल-
साधुपासाह्वयसाधुटोडरसमभ्यर्थित श्रेणिक-
महाराजसमवसरणगमनवर्णनो
नाम द्वितीयोऽधिकारः ।

अथ तृतीयोऽध्याय

भीयास्त्स दोदरः साधुः साधुपासांगन' कृती ।
दानशुद्धिस्तु यस्योर्वे' श्रेयांसनापमीयत ॥ इत्याशीर्वाद ॥
समव भवदुःखानां हर्तारं तीर्थनायकम् ।
अभिनंदन च वंदामो वंदित त्रिदशेश्वरैः ॥ १ ॥
ततो निभृतमासीन भवच्छकरकुड्मले ।
सदःस्वपाकर भर्तुं भवोपमांमसापुके ॥ २ ॥
भवस्या श्रेणिकभूपेन विनयानतमौलिना ।
विज्ञापनमकारीत्थ तस्मै जिनामुना गुराः ॥ ३ ॥
भगवन् ज्ञातुमिच्छामि कीदृशस्तत्त्वविस्तरः ।
मार्गो मार्गफलं चापि कीदृक् तस्य निदर्शय ॥ ४ ॥
वरमभावसितावित्थं भगवानतीर्थकृत् ।
तत्त्वं प्रपंचयामास गंभीरस्वरया गिरा ॥ ५ ॥
भवत्तुरस्य वचभाम्भे विकारितिर्नैव काप्यभूत् ।
दर्पणे किमु भावानां विक्रियाऽस्ति प्रकाशत ॥ ६ ॥
ताल्वाष्ठमपरिस्पंदि सर्वांगेषु समुद्भवा' ।
अस्पृष्टकरणा वर्णा मुखादस्य विनिर्ययुः ॥ ७ ॥
स्फुरद्गिरिगुहाशृंगसमतिध्वनितसन्निभं ।
अस्पष्टार्थका निरगात् ध्वनिं स्वार्थमुखात् मुखात् ॥ ८ ॥

१ पस्पर्शसहितं न वर्णसहितं न स्पन्दितौष्ठद्वयं
नो वाञ्छाकलितं न दोषमलिनं न श्वासरुद्धक्रमम् ।
शान्तामर्षविषैः समं पशुगणैराकर्णितं कर्णिभि
स्तन्नः सर्वविदः प्रणष्टविपदः पायादपूर्वं वचः ॥ इति संग्रहश्लोकः ।

विवक्षामन्तरेणापि विवित्ताऽऽसीत् सरस्वती ।
महीयसामचिन्त्या हि योगजाः शक्तिसंपदः ॥ ९ ॥
शृणु श्रेणिक तत्त्वार्थान् वक्ष्यमाणाननुक्रमात् ।
जीवादीन् मोक्षपर्यन्तान् गौतमस्तमभीषदा ॥ १० ॥
जीवाजीवास्रवबन्धो किल संवरश्च निर्जरणम् ।
मोक्षस्तत्त्वं सम्यग्दर्शनसद्बोधविषयमखिलं स्यात् ॥ ११ ॥
आस्रवबन्धवपुरिदं पुण्यं पापं स्वभावतो न पृथक् ।
तस्मान्नो दिष्टं खलु तत्त्वतया सूरिणा सम्यक् ॥ १२ ॥
षोढा द्रव्यापदेशः स्याद् द्रव्यलक्षणयोगतः ।
द्रव्यत्वं नाम किंचित्स्याद्गुणपर्ययवत्त्वतः ॥ १३ ॥
तल्लक्षणस्वभावत्वाज्जीवाः स्याद् द्रव्यसंज्ञकाः ।
पुद्गलश्चापि तथागाद् द्रव्यमित्यभिलप्यते ॥ १४ ॥
धर्माधर्माविहाकाशं कालश्चापि तथाविधः ।
चत्वारोऽपि च तत्त्वाते द्रव्यसत्तात्मकाः पृथक् ॥ १५ ॥
अस्तिकायस्वभावत्वात्तेऽपि पंचास्तिकायिकाः ।
प्रदेशप्रचयाभावात्कालस्य-नास्ति कायता ॥ १६ ॥
जीवादीनां पदार्थानां याथात्म्यं तत्त्वमिष्यते ।
सम्यग्ज्ञानं हि तज्ज्ञानं श्रद्धानं दर्शनं मतम् ॥ १७ ॥
कर्मादाननिदानानां भावानां च निरोधतः ।
चारित्रं तत्त्रयं विद्धि शुद्धसर्गं कर्मक्षालनात् ॥ १८ ॥

---

१ महापुराणे ।

२ जीवादिश्रद्धानं सम्यक्त्वं रूपं आत्मनः तत् तु ।
दुरभिनिवेशविमुक्तं ज्ञानं सम्यक् खलु भवति सति यस्मिन् । द्रव्यसंग्रहे ४१ ।

सम्यग्दर्शनमादौ स्याद्बोध्यं ज्ञप्तिरतः परम् ।
यस्माच्छ्रद्धानशून्यस्य ज्ञानस्याज्ञानता मता ॥ १९ ॥
उक्तं च—
" जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं रूवमप्पणो तं तु ।
दुरभिणिवेसविमुक्कं णाणं सम्मं खु होदि सदि जम्हि " ॥२०॥
ताभ्यां पूर्वं हि (पश्चाद्धि) चारित्रं मार्गं चार्थक्रियाकरम् ।
क्रियमाणं तु तच्छून्यं स्यादचारित्रमवपतः ॥ २१ ॥
तत्त्वज्ञानार्थमेतेषां वाच्यं लक्ष्म यथागमम् ।
अस्तित्वादिव सामान्याज्ज्ञानादित्वं विशेषतः ॥ २२ ॥
तद्यथा तत्र जीवोऽस्ति स चानाद्यवसानकः ।
नित्यः स्वतश्च सिद्धत्वात्तच्च कार्याद्यभावतः ॥ २३ ॥
स चासंख्यातदेशी स्यादनन्तगुणवानपि ।
स्यातां तस्य व्ययोत्पादौ कथंचिदिविपर्ययैः ॥ २४ ॥
चेतनालक्षणो जीवो विज्ञेयाल्लक्षणादिह ।
ज्ञाता द्रष्टा च कर्ता च भोक्ता देहप्रमाणकः ॥ २५ ॥
गुणवान् कर्मनिर्मुक्तावूर्ध्वव्रज्यास्वभावकः[1] ।
परिणतोपसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ॥ २६ ॥
जीवः प्राणी च जन्तुश्च क्षेत्रज्ञः पुरुषस्तथा ।
पुमानात्मान्तरात्मा च ज्ञो ज्ञानी तस्य पर्ययाः ॥ २७ ॥

---

१ सम्यक्त्वे सति ज्ञानं सम्यग्भवतीति चतुर्थे तस्य निरूपणं क्रियते । तथाहि । [illegible] विभ्रमः [illegible] यद्यपि [illegible] तथापि तेषां हि ज्ञानं सम्यक्त्वं विना मिथ्याज्ञानमेव । [illegible] महाराष्ट्री ४१ ।

यतो जीवत्यजीवच्च जीविष्यति च जन्मसु ।
ततो जीवोऽयमाम्नातः सिद्धः स्याद्भूतपूर्वतः ॥ २८ ॥
भव्याभव्यौ तथा मुक्त इति जीवस्त्रिधोदितः ।
भविष्यत्सिद्धिको भव्यः सुवर्णोपलसन्निभः ॥ २९ ॥
अभव्यस्तु विपक्षः स्यादन्धपाषाणसन्निभः ।
मुक्तिकारणसामग्री न तस्यास्ति कदाचन ॥ ३० ॥
कर्मबन्धननिर्मुक्तस्त्रिलोकशिखरालयः ।
सिद्धो निरञ्जनः प्रोक्तः प्राप्तानन्तसुखास्पदः ॥ ३१ ॥
इति जीवपदार्थस्ते संक्षेपेण निरूपितः ।
अजीवतत्त्वमप्येवमवधानतया शृणु ॥ ३२ ॥
अजीवलक्षणं तत्त्वं पञ्चधैव प्रपञ्च्यते ।
धर्माधर्मौ च साकाशः कालः पुद्गल इत्यपि ॥ ३३ ॥
जीवपुद्गलयोर्यः स्याद्गत्युपग्रहकारणम् ।
धर्मद्रव्यं तदुद्दिष्टमधर्मः स्थित्युपग्रहः ॥ ३४ ॥
यथा मत्स्यस्य गमनं विना नैवाम्भसा भवेत् ।
न चाम्भः प्रेरयत्येनं तथा धर्मोऽस्त्यनुग्रहः ॥ ३५ ॥
तरुच्छाया यथा मर्त्यं स्थापयत्यथिनं स्वतः ।
न त्वेषा प्रेरयत्येनमथ च स्थितिकारणम् ॥ ३६ ॥

१ स्यादेतत्सेत्स्यतोऽपि यो न सेत्स्यत्यनन्तकालेनापि स भव्य एव । तस्य सिद्धिर्नास्ति सम्यक्त्वं उत्तरकाले अवश्यम्भावि भव्यत् स्यादिति ? तन्न किं कारणं ? सम्यक्त्वसद्भावात् । यथा योऽप्यतीतेऽपि कालेन कनकपाषाणो न कनको भविष्यति न तस्यांधपाषाणत्वं कनकपाषाणशक्तियोगात् । यथा वान्ध्यविधवायां योऽप्यतीतेऽपि काले न अपत्यमिच्छति न तस्यापत्यशक्तिः विद्यते । तथा सम्यक्त्वादिलाभशक्तियोग्यस्यापि भव्यस्यापि न मोक्षलाभः । त० राजवार्तिक १-७-९ । पृ. ७७ ।

तथैवाधर्मकायोऽपि जीवपुद्गलयोर्द्वयोः ।
निर्वर्तयत्युदासीनो न स्वयं प्रेरकः स्थितेः ॥ ३७ ॥
जीवादीनां पदार्थानामवगाहनलक्षणम् ।
यत्तदाकाशमस्पर्शममूर्तं व्यापि निष्क्रियम् ॥ ३८ ॥
वर्तनालक्षणः कालो वर्तना च पराश्रया ।
यथा स्वगुणपर्यायैः परिणन्तृत्वयोजना ॥ ३९ ॥
यथा कुलालचक्रस्य भ्रमणेऽधः शिला स्वयम् ।
धत्ते निमित्ततामेवं कालोऽपि कलितो बुधैः ॥ ४० ॥
व्यवहारात्मकात्कालात् मुख्यकालविनिर्णयः ।
मुख्ये सत्येव गौणस्य वाहीकादेः प्रतीतितः ॥ ४१ ॥
स कालो लोकमात्रैः स्वैरणुभिर्निचितः स्थितः ।
ज्ञेयोऽन्योन्यमसङ्कीर्णै रत्नानामिव राशिभिः ॥ ४२ ॥
प्रदेशप्रचयायोगादकायोऽयं प्रकीर्तितः ।
शेषाः पञ्चास्तिकायाः स्युः प्रदेशोपचितात्मकाः ॥ ४३ ॥
धर्माधर्मवियत्कालपदार्था मूर्तिवर्जिताः[२] ।
मूर्तिमत्पुद्गलद्रव्यं तस्य भेदानितः शृणु ॥ ४४ ॥

---

१ धर्माधर्मौ पुद्गल[illegible] द्रव्यमात्रमुपकारकमेव न पुनर्बल[illegible] । यथा च [illegible] ॥ [illegible] पृ. १८ ।

२ [illegible] ।

वर्णगंधरसस्पर्शयोगिनः पुद्गला मताः ।
पूरणाद्गलनाच्चैव संप्राप्तान्वर्थनामकाः ॥ ४५ ॥
स्कंधाणुभेदतो द्वेधा पुद्गलस्य व्यवस्थितिः ।
स्निग्धरूक्षात्मकाणूनां संघातः स्कंध उच्यते ॥ ४६ ॥
द्व्यणुकादिमहास्कंधपर्यंत तस्य विस्तरः ।
छायातपतमोज्योत्स्नापयोदादिमयत्वभाक् ॥ ४७ ॥
सूक्ष्मसूक्ष्मास्तथा सूक्ष्माः सूक्ष्मस्थूलात्मकाः परे ।
स्थूलसूक्ष्मकाः स्थूलाः स्थूलस्थूलाश्च पुद्गलाः ॥ ४८ ॥
सूक्ष्मसूक्ष्मोऽणुरेकः स्याददृश्यो ऽस्पृश्य एव च ।
सूक्ष्मास्ते कार्मणस्कंधाः प्रदेशानंत्ययोगतः ॥ ४९ ॥
शब्दः स्पर्शो रसो गंधः सूक्ष्मस्थूला निगद्यते ।
अचाक्षुषत्वे सत्येषामिन्द्रियग्राह्यवेक्षणात् ॥ ५० ॥
स्थूलसूक्ष्माः पुनर्ज्ञेयाश्छायाज्योत्स्नातपादयः ।
चाक्षुषत्वेऽपि संहार्यरूपत्वादविघातकाः ॥ ५१ ॥
द्रवद्रव्यं जलादि स्यात्स्थूलभेदनिदर्शनम् ।
स्थूलस्थूलः पृथिव्यादिर्भेद्यः स्कंधः प्रकीर्तितः ॥ ५२ ॥
आस्रवोऽपि द्विधा प्रोक्तो भावद्रव्यविभेदतः ।
आद्यो जीवात्मको भावः स चाशुद्धः परस्परतः ॥ ५३ ॥

१ पृथ्वीस्कंधपुद्गलस्य चाक्षुषत्वं । [illegible] जन्माज [illegible] तत्प्रकार भावरूपमिश्रणं । [illegible] भारं । [illegible] मेघुमाधवयं जन्माज [illegible] तत्प्रकार मिश्रणं । [illegible] धारस्पूलं । [illegible] मेघुमध्याज मेघुपवनं तद्धारस्थूलमिश्रणं । नः चतुर्थमित्यत्रिनिश्चिपमध्ये चाक्षुषं तत्सम्बन्धे । [illegible] स्थूलं । [illegible] [illegible] तत्स्थूलमिश्रणं । पजमाक्षु सूक्ष्मस्थूलं । [illegible] मिश्रणं तत्स्थूलसूक्ष्ममिश्रणं ।

मिथ्यात्वं च कषायाश्च योगोऽविरतिरेव च ।
भावाश्रवस्य विज्ञेया भेदाश्चामी यथागमात् ॥ ५४ ॥
सत्सु भावाश्रवेष्वाशु योग्याः कार्माणवर्गणा ।
गच्छति कर्मपर्यायैः स च द्रव्याश्रवः स्मृतः ॥ ५५ ॥
आश्रवपूर्वको बन्धो द्विविधः सोऽपि पूर्ववत् ।
आश्रितानां चतो चाथ प्रकृत्यादिप्रभेदतः ॥ ५६ ॥
आश्रवस्य निरोधो य स संवर उदाहृत[१] ।
तत्राद्यो भावशुद्धि[१] स्यात्परः कार्माणरोधतः ॥ ५७ ॥
निर्जरा च द्विधा प्रोक्ता सविपाकाविपाकतः ।
अथ संवरपूर्वा या निर्जरा सोऽत्यते बुधैः ॥ ५८ ॥
भावद्रव्यात्मिका द्वेधा निर्जरा तत्त्ववादिनाम् ।
तत्राद्या शुद्धभावः स्यात्कर्मनिर्जरणं परा ॥ ५९ ॥
पुंसोऽवस्थान्तरं मोक्ष[१] कृत्स्नकर्मक्षये सति ।
ज्ञानानंदादिधर्माणामाविर्भावात्मकः स्वतः ॥ ६० ॥
शुभो भावो हि पुण्यस्य पापस्याशुभ एव च ।
पूर्वो व्रतादिरूपात्मा तद्विपक्षः परः स्मृतः ॥ ६१ ॥
वदत्स्येवं जिनेशाने तत्त्वानि श्रेणिकं मति ।
चचीर्णमंबरात्किंचित्सासाचीजीमयं तदा ॥ ६२ ॥
विम्बं रवेर्द्विधा भूत्वा किमागच्छत्तत्त भूतले ।
द्रष्टुं लक्ष्मीं विरागस्य जिनस्यानतवैभवम् ॥ ६३ ॥

---

१ [illegible]

एतत्कस्मादभरात्मीशो धीमान् विस्मयतां गतः ।
पप्रच्छ स्वामिनं भूयः किमिदं दृश्यतेऽधुना ॥ ६४ ॥
पुनः मत्वाह धर्मेशो राजानं श्रेणिकं प्रति ।
विद्युन्मालीति विख्यातो देवोऽयं स्यान्महर्द्धिकः ॥ ६५ ॥
चतसृभिर्नारीभिः स समं समानुरागतः ।
भगवद्वन्दना सोऽत्र तीर्थे समागतस्तदा ॥ ६६ ॥
किंचित्तः सप्तमे चाह्नि दिवश्च्युत्वा भवान्तकः ।
भुवमेष्यति भव्यात्मा चरमांगी भविष्यति ॥ ६७ ॥
श्रुत्वेति तद्वचो भूपो भूयो भक्तिपरायणः ।
प्रीतो विज्ञापयामास भगवन्तं जगद्गुरुम् ॥ ६८ ॥
कृपासागर भो स्वामिन् यत्स्वयोक्ते सुयुक्तितः ।
षण्मासमायुषः शेषे यदा स्यात्त्रिदिवौकसाम् ॥ ६९ ॥
तदा धर्मांशमाला स्यान्म्लाना कण्ठावलम्बिनी ।
देहकान्तिर्भवेच्छाया मन्दायन्ते सुरद्रुमाः ॥ ७० ॥
तेजोऽस्याद्य दिवौ नवममस्य कान्तिमयं वपुः ।
द्युपतेऽस्य सतोऽपीह तत्कथं विस्मकारणम् ॥ ७१ ॥
इत्यतः संशयध्वान्तं निराकुर्वन् निर्लोऽस्तुमाम् ।
उवाच विष्टरोविष्टो गंभीरतरया गिरा ॥ ७२ ॥
राजन्नस्य कथापूर्वं सर्वं विस्मयास्पदं शृणु ॥
संवेगवर्द्धनं हेतुर्निर्वेदजननक्षमम् ॥ ७३ ॥
तद्यथा मगधे देशे रम्येऽथैव भासिते ।
धनधान्यहिरण्यादिपूर्णे मागध वर्णिते ॥ ७४ ॥

१ चरमशरीरी तद्भवमोक्षगामीति । २ देवानां । ३ भोगभूमिः सुभिक्षा नाम । ४ सिंहासने उपविष्टः । ५ आश्चर्यकारकं ।

तत्रैकदेशेऽस्त्यस्यास्तु वर्द्धमानाभिधं पुरम् ।
वनोपवनराजीभिः राजितं परिखादिभिः ॥ ७५ ॥
चतुर्गोपुरसंयुक्तं विशालं शालवेष्टितम् ।
कंदरीभिः समाकीर्णं विन्ध्यभूपांबरादिभिः ॥ ७६ ॥
तत्र विप्रा वसन्त्येव वेदमार्गानुरागिणः ।
याज्ञिकाः श्रेयसे हिंसां कुर्वन्तीहाधमाधमाः ॥ ७७ ॥
हन्यंते पशवस्तत्र गोगजाजानरादयः ।
मिथ्यांधकारसंछन्नैरेभिर्दुष्पथगामिभिः ॥ ७८ ॥
अथ तत्र वसेत्कश्चिद्द्विजो वेदविदांवरः ।
स्वधर्मकर्मनिष्णातो नाम्नायो वसुरीरित ॥ ७९ ॥
तस्य भार्या सती नाम्ना सोमश्रमा पतिव्रता ।
सीतेवैकपति[1] साध्वी भर्तृच्छन्दानुगामिनी ॥ ८० ॥
तयोः पुत्रावभूतां द्वौ पुण्यवर्णाविशेषवतौ ।
नाम्नाद्यो माधवदेवश्च द्वितीयो मधुदेवकः ॥ ८१ ॥
क्रमादधीतिनौ शास्त्रवेदव्याकरणादिषु ।
निदानादिचिकित्सासु वैद्ये तर्के च छन्दसि ॥ ८२ ॥
ज्योतिःसंगीतगानेषु काव्यालंकरणेषु च ।
किमत्र बहुनोक्तेन विद्याब्धे[2] पारगाविव ॥ ८३ ॥
माधवकौ सुवादेषु ज्ञानविज्ञानकोविदौ ।
अपि चास्यंतस्नेहार्द्रौ मिथो पुण्यसुखामिव ॥ ८४ ॥
इत्थं पुरं सुखर्द्धन्तौ यावद्द्वौ निरुपद्रवम् ।
ज्येष्ठो द्वादशवर्षीया लघुर्द्वादशवर्षकः ॥ ८५ ॥

१ चन्द्रमुखी इव । २ शास्त्रोदधिपारगौ इत्यर्थः ।

भवांतरे पुरा दुष्टकर्मोपार्जितपाकतः ।
जातस्तावत्स्वयं कुष्ठी महाव्याधिप्रपीडितः ॥ ८६ ॥
कुष्ठव्याप्तशरीरः स गलत्कर्णास्यनासिकः ।
शीर्णोपांगश्च सर्वांगं यातनाव्याकुलीकृतः ॥ ८७ ॥
अज्ञानिनार्जितं कर्म तद्विपाको हि दुस्तरः ।
स्वादु संभोक्ष्यते पथ्यं तत्पाकं दुःखदानिव ॥ ८८ ॥
मत्वेति धीमता त्याज्या विषया विषसंनिभाः ।
धर्मामृतं च पानीयं निर्विकारपदप्रदम् ॥ ८९ ॥
अत्यंतदुःखितो विप्रो जीवनाशापरिच्युतः ।
प्रविष्टो व्यसिते वह्नौ चितानाम्नि पतंगवत् ॥ ९ ॥
तद्वियोगात्तु शोकार्ता सोमशर्मापि तत्प्रिया ।
वेगात्तत्र चितायां वै तेन सार्धमपीविशत् ॥ ९१ ॥
मृतयोर्मातृपित्रोश्च जातौ तौ दुःखमानसौ ।
शोकसंतापसंतप्तौ संजातकरुणारवौ ॥ ९२ ॥
ततश्च बंधुभिरात्मीयैः सार्द्रैव प्रतिबोधितौ ।
तदा शोकं विमुच्याशु कृतवन्तौ पितुः क्रियाम् ॥ ९३ ॥
संतर्पणं यथाम्नायं सर्वं कृत्वा विमत्सरौ ।
पूर्ववत्स्वककार्येषु सोद्यतौ प्रयतस्तदा ॥ ९४ ॥
इत्थं दिनगणैः कैश्चिद्गतेऽथ मुनिपुंगवः ।
आगतस्तत्र सौधर्मो नाम्ना धर्मवपुः क्षमी ॥ ९५ ॥
सर्वसंगविमुक्तात्मा बाह्याभ्यंतरभेदतः ।
यथाजातस्वरूपोऽपि सज्जो गुप्तश्च गुप्तिभिः ॥ ९६ ॥

१ पूर्वकर्मोदयेन । २ सोमशर्मा । ३ पतन् पतन् प्रज्वलति इति पर्यन्त ज्वलनः ।
४ धर्मोऽपि ।

निःशंको जिनसूत्रार्थे सशंको भवपरिच्युतौ ।
दयार्द्रः सर्वजीवेषु निर्दयः कर्मघातने ॥ ९७ ॥
स्याद्वादी क्रमवध्वान्तो तेजस्वी भानुमानिव ।
सौम्यः शशीव सर्वांगि धीरो मेरुरिवोन्नतः ॥ ९८ ॥
भवदावाग्नितप्तानां स्याज्जैनो जलदोपमः ।
धर्मोपदेशनीरेण पापिता भव्यचातकाः ॥ ९९ ॥
सर्वसंघाष्टकोपेतोऽप्रतिमो विजितेन्द्रियः ।
ज्ञानविज्ञानसंपन्नो गणी गुणनिधिः क्षमी ॥ १०० ॥
समः शत्रौ च मित्रे च जीविते मरणे सम ।
समो लाभे सुलाभे च समो मानापमानयोः ॥ १०१ ॥
रत्नत्रयधरो धीरो तपसालंकृतविग्रहः ।
अभवं सावधानश्च संयममतिपालने ॥ १०२ ॥
उपेक्षावानपि प्रायः करुणारसपूरितः ।
मुनिरुद्दयामास जैनं धर्मं दयामयम् ॥ १०३ ॥
भो भो भव्यजना यूयं शृणुध्वं धर्ममुत्तमम् ।
स्वर्गापवर्गयोर्मार्गं जैनेऽक्यसरणं शुभम् ॥ १०४ ॥
संसारेऽत्र सुखं न स्यादासर्वार्थदिवौकसाम् ।
कर्माधीनतया दृष्टं तदुदयवशवर्तिनाम् । ॥ १०५ ॥
तथापि मोहमाहात्म्यात्सत्यस्तमितलोचन ।
संसारी मनुते सौख्यं संसक्तो विषयष्वपी ॥ १०६ ॥

१ विनाशने । २ सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि इति रत्नत्रयं । ३ यत्र ।

अनित्येषु शरीरेषु पुत्रपौत्रादिकेषु च ।
सप्तसप्तकसप्तेषु नित्यत्वं मनुते कुदृक् ॥ १०७ ॥
दुःखबीजेषु भोगेषु रमते स्वसुखाशया ।
तद्वियोगे च दुःखार्त[1] सीदत्येव पशुर्यथा ॥ १०८ ॥
क्षणं कामी क्षणं क्रोधी क्षणं तृष्णापरायणः ।
क्षणं भोगी क्षणं रोगी भूताविष्ट इवाचरत् ॥ १०९ ॥
रागद्वेषमयीभूय भूयस्तत्र जडात्मकः ।
दुर्मोच्यं कर्म बध्नाति येन चतुर्गतिं भ्रमत् ॥ ११० ॥
कदाचिन्नारको भूत्वा तत्र दुष्कर्मपाकतः ।
असह्यैर्यातनादुःखैस्ताड्यते सागरावधिः ॥ १११ ॥
क्वापि तिर्यग्गतिं प्राप्य जन्मनीचोऽकुलेऽथवा ।
दुःखानां च सहस्रैश्च पीडितोऽयं भ्रमत्यहो ॥ ११२ ॥
ततो नाभूत्स्थिरः क्वापि भव्यगतिचतुष्टयम् ।
विना सम्यक्त्वोपपत्तैर्जैनधर्मवशः ॥ ११३ ॥
अतः सुखार्थिनानेन प्राणिना धर्मसंग्रहः ।
कर्तव्योऽवश्यमेवायममलं जिनभाषितः ॥ ११४ ॥
इमां निरुपमां वार्तां प्रशमोद्गुणगर्भां मुनेः ।
श्रुत्वास्य भावदेवस्य कम्पितं हृदयं तदा ॥ ११५ ॥
ततो निर्विण्णचित्तेन तेन संसारभीरुणा ।
विज्ञप्तो गुरुरसौ मुनिः सौधर्मसंज्ञकः ॥ ११६ ॥
स्वामिन् त्रायस्व मामद्य निमज्जंतं भवाम्बुधौ ।
यथाकर्षयितास्मीयं स्थैर्यं सुखमव्ययम् ॥ ११७ ॥

1 भिन्नपाठः ।

ततो नाथ कृपां कृत्वा दीक्षां मे देहि निर्मलाम् ।
सर्वसंगपरित्यागलक्षणां भवनाशिनीम् ॥ ११८ ॥
श्रुत्वैतद्भावदेवस्य वाण्यामागर्भितं वच ।
जगाद वाचं सौधर्मो मुनिस्तत्क्षीणनक्षमाम् ॥ ११९ ॥
निर्विण्णोऽसि यदा वत्स मत्वा भोगांश्च रोगवत् ।
तदा दीक्षां गृहाणाशु रागिभिर्दुर्धरामिमाम् ॥ १२० ॥
गुरूपदेशतो नूनं धैर्यमालम्ब्य शुद्धधीः ।
निःशल्यो भावदेवोऽसौ प्रवव्राज द्विजोत्तमः ॥ १२१ ॥
ततःप्रभृति योगीन्द्रः साक्षाद्वाचंयमी यथा ।
स्वसंयमाविरोधेन विजहार महीतले ॥ १२२ ॥
गुणैर्गुरुणा गुरुणा सार्द्धं गच्छन्नकल्मषः ।
घोरमुग्रं तप कुर्वन् स समं सुखदुःखयोः ॥ १२३ ॥
स्वाध्यायध्यानमैकाग्र्यं ध्यायन्निह निरंतरम् ।
सम्यग्ज्ञानमयं तत्त्वमभ्यसन् विनयानतः ॥ १२४ ॥
धन्योऽस्म्यहं कृतार्थोऽस्मि यन्मया मार्गमुत्तमम् ।
जैनं धर्ममिति प्राज्ञो मन्यमानः कृतार्थताम् ॥ १२५ ॥
अथान्यदा स सौधर्मः सूरिः संघसमन्वितः ।
विहरन्नागतो भूयो वर्द्धमानाभिधं पुरं ॥ १२६ ॥
भावदेवो मुनिस्तत्र स सस्मार विशुद्धधीः ।
वर्तते मेऽनुजो भ्राता पुरेऽस्मिन्निति चिंतयन् ॥ १२७ ॥
भवदेव इति ख्यातो नाम्ना स्याद्विषयोषधीः ।
स्वास्मीहितमजानानो दुःश्रुतिप्रस्तचेतसः ॥ १२८ ॥

अनित्येषु शरीरेषु पुत्रपौत्रादिकेषु च ।
सपत्सपत्कलत्रेषु नित्यत्वं मनुते कुधीः ॥ १०७ ॥
दुःखबीजेषु भोगेषु रमते स्वसुखाशया ।
तद्वियोगे च दुःखार्तः सीदत्येव पशुर्यथा ॥ १०८ ॥
क्षणं कामी क्षणं लाभी क्षणं तृष्णापरायण ।
क्षणं भोगी क्षणं रागी भूताविष्ट इवाचरत् ॥ १०९ ॥
रागद्वेषमयीभूय भूयस्तम जडात्मकः ।
दुर्मोच्यं कर्म बध्नाति येन चतुर्गतिं भ्रमेत् ॥ ११० ॥
कदाचिन्नारको भूत्वा तत्र दुष्कर्मपाकतः ।
असह्यैर्यातनादुःखैस्ताड्यते सागरावधिः ॥ १११ ॥
क्वापि तिर्यग्गतिं प्राप्य जन्मनीचोऽङ्गसंश्रया ।
दुःखानां च सहस्रैश्च पीडितोऽयं भ्रमत्यहो ॥ ११२ ॥
ततो नाभूत्स्थिरः क्वापि मर्त्यगतिचतुष्टयम् ।
विना सम्यक्त्वमोपलब्धैर्भ्रमुरनंतशः ॥ ११३ ॥
अतः सुखार्थिनानेन प्राणिना धर्मसंग्रहः ।
कर्तव्योऽवश्यमेवायमश्रान्तं जिनभाषितः ॥ ११४ ॥
इमां निरुपमां वाचं श्रवणानुगमां मुनेः ।
श्रुत्वास्य भावदेवस्य कंपितं हृदयं तदा ॥ ११५ ॥
ततो निर्विण्णचित्तेन तेन संसारभीरुणा ।
विज्ञप्तो धर्मरासी मुनिः सौपसर्गकः ॥ ११६ ॥
स्वामिन् त्रायस्व मामद्य निमज्जंतं भवाम्बुधौ ।
यथाकर्णधरात्पोतं लभेयं सुखमव्ययम् ॥ ११७ ॥

१ मिथ्यात्वैः ।

उच्चैःस्थाने निवेश्याशु नमस्कृत्य पुनः पुनः ।
शरण्ये शरणे तत्रोपविष्टो गुरुसंनिधौ ॥ १४० ॥
योगिना भ्रातृमन्येन धर्मश्रद्धाविदानतः ।
समाश्रितः पुनः प्राह भवदेव इतीरितः ॥ १४१ ॥
कच्चित् कुशलं भ्रातः संयमे तपसां चये ।
एकाग्रचिन्तने ध्याने ज्ञाने स्वात्मसमुद्भवे ॥ १४२ ॥
मुनिः प्राह महाभाग सान्नैव भ्रातर मति ।
समाधानपरा वत्स मद्गकामा वय त्विदम् ॥ १४३ ॥
किमेतस्मिन् गृहे भाति मूर्तं वा वसतेऽधुना ।
दृश्यते मंडपारम्भो भ्रातस्त्वद्वसतौ यतः ॥ १४४ ॥
पचवालंकृतं सौम्यं वपुः परमसुन्दरम् ।
करे कंकणमेवत्वे दृश्यते चात्सचानकम् ॥ १४५ ॥
आकर्ण्यैतद् गुरोर्वाक्यं भवदेवो नताननः ।
ईषत्स्मितं स्खलद्वाक्यमुवाच व्रीडया युतः ॥ १४६ ॥
स्वामिन्नत्र वसद्विभो नाम्ना दुर्मर्षणः स्मृतः ।
नागदेवी च भार्यास्य कुलशीलगुणांकिता ॥ १४७ ॥
तयोर्नागवसुपुत्री मयेहाद्य विवाहिता ।
आज्ञामादाय बंधूनां चेदमाज्यसमक्षकम् ॥ १४८ ॥
मुनिः प्राह ततः श्रुत्वा युक्तिसगर्भितां गिरम् ।
भ्रातर्धर्माज्जगत्यस्मिन् दुर्लभं न किमप्यहो ॥ १४९ ॥
धर्मादैन्द्रं पदं नृणां सर्वसंपत्समन्वितम् ।
चक्रित्वं चार्द्धचक्रित्वं नृपत्वं च विशेषतः ॥ १५० ॥

---

१ शरणे साधुः शरण्यस्तस्मिन् । २ गृहे ।

५

एकशो बोधयाम्येनं परमोपेक्षमानपि ।
स्वयं गत्वापि तद्गेहे सिध्यतु मे मनोरथः ॥ १२९ ॥
अर्हद्धर्मोपदेशस्य मतिशुद्धं कथंचन ।
विरक्तो भवभोगेभ्यो निश्चितं स भवेन्मुनिः ॥ १३० ॥
चिंतयित्वेति चित्ते स्व भावदेवो मुनिस्तदा ।
आशिश्रियद्गुरोः पार्श्वमाज्ञामादातुकाम्यया ॥ १३१ ॥
दीयतां भगवन्नाज्ञा मह्यं भ्रातृविबोधने ।
बद्धकक्षाय कारुण्यात्त्वत्प्रसादैकभूमये ॥ १३२ ॥
एवं प्रसादयित्वा स्वगुरुं नत्वागमन्मुनिः ।
भवदेवगृहे रम्यं कुबेर्यापयमुद्दिमाह् ॥ १३३ ॥
अनंतरं ददर्शासौ भ्रातृगेहं सविस्मितः ।
महापार्श्वरायं हि तोरणश्रीविराजितम् ॥ १३४ ॥
मंगलातापनाद्विश्व बधिरीकृतदिक्पथम् ।
चित्रीकृतैःसमाकीर्णं भक्त्या (त्या) दौस्तिवर्णनम् ॥ १३५ ॥
लावण्यपूर्णनारीभिः कृतगानमहोत्सवम् ।
बंदिभिः[1] स्तूयमानं च मंत्रवाक्यैरलंकृतम् ॥ १३६ ॥
जातीकुंदादिपुष्पैश्च वासितं गंधशालिभिः[2] ।
सत्कर्पूरविमिश्रैश्च श्रीखंडैश्चर्चितं भृशम् ॥ १३७ ॥
मुनिनापि युतः सार्धं भावदेवः सुसंयतः ।
अविसंवतया प्राप्तस्तस्य भ्रातुर्गृहांगणे ॥ १३८ ॥
ततो दृष्ट्वा समुत्थाय पूर्णमभ्युत्थय विधिम् ।
नमस्कारयामास भवदेवो नतानतः ॥ १३९ ॥

१ मम उपकार गुरवे इति आशीर्य चतुर्थी पार्श्वं । २ भिक्षुकाः ।

तद्वैस्थान निवस्याशु नमस्कृत्य पुन पुन ।
भरण्ये भरणे तपोपविष्टो गुरुमानिधौ ॥ १४० ॥
यागिना भ्रातृमन्येन यमघद्वचान्द्रानतः ।
समाधित पुनः प्राह भवन्न इतीरत ॥ १४१ ॥
विधत कुशले भ्रात सयमे तपसां चये ।
एकाग्रचिंतन ध्यान प्रान स्यात्मसमुद्भवे ॥ १४२ ॥
मुनि प्राह महाभाग साञ्जन भ्रावर मति ।
समाधानपरा वत्स मदुक्ताया यय त्विदम् ॥ १४३ ॥
किमतास्मिन गृह माति भूतं वा यततऽधुना ।
दृश्यते मंडपारभा भ्रानस्त्वद्दर्शनो यत ॥ १४४ ॥
यतबाल्कृतं साम्यं वपु परमसुन्दरम् ।
करे कंकणमवस्त दृश्यत पात्सनाचरम् ॥ १४५ ॥
आकर्ण्यन् गुरोर्वाक्यं भवदत्तो नताननः ।
इषत्स्मित स्मलद्वाचमुवाच व्रीडया युतः ॥ १४६ ॥
स्वामिन्नत्र वसद्विभो नाम्ना दुर्मर्षण स्तुत ।
नागदत्ती च भार्यास्य कुलशीलगुणाङ्किता ॥ १४७ ॥
तयोर्नागनमृषुभी मर्यहाय विनाहिता ।
आज्ञामादाय वधूनां मैत्र्यावयसमस्तकम् ॥ १४८ ॥
मुनि प्राह तत श्रुत्वा युक्तिसर्गार्भितां गिरम् ।
आत्मधर्मोऽङ्गस्यस्मिन् दुर्लभं न किमप्यहो ॥ १४९ ॥
धर्मादिन्द्रं पदं नृणां सर्वसंपत्समन्वितम् ।
चक्रित्व मार्धचक्रित्व नृपत्वं च विभाव्यत ॥ १५० ॥

१ मरणे साधुः प्राणावतिन । २ मंदे ।

सप्तमाणिन्यासम्या गृहस्थस्यमिनाद्विधा ।
रत्नत्रयमयो धर्मः स त्रिधा जिनदेशित ॥ १५१ ॥
नरत्वं प्राप्य दुष्प्राप्यं यो न धर्मं समाचरत् ।
मूर्नं मन्ये वृथा तस्य जन्म प्राप्तमपि स्फुटम् ॥ १५२ ॥
पीत्वा वाक्यामृतं पूतं प्राप्तं मुनिपयोदृतः ।
भवदेवो व्रतान्युच्चैः श्रावकस्याग्रहीत्तदा ॥ १५३ ॥
संगृहीतव्रतेनाशु विज्ञप्तो मुनिनायकः ।
स्वामिन्नत्र गृहे मेऽद्य त्वया भोज्यं कृपापर ॥ १५४ ॥
निमत्तरजुनस्यैव भ्रातृधर्मानुरागतः ।
मुनिः स शुद्धमाहारं निरवद्यं जघास सः ॥ १५५ ॥
ततश्चर्यापथं पश्यंश्चचाल मुनिपुङ्गवः ।
तिष्ठन्यत्र सौधर्मो यतिवृन्दसमन्वित ॥ १५६ ॥
ततः पौरजनाः कैश्चिद्विनाप्यनुमतिं मुनेः ।
चेलुस्तमनुगच्छन्त सभयस्य कृतोऽन्ततः ॥ १५७ ॥
तत्सार्थस्वमिषादाय कियद्दूरं यथायथम् ।
गत्वा पुनर्नमस्कृत्य व्याहृत्य गृहमाययुः ॥ १५८ ॥
भवदेवोऽनुजो भ्राता तेन सार्धमजीगमत् ।
गृहे गच्छ गुरोराज्ञां प्रतीच्छामिति गौरवात् ॥ १५९ ॥
मुनिनाभाणि न तद्वाक्यमहिंसाव्रतपालकम् ।
धर्मध्वंसभिया भव्यप्रसता संयमान्विकाम् ॥ १६० ॥
एवमेव गता दूरे दूराद्दूरतरेऽपि च ।
मुमुक्षुः करुणार्णवो व्याकुलीभूतचेतसः ॥ १६१ ॥

स्मार स्मारं पुनश्चित्ते नागमसमुत्सांभुमम् ।
मूर्च्छामिव पद् पश्च मस्तकभ्रांतिविभ्रमम् ॥ १६२ ॥
किंचित्सोपायमालोच्य व्याजादूचे मुहुर्मुहुः ।
मुहं मिगमिपया मानवेषं मति सहादर ॥ १६३ ॥
स्वामिन् स्मरस्यर्यं धसा गन्धूतिममिसः पुरः ।
भीदार्यं त्वमह चास्त्वां मस्यह यत्र सार्यत ॥ १६४ ॥
इतः पश्य तडाग मा पङ्कमासीविराजितम् ।
भ्रातुं त्व मरालस्य यभार्या तस्यतु पुरा ॥ १६५ ॥
कथिमं कानने पश्य नानानोकहसङ्कलम् ।
पुष्पावचयायावां च यत्राजम्मतुरादरात् ॥ १६६ ॥
तय स्थली कृपानाथ चन्द्ररश्मिरिवोज्ज्वला ।
यत्र कन्दुकवेलायै तस्थु सर्वेऽस्मदादयः ॥ १६७ ॥
इत्यादिविविधालापैरास्मार्हृत यदपि ।
भवद्वपो न शशाकार्षमोहितुं तन्मनो मनाक् ॥ १६८ ॥
नापि पश्यति नेमाम्यां ना किंचिद्विचतयेन्मुनिः ।
ययसापि न कुत्सर यद्दृा पाडुसमया ॥ १६९ ॥
क्माद्र्वं मुगच्छन्तीं भ्रापतुगुरुसनिधौ ।
घुरं घमरयस्थिता बोदारां प्रपमाबिस ॥ १७० ॥
समस्त मुनिमुख्य मेघ सर्वेऽपि सयता ।
धन्याऽसि त्वं महाभाग यनार्नाणोऽनुमः क्षणात् ॥ १७१ ॥
तता भवत्या प्रणम्याथ गुरुं सोपमसप्तकम् ।
उपविष्टो यथास्थाने भावदेवा मुनिस्तदा ॥ १७२ ॥

१ मोण्डुर्ग । २ धनपर्शक्तोभ । ३ मनाग्द्र- पृथ । ४ चक्रिपर्व । ५ स्त्यै ।

इतिकर्तव्यतामूढः पर्याकुलितचेतसः ।
चिंतयामास चित्ते स्वे भवदेवो नवोढकः ॥ १७३ ॥
निरस्याथ गृहं यामि किं वा गृह्णामि संयमम् ।
इति संशयदोलायां क्षणं नास्थापि तन्मनः ॥ १७४ ॥
यद्वाहमस्यावश्चिरं यत्कार्यं कृत्वानया समम् ।
कांतया दुर्लभान् भोगान् भुंजामीति यथेप्सितान् ॥ १७५ ॥
इदमाकूतं तु मे चित्ते वर्तते स्वमनीषितम् ।
तस्यात्र कथयाम्यत्र व्रीड्यावतमानसः ॥ १७६ ॥
केदं पदं मुनीशानां दुर्धरं महतामपि ।
अस्मादृशा वराकाः क दृष्टा कामसर्गगकै ॥ १७७ ॥
अथ चेम करोम्यत्र गुरुवाक्यमलक्षणात् ।
अयं ज्येष्ठो मम भ्राता माभूदाज्ञापरायणः ॥ १७८ ॥
विमृश्यैवमयप्रोऽपि कृत्याकृत्यविचक्षणः ।
सव्रत्यः कृतधैर्योऽसौ दीक्षामादातुमुद्यतः ॥ १७९ ॥
चिंतितं तेन चित्ते स्वे सलज्जेन विमुह्यता ।
गमिष्यामि पुनर्गेहं यथाकालमतः परम् ॥ १८० ॥
विमृश्यैतत्ससंभ्रमः स भवदेवो नताननः ।
अवादीन्मुनिमभ्यर्च्य यथा पूर्वविचेष्टितम् ॥ १८१ ॥
मुने परोपकाराय बद्धकक्ष महातप ।
मयि दीने कृपां कृत्वा देहि दीक्षां स्वमार्हतीम् ॥ १८२ ॥
विज्ञातो मुनिना पूर्णे सावधिज्ञानचक्षुषा ।
गाम्भीर्यमपि दुर्लक्ष्यं स्वाभिप्रायं द्विजोत्तमः ॥ १८३ ॥

१ नवविवाहितः । २ अनावरणं ।

प्रविष्टः स ददर्शोच्चैर्जिनचैत्यगृहं शुभम् ।
उच्चैस्तोरणसंयुक्तं ध्वजमालाभिराततम् ॥ १९५ ॥
मणिमुक्तामयैश्चारु भूषितं भूषणैः शुभैः ।
यातायातांगनाभिश्च कृतगानमहोत्सवम् ॥ १९६ ॥
त्रिः परीत्याथ भक्त्या तां वंदित्वा प्रतिमां चिरम् ।
उपविष्टो यथास्थानं भवदत्तो नाम्ना मुनिः ॥ १९७ ॥
तत्र चैत्यालये स्थाता सार्यिका या व्रतान्विता ।
चर्मास्थिस्नायुसर्वांगी मुनिं दृष्ट्वा ववन्द तम् ॥ १९८ ॥
समाधानं मूलं तज्ज्ञं संयमं तपसि व्रतं ।
ध्यानं ज्ञानं च स्वाध्यायं तथा कश्चिद्विचारितम् ॥ १९९ ॥
मुनिनापि यथायोग्यं पृष्ट्वा तत्कुशलं तदा ।
सा तत्रैव तां समुद्दिश्य प्राक्कमवाप्सुराक्षना ॥ २० ॥
आर्ये पूर्वमभूतां द्वौ विद्वांसौ ललिताकृती ।
द्विजस्यार्यवसोः पुत्रौ विख्यातौ सर्वसम्मतौ ॥ २०१ ॥
तत्र व्याख्यानयोऽन्यैर्मोनिद्य इति स्तुतः ।
भवदेवो लघीयांश्च वाग्मी मवनिद्रांवर ॥ २०२ ॥
पावने चेहिमानासि स्मृति मे संशयाच्छिनत् ।
क कथं तिष्ठतस्तौ द्वौ का कथा चाधुना तयोः ॥ २०३ ॥
सोऽथ तद्वाक्यमाकर्ण्य निर्विकारां मुनेरिताम् ।
धन्यौ तौ मुनिनाथौ द्वौ जातौ ध्यानादिसंस्थितः ॥ २०४ ॥
श्रुत्वैतद्भवदेवोऽसावुक्तवानसमञ्जसम् ।
उद्गिरन्निव स्वार्थमात्माकूतं वचस्तदा ॥ २ ५ ॥

१ वतिवर्येन । २ कश्चित् प्रमादीपदे ग्लमद ।

आर्ये यद किमप्यन्यत्पृच्छामीह महादरात् ।
न संदिग्धवचो दूष्य महतामपि संमतम् ॥ २०६ ॥
नाम्ना नागवसू यासीन्नवदक्षविवाहिता ।
सा विना पतिना बाला यावदधामवत्कथम् ॥ २०७ ॥
इति वार्ता विकारैः स ज्ञातो भर्तृचरस्तया ।
पश्चात्ताप मुहुर्वेस्या भिया कंपितयेव सा ॥ २०८ ॥
नून मुनिपद त्यक्तमयमिच्छति मूढधी ।
त्यक्तधैर्यातिकामांधा दुःसहस्मरपीडित ॥ २०९ ॥
अतो धर्मानुरागाद्धि वाच्योऽस्य मयाधुना ।
यथाकथंचित्सद्वाक्यैर्जिनोक्तैरमृतोपमैः ॥ २१० ॥
अथ चेत्सस्मरश्चार्य भोगानिच्छति सर्वतः ।
स्वमतं च मे भूयात्प्राणतोऽपि गरीयसि ॥ २११ ॥
विचिंत्येति क्रियाक्रांता सौधे साक्षात्स्वयमता ।
विनयेनानता मूर्ध्नि भारतीव प्रियंवदा ॥ २१२ ॥
स्वामिन्वीक्ष्य महाभाग धन्योऽसि त्वं जगत्त्रये ।
चारित्रं यत्त्वया प्राप्त दुष्प्राप्यं महतामपि ॥ २१३ ॥
त्वं पूज्यस्त्रिदिवेशानां मुनि परमपावनः ।
सर्वसंपन्निधानस्त्वं मोक्षलक्ष्मीस्वयंवरः ॥ २१४ ॥
तारुण्येऽपि महाभोगान्कश्चैतांस्त्यक्तुमर्हति ।
भवताऽन्यत्र भो सौम्य सुरलोकेऽपि दुर्लभान् ॥ २१५ ॥
आरंभे मधुराभासा विपाके कटुकाः स्फुटम् ।
हालाहलनिभा भोगा सद्यःप्राणापहारिणः ॥ २१६ ॥

कम्बामृतं परित्यज्य विषमिच्छति सुधीः ।
कश्चात्मानं समादृत्य त्यक्त्वा मामनुनव्र् स्वतः ॥ २१७ ॥
स्वमायवगयाः मम मुक्त्वा का नरकं प्रभेत् ।
त्यक्त्वा जैनश्वरी दीक्षां भोगान् कामयतेऽधमः ॥ २१८ ॥
इत्यादिविविधैर्वाक्यैः प्रतिवाचविपाचकैः ।
भाषित स तया वगात्स्वस्वयाभृत्पाद्मलः ॥ २१९ ॥
पृष्टा नागवसू याथ स्वया किंचित्स्मराकुलना ।
मामेवाभ्यलव पश्य तामभोगापिता मुनः ॥ २२० ॥
वपुस्तस्याः कृमिस्थानं भवष्टारमपावनम् ।
मुखं कालाविलं पूति कालिंगसदृशं शिरः ॥ २२१ ॥
स्वलब्धान्यमसंबन्धं बीभत्सा धघरः स्वन ।
गर्ताकारौ कपोलौ द्वौ मुक्ताचित बभ्रुपी ॥ २२२ ॥
किंवा बहुवरालाप सर्वेपाह समन्ततः ।
शुष्कमांसौ द्वौ तस्याः पतितौ च पयोधरौ ॥ २२३ ॥
स्वाधिकारात्ममधा द्वौ नरानिव कुसेवया ।
चमास्थिपूतसर्वांगी निष्प्राया प्रवतस्परा ॥ २२४ ॥
धिग्दुर्वचमिदं यन्मां स्मार स्मारं पुन पुनः ।
सन्तल्पन त्वया धीर कालाऽय गमिता मृषा ॥ २२५ ॥
सुंदर न किमप्यस्ति नूनं यापिसकुटीरके ।
भवतश्चेतो विरज्याशु निःशल्यं तपः कुरु ॥ २२६ ॥
तपसा यन प्राप्यते स्वगमोक्षसुखानि च ।
किं वृथा सिपरभिः सौख्याभासनिबन्धने ॥ २२७ ॥

कामिन्यादिमहाभागा मुक्ताच्छिष्टा मनतस्र ।
यतस्तप्रानुरागन किं मुन दु:सदायिना ॥ २२८ ॥
श्रुत्वा मुनिरिमां वाच निगतां कामिनीमुखात् ।
धिक्कुर्वन्निवात्मानमापल्लज्जापराऽभवत् ॥ २२९ ॥
तस्याः प्रशसन चक्र मतिबुद्धमना मुनि ।
भवदेवोऽभिसयागादिव कातस्वराऽमलः ॥ २३० ॥
धन्य त्वमय नौकासीज्जवाऽभ्युद्धरण मम ।
निमज्जत भवावर्ते मोहागाधतल भृशम् ॥ २३१ ॥
इत्युक्त्वाय गत्वा वनामि वत्या मुनिसन्निधौ ।
मुक्तपात्रो भ्रमावर्ते सम्प्रदीप्तमिवादिव ॥ २३२ ॥
नत्वाय मुनिनाथ समुपाविश्य यथासन ।
यथावृत्तं स्ववृत्तान्त तस्मै सर्वमचीकथत् ॥ २३३ ॥
छेदोपस्थापनं कृत्वा ततश्चत स संयमी ।
नातः साक्षान्मुनिर्मेता कर्मणां भावशुद्धिव ॥ २३४ ॥
धारमध्यानरतोऽप्यासीत्तत्रागमनिबन्धिवः ।
तप: कुर्वन्नजस्र स भ्राता सार्धमाचिष्टपत् ॥ २३५ ॥
निस्पृहः स्वशरीरेऽपि सस्पृहा मुक्तिसगम ।
सहिष्णु: क्षुत्पिपासाद्दिदुःखानां समभावतः ॥ २३६ ॥
अरिमित्रतृणस्वर्णलाभालाभसमः शमी ।
निंदास्तुतिसमा धीमान् जीविते मरण सम: ॥ २३७ ॥

---

१ प्रमादक्षालनयप्रकम्पनीनिमेषे सम्यग्दृष्टिक्रिया केशोपत्यासना ।

अंते समाधिना मृत्युं समाप्य विमलाशयौ ।
पण्डितं[1] मरणं प्राप्तौ द्वाभ्यां च शुभयोगतः ॥ २३८ ॥
ततस्तृतीये स्वर्गे द्वौ सनत्कुमारसंज्ञके ।
अभूतां दिविजौ राजन् सप्तसागरजीवितौ ॥ २३९ ॥
तत्र दिव्याप्सरोभोगान् भुंजानौ सुखमासतुः ।
द्वावपि व्रतमाहात्म्यात्प्रभावार्यवशान्नृप ॥ २४० ॥
यस्य धर्मस्य माहात्म्याज्जातावमरेश्वरौ ।
स धर्मः सर्वसिद्ध्यै सेव्यः सद्भिर्निरन्तरम् ॥ २४१ ॥

इति श्रीजम्बूस्वामिचरिते भगवत्श्रीपश्चिमतीर्थंकरोपदेशानुसारि-
स्याद्वादानवद्यगद्यपद्यविद्याविशारदपण्डितराजमल्लविरचिते
साधुपासासुतसाधुटोडरसमभ्यर्थिते भावदेवभवदेव-
सनत्कुमारस्वर्गगमनवर्णनो नाम
तृतीयः परिच्छेदः ।

---

1 मरणं त्रिविधं बालमरणं बालपण्डितमरणं पण्डितमरणं च । असंयतसम्यग्दृष्टेर्मरणं बालमरणं । देशसंयतस्य मरणं बालपण्डितमरणं । केवलिनः मरणं पण्डितमरणं ।

अथ चतुर्थपरिच्छेद

यथाप्रातकवंशात्या श्रीपालातनय कवी ।
वर्दता यहर' साधु रसिकोऽत्र कथामृत ॥
इत्याशीर्वाद ।

सुमतिं सुमतिं वंदे कुमतध्वान्तभास्वते ।
पद्ममर्मं भिषा नौमि पद्माभ पद्मबांधवम् ॥ १ ॥
अथ ताभ्यां सुखाम्भोधिमग्नाभ्यां मगधाधिप ।
निर्वाहिता निमा' काल' सप्ताम्भ्यासुभ्यसमित ॥ २ ॥
एकदाथ तयोरासन् भूपासवन्धिनोऽमला ।
मध्यपस्वेनसा मत्ता निद्रायाय प्रदीपयत् ॥ ३ ॥
माता चाप्यभवन्स्नाना महारुस्यमगामिनी ।
शुभेव तत्स्वर्सवन्धिसस्मीशिषिभेपमीक्षका ॥ ४ ॥
मथकंप तदा वाससेवपी कल्पपादपः ।
तद्विपागयहावातधृतः साध्वसमावभत् ॥ ५ ॥
मधुरकांतिस्तथारासीत्सपा मंदायिता तदा ।
पुष्पातपभ्रमिस्रप तच्छाया कानाविक्षते ॥ ६ ॥
तामाकान्य तदाभ्यस्तफोवी चिच्छायतां गतौ ।
द्रष्टुमक्षमकाः सर्वे सन कुमारकल्पका ॥ ७ ॥
तपार्दैन्यात्परिभाषा दैन्यं तत्परिवारकाः ।
तरौ वसति शाखाया विप्रपाम पश्यति किम् ॥ ८ ॥

आसन्मता यदाम्यां हि समास्ते सुखधामरम् ।
तयदा विदित सर्वं दुःखीभूयमिवागमत् ॥ ९ ॥
अथ सबर्मिणो दयास्तापुपस्य यथोचितम् ।
तयोर्विषादनाशाय पुष्कलं वचन जगुः ॥ १० ॥
मा धीरौ धीरतामेव कुर्वीतायां शुचात्र किम् ।
जन्ममृत्युजरातंकभयानां का न गोचर ॥ ११ ॥
साधारणी भवस्यपा सर्वेषां मत्युतिर्दिव' ।
यौरायुषि परिक्षीण न यार्तुं समते क्षणम् ॥ १२ ॥
नित्यालाकोऽप्यनालोका दिवाकः प्रतिभासत ।
विरामात्पुण्यदीपस्य सर्वतावकारित ॥ १३ ॥
यथा रविरभूत्स्वर्गे पुण्यापायादनारतम् ।
तथैवाम्मारविभूय क्षीणपुण्यस्य जायते ॥ १४ ॥
न केवलं परिम्लानिर्मालाया' सहमन्मनः ।
पापातप तपस्यत जंतार्म्लानिस्तनीरपि ॥ १५ ॥
कंपत हृदय पूर्वं चरमं कल्पपादपः ।
गच्छति श्रीः पुरा पश्चात्तनुच्छाया सम श्रियाः ॥ १६ ॥
प्रस्यासन्नच्युतेरेव यथा'स्य विदिवौकसाम् ।
न तस्याभारकस्यापि मस्यत्र युवयाः स्थितम् ॥ १७ ॥
यथोदितस्य सूर्यस्य निश्चिताऽस्तमय परः ।
तथा पाता मुखः स्वर्गे भवारम्युतयाऽप्ययम् ॥ १८ ॥
तस्माम गच्छतः शोक कुयान्यावतपातिनम् ।
कुयातां च मति धर्मे पुत्रामार्य्यां शुपाभने ॥ १९ ॥

इत्थ तत्मातिशायाद्धि धैर्यमामन्त्र्य धीधनौ ।
धारयामासतुर्धैर्य मति जैन सुखप्रद ॥ २० ॥
निरुद्धेन्द्रियरूपाणि प्रसान्यादानुमक्षमौ ।
तत्स्वापस्वभावत्वात्मच्छाराधो दिवाकसाम् ॥ २१ ॥
ततः कवलमिउपाश रुकनर्जिनधर्मनाम् ।
पूर्वौ तत्रत्यबिम्बानामपि भावविशुद्धय ॥ २२ ॥
तत्रत्यद्रुमूलस्थौ स्वायुर्वेन समाहितौ ।
अतिमाध्यानयोगेन ध्यानस्थपावर्नमिनौ ॥ २३ ॥
नमस्कारपदान्युच्चै स्मरन्तौ निभयाविह ।
मुक्त्वौकृत्य करा साक्षाभणाद्दम्पनौ गतौ ॥ २४ ॥
जम्बूद्वीप महामरौ विदह पूर्वस्मिन्गत ।
तत्रमण्डिम्पनमस्थिम्या कालभम्बिनाजिन ॥ २५ ॥
दिक्कमूपार्श्वानां दु मानानामनास्त्य ।
सदा तीर्थकृत्त्वत्स्वयां नत्यदस्त्नपावन ॥ २६ ॥
विष्णूनां मतिनिष्णूनां मकशानां तथर च ।
वत्सनिस्थान इ रम्य मांगुणागुभशास्मिनाम ॥ २७ ॥
कमभूमिरिति म्यात धनधान्यसमन्वित ।
नेतृन् गपपत तत्र नाम्ना च पुण्ड्मालनी ॥ २८ ॥
यत्र ग्रामा मथासमा कुक्कुटाडीनपावद्य ।
पद पद समामौना दृपत गस्तगेयद ॥ २९ ॥
गर्तासि यत्र राजत पर्वार्थितार गजमनम् ।
दृष्ट्वा नगरपनारीणां पार्थिप नापुनां पपु ॥ ३० ॥

१ [illegible]

अपि यत्र महाध्यानमानसा रमिरे भृशम् ।
कलहंसस्वरैस्तूर्णं गायंतीव हि तापसाः ॥ ३१ ॥
सप्रपा कूपका यत्र वाप्या वारिजलाघनाः ।
घन वनानि मार्गेषु निधानानि पदे पदे ॥ ३२ ॥
ग्रामा यत्र विराजंत पुरंदरपुरोपमा ।
नराः सुंदररूपाढ्या नार्यश्चाप्यतिसुंदराः ॥ ३३ ॥
किमत्र वर्णयेद्विद्वान् यत्र सौख्यं निरंतरम् ।
त्रिदशा तीर्थकर्तानां दिव स्वर्गमिवागतम् ॥ ३४ ॥
तत्रास्ति महती नाम्ना रम्या पूः पुण्डरीकिणी ।
द्वादशयोजनायामा नवयोजनविस्तृता ॥ ३५ ॥
यत्रोपवनराजीभी राजते भूमिरुच्चया ।
खातिका यत्र पातालं प्राकारश्चाप्यंबरं स्पृशत् ॥ ३६ ॥
जैनधर्मरता यत्र श्रावका मुनयस्तथा ।
रमंते व्रततीर्थेषु मराला मानसेष्विव ॥ ३७ ॥
तपः कुर्वंति घोराग्रग्रा यत्र तपोधनाः ।
मायापापेषु निर्भीका सर्वसंगविवर्जिताः ॥ ३८ ॥
यत्र कर्मक्षयं कृत्वा प्रयसाद्भूतिरक्षया ।
जायते प्राणिनां सम्यक्रूपादिस्वस्पर्शशालिनाम् ॥ ३९ ॥
रूपादिस्सम्यक्स्वस्पर्शा रत्नगर्भाविनिर्यया ।
सामुत्स्वर्गादिसौख्यानां प्राप्तौ निःश्रेयसस्य च ॥ ४० ॥
तत्र भूपोऽस्ति नाम्नापि वज्रदत्तो यशान्वितः ।
केवलं न रसास्वादरसर्यं वज्रमयं वपुः ॥ ४१ ॥

ज्वलत्स्य मतापाम्नो साधुमक्षमक्षा पर ।
क्षणादेव पलायत दूरादर्शनमात्रत ॥ ४२ ॥
यस्य पत्नी तु नाम्ना स्यात्पद्मभद्रा पद्माभना ।
मन्मथस्य धनुर्यष्टिरिव सादपराजिता ॥ ४३ ॥
भावदेवचर साऽथ दवाऽभूजनीय दिवि ।
ततश्च्युत्वा तया पुत्र सजात स्वायुष क्षय ॥ ४४ ॥
तता बन्धुभिराम्नात परमानन्दवर्द्धनात् ।
नाम्ना सागरचन्द्रोऽसाविन्दुवद्वर्द्धन क्रमात् ॥ ४५ ॥
अपि तत्रैव देशेऽस्ति वीतशोका पुरी परा ।
यद्राप्यगटिता यत्र भित्तया भाति फलितिभिः ॥ ४६ ॥
यत्र नाप समानाय भिषा स्वमतिबिम्बकम् ।
सपत्नीभ्रान्तिना यान्ति विमुग्धा रत्नभाणि ॥ ४७ ॥
यत्र क्रीडामयूर्ण मन्मथि नवर्णाकना ।
पीठार्थ पतिभि गाढं कवियापि मनोहरं ॥ ४८ ॥

[illegible]

क्वचिज्जलस्य केलौ सा रमन्ते रमणैः सह ।
यत्रोपवनवीथीषु फाल्गुन्यः पर्यटन्ति च ॥ ४९ ॥
तत्रास्ति चक्रलक्ष्मी महापद्माऽभिधानतः ।
यस्य हेममयी कीर्तिर्विस्तृता भुवनत्रये ॥ ५० ॥
निधीनां च नवानां स्यादधीशः सर्वसंपदाम् ।
चतुर्दशप्रमितानां रत्नानामधिपः स्मृतः ॥ ५१ ॥
षट्खण्डवसुधायाश्च पतिश्चैकोऽद्वितीयकः ।
द्वात्रिंशत्कसहस्राणां भूपानां सेवितक्रमः ॥ ५२ ॥
षण्णवतिसहस्राणां योषितां वल्लभः स्मृतः ।
भव्याब्जिनीनां समुत्साहे सहस्रांशुरिवोदितः ॥ ५३ ॥
तत्र काचिन्महादेवी वनमाला नाम्ना मता ।
एककर्मविधौ सासीदिन्द्रोपपदचक्रिणः ॥ ५४ ॥
तद्गर्भेऽवतारासौ भवदत्तचरोऽमरः ।
क्रमाच्छुभे दिने सम्यक् शुभलग्नमनि भूतले ॥ ५५ ॥
तदा जन्मोत्सवस्तस्य कृतो मुदितचक्रिणा ।
याचकेभ्यो यथाकामं दत्तं स्वर्णादिकं बहु ॥ ५६ ॥
तूर्याणां निनदैस्तत्र बधिरीकृतदिङ्मयम् ।
गायन्तीर्मङ्गलानीति नृत्यन्ति स्म वरस्त्रियः ॥ ५७ ॥

---

१ [illegible] ।
[illegible] ॥

२ [illegible] ।

३ [illegible]

पठुम्पारणधृद्वाम्त्र गद्यपद्यादिसम्भृतिम् ।
नरा कुसुमसमिभचम्नद्रवचर्चिता ॥ ५८ ॥
नय पुभानन पश्वी निरीक्ष्य मुद्मायया ।
पानन्दी पथानन्द् न्भत्माप्य रसायनम् ॥ ५९ ॥
तनम्चक्रस्य चक्रन्ना प धृतगर्भमपाहित ।
नाम्ना शिवकुमार न सम्यान्यथाभिधानकम् ॥ ६० ॥
म्नतधय पयपानसुद्धिमाप दिन न्दिन ।
यथा चान्दवनी नून कन्याभिवधनऽनिशम् ॥ ६१ ॥
नवन मानुरकस्य कचल न नद्ा भवन् ।
किनु चानरक्षम हर्म्यन्नालित म्वजनरपि ॥ ६२ ॥
म्मान्नानकुमारऽस्मानष्टत्रगसमान्वित ।
पराठ मन्म्वास्त्राणि मदधानुगतानि वै ॥ ६३ ॥
नर्यानी सन्नविद्यायां सर्गातऽपि नाम्क ।
पूर्व चारगृणापन्ना भूभागद्धरणक्षमः ॥ ६४ ॥
उद्याहिना-थ कन्याभि मम नन्दनपचभि ।
चक्रिणानदपुत्त्रन परमास्नवधारिणा ॥ ६५ ॥
गजन स्म कुमारऽसौ मम सामनमभिभि ।
निर्जिनाग्पनसन्दोभिरि दुर्दिनकर ॥ ६६ ॥
कदाचिर्द्रीतगार्दाभि रमन स्म नुभानन ।
कचिन्नानापनान्न शीतिर्षाग्पकिनान्न ॥ ६७ ॥
कचिन्नदपु रपाना भद्दानां च उद्यानिष्पनाम् ।
धौतकी नदनान्तु पमस्पगनिराधितु ॥ ६८ ॥

१ २ ३ प्रथा ।। ११४८६ न्दी न्तु ।

कचित्कचित्सगाग्धीषु कचिन्माध्यरसेषु च ।
कचित्क्रीडाद्रिसानौ स विक्रीड सह यौवनैः ॥ ६९ ॥
वनोपवनवीथीषु सरितां पुलिनेषु च ।
सरस्सु जलक्रीडायै कान्ताभिरगमन्मुदम् ॥ ७० ॥
आलिंगनं तदा स्त्रीणां कदाचिद्वक्त्रमप्पि ।
नासां स्मितकटाक्षैश्च रममाना मुहुर्मुहुः ॥ ७१ ॥
कदाचिन्मानिनीं मुग्धां कोपनां प्रणयास्मिकाम् ।
नयति स्म यथापायमनुनय नयात्मक ॥ ७२ ॥
कश्चिच्चैत्यालय गत्वा जिनबिम्बानपूजयत् ।
वारिगंधादिसामग्र्या भावशुद्ध्या च पावन ॥ ७३ ॥
कश्चिद्धर्मं शृणोति स्म गुरुभ्यः सुमस्कारकम् ।
स्वयं शिवकुमारोऽसौ यौवनेऽप्यगमन्मुदम् ॥ ७४ ॥
अंतरं पुंडरीकिण्यामस्ति सागरचन्द्रमाः ।
भावदेवचरः सोऽप्य भागसागरमध्यम ॥ ७५ ॥
अथान्येद्युः समायातस्त्रिगुप्तिर्मुनिसत्तमः ।
प्रतिभाति जगत्सर्व यस्य ज्ञानचतुष्ये ॥ ७६ ॥
सर्वपौरजनास्तत्र वंदनार्थं वनं ययु ।
वीक्ष्य सागरचन्द्रोऽपि जगाम मुनिसन्निधौ ॥ ७७ ॥
तदा नागरिका धर्मं श्रुत्वा जिनयान्विताः ।
स्वीयं सागरचन्द्रस्तु पृच्छति स्म भवांतरम् ॥ ७८ ॥
ततोऽवादी मुनिस्तत्र विमृश्यावधिचक्षुषा ।
शृणु वत्स महाभाग एष पूर्वभवाश्रयम् ॥ ७९ ॥

जम्बूद्वीपस्य क्षत्रेऽस्मिन भारत भरतान्विते ।
देशऽत्र मगध रम्ये वधमानाभिध पुर ॥ ८० ॥
पुत्रा द्विजपुत्रो स्याता सदमिर्यो सिद्वावरौ ।
प्रथमा भावस्वास्त्या द्वितीया भवदवक ॥ ८१ ॥
अथदत्ता स सोधमपुनिना मतिवाधितः ।
भावस्वस्तप नीग्रमप्रतीक्षरमीक्ष ॥ ८२ ॥
भवदत्ता लघुभ्राता नमस्तिप्ऽत्रिव सप्तनि ।
स्थ गत क्रियान्कालः स्वाधिकारामपत्त ॥ ८३ ॥
धमानुरागत साऽस्य भावदत्ता मुनिस्तत ।
भ्रातर वाधितु नत्र व्याजगाप पुन सुधी ॥ ८४ ॥
ततो धर्मोपदर्शन्च नीयमानाऽप्यवक्रताम् ।
समन्यापि न लज्जावान नी ता नप्रात शुद्धया ॥ ८५ ॥
ततः कृतनिद्धतान्च नि न्न्या ग्रततत्पर ।
पभूव मुनिमानिष्याधार्धिकनिधि पुन ॥ ८६ ॥
स्माधिरतरं हाम धारिर्त्र घगमा गुसाम् ।
भन समाधिवरण प्राप्त पूणपुष्पत ॥ ८७ ॥
तत सनत्कुमाराम्य नूनी र निरि जग्मत ।
तत्पथादनप्पायां जातौ पूणवर्षरस्क ॥ ८८ ॥
ततश्च दिव्यभागान्च भुक्ता निभ्रतसनीतन ।
मनाभिनासनान रमपान यार भागरमत्तरम् ॥ ९० ॥

स्वायुरंते ततश्च्युत्वा वज्रदंतनृपालये ।
जातस्तत्र मानवेन्द्रो यः स त्वं सागरचंद्रमाः ॥ ९० ॥
भवदेवचरस्तत्र चक्रवर्तिसुतोऽजनि ।
नाम्ना शिवकुमारोऽसावाजस्रं भानुमानिव ॥ ९१ ॥
भवद्दर्शनमात्रेण प्राप्य स्वीयां भवस्मृतिम् ।
बंधुसंसारभोगेषु विरक्तः स भविष्यति ॥ ९२ ॥
आकर्ण्येदं कुमारोऽसौ मुनिवाक्याद्भवान्तरम् ।
संसारासारतां मत्वा जातो धर्मपरायणः ॥ ९३ ॥
अहो जगदिदं कृत्स्नं जन्ममृत्युजरास्पदम् ।
अत्र सारः किमस्तीति चिंतयामास स क्षणम् ॥ ९४ ॥
सारोऽस्त्यत्र दयाधर्मो मतो मुक्तिसुखप्रदः ।
स चेन्द्रियकषायाणां दुर्भेद्य दमनक्षमः ॥ ९५ ॥
कायः स एव जीवनं स्वात्मनः सुखमिच्छता ।
इति सागरचन्द्रोऽसौ निश्चिकाय चिदीश्वरः ॥ ९६ ॥
ततस्तस्य मुनेः पार्श्वे दीक्षां जग्राह कश्चित् ।
सार्धं कैश्चिच्च भूपालैर्निःस्पृहः सर्वजन्तुषु ॥ ९७ ॥
ततः समसुखदुःखोऽसौ रिपुमित्रसमः क्षमी ।
समः पितृवने सौधे जीविते मरणे समः ॥ ९८ ॥
बाह्याभ्यंतरयो द्वेधा तपश्चर्यां चकार सः ।
परीषहोपसर्गेभ्यः न चचाल समाधितः ॥ ९९ ॥

---

१ दमनक्षमे । २ [illegible] पत्नीभ्यो भार्या तथा । [illegible]

क्रमात् कुर्वन् विहारं स चारणर्द्धिविराजितः ।
समाप्त श्रुतसंपूर्णो वीतशोकां पुरीं वराम् ॥ १०० ॥
तत्र मध्याह्नकालेऽसौ कृतर्यापथशुद्धिभाक् ।
पारणार्थमनोद्दत्या (र्त्यं) जिनदर्पं यथाविधि ॥ १०१ ॥
राजसौधसमीपस्थ कस्यचिच्छ्रेष्ठिना गृहे ।
नवकोटिविशुद्धः स ग्रास जग्राह शुद्धधी ॥ १०२ ॥
मुनिदानस्य माहात्म्याद्रत्नवृष्टिरभूत्तदा ।
नभोमार्गात्सुधाराभिर्दातु पुण्यसुरांगण ॥ १०३ ॥
अवलोक्य जना सर्वे वावदूकाः परस्परम् ।
जजल्पुः किमिद तूर्णं जातं विभास्वरं महत् ॥ १०४ ॥
परस्परविवादाद्वै तत्र कोलाहलोऽजनि ।
तत शिवकुमारोऽपि श्रुतवानितिवृत्तकम् ॥ १०५ ॥
आनंदात्सौधकक्षापि सोधस्थोऽपि निरीक्ष्य तम् ।
मुनीशं विस्मयं प्राप किंचिच्चित्तेऽप्यचिंतयत् ॥ १०६ ॥
मया क्वापि मया दृष्टो मुनीशोऽयं भवांतरे ।
स्नेहार्द्रं मे मनोऽत्यर्थादि संस्कारात्पूर्वजन्मनः ॥ १०७ ॥
पृच्छाम्यहं मुनिं गत्वा संशयच्छेदहेतवे ।
इति चित्ते चिंतयामास तावज्जाता भवस्मृति ॥ १०८ ॥
तथा सर्वं तदाज्ञायि वृत्त पूर्वभवाश्रितम् ।
नूनं मम ज्येष्ठो भ्राता तपस्व्यय महामुनिः ॥ १०९ ॥
अनेनैव तदा धर्मे स्थापितोऽहमनुग्रहात् ।
येन पुण्यादयेनैव प्राप्ता सौख्यपरंपरा ॥ ११० ॥

१ भ्रान्तं तथिध्ने तिमिरं तम इत्यमर ।

भुक्त्वा सनत्कुमारास्थान् महाभागाननश्वरम् ।
प्राप्य चक्रिगृहे जन्म चास्मिन् सर्वसंपदाम् ॥ १११ ॥
इहामुत्र मम भ्राता गतिश्चार्ये कृपापरः ।
स्मरन् भवांतरं प्राग्वस्तत्समीपेऽगमत्तदा ॥ ११२ ॥
महाप्रासपृष्ठे साऽस्य दृष्ट्वा तं मुनिकुंजरम् ।
पप्रच्छ मुनिपार्श्वस्थः समाक्षारगदाम्बिव ॥ ११३ ॥
चक्रवर्ती तु तच्छ्रुत्वा वगात्समागतः क्षणात् ।
माहादृत्रि(स्थि)त्वापश्यामा विललाप महीपतिः ॥ ११४ ॥
अहो पुत्र किमवादि त्वयाकारि विरूपकम् ।
किमत्र कारणं वत्स वद वाक्यममीत्क्षितम् ॥ ११५ ॥
काचित्कांताविरुद्धाढ्या कंपमाना ससाध्वसात् ।
श्वासोच्छ्वासमहावात मरकंपे लता यथा ॥ ११६ ॥
काचिन्मुग्धापि प्रेमाढ्या विभीता नयसंगमे ।
साश्रुपातमवांचत्र व्यक्तं गद्गदिति कंपकम् ॥ ११७ ॥
काचिन्मध्याविताकम्पात्प्रौढा कामरसं स्फुटम् ।
तद्वियोगभयातांम ज्वलंनि स्म स्मरातुरा ॥ ११८ ॥
काचित्प्रौढा रसज्ञा च दृष्ट्वाऽपि मूर्छापप ।
स्मारं स्मारं गुणांस्तस्य स्थिता चित्रार्पितेव सा ॥ ११९ ॥
सर्वे पौरजनाश्चापि व्याकुलीभूतचेतसः ।
सर्वं यावदसौ स्थितस्तावदन्नं पानं च नाददुः ॥ १२ ॥
एवं तत्र महान् क्षोभो दुःसहोऽभनि भूतले ।
हन्तो दुष्पदार्थस्य भीतिः केषां न जायते ॥ १२१ ॥

१ कामस्थानम् ।

ततो यथाकर्यचिद्वै यत्नैर्नीताऽप्रधानेताम् ।
कुमारः प्रतिबुद्धोऽभूत्सहस्रांशुरिवाहनि ॥ १२२ ॥
पृष्टः संघः कुमारोऽसौ कथं मूर्च्छामवाप्तवान् ।
कथयाशु यथार्थत्वं श्रमत्र वाक्यमुत्तमम् ॥ १२३ ॥
ततोऽवादीद्विमृश्यासौ गुणमाकूतमात्मनः ।
सुहृद् मेमिपुत्राय नाम्ना रत्नवर्माभिऽनिशम् ॥ १२४ ॥
चिंतागृहगन्तानां मित्रं स्यात्परमौषधम् ।
यता युक्तमयुक्तं वा सर्वं तत्र निवेदयेत् ॥ १२५ ॥
मित्राहं भवभोगेभ्यः समस्तोऽस्मि भवाञ्छित ।
नानायानिभ्रतावर्तदु:खभीमैर्दुरुत्तरात् ॥ १२६ ॥
तदाकृत्य समादाय कर्तुमिच्छाम्यहं तप ।
सर्वं चक्रधरस्यात्र कथितं रत्नवर्मणा ॥ १२७ ॥
स्वामिन्नसौ समासन्नमन्यजीवो विशुद्धदृक् ।
विपत मन्यमान सन्साम्राज्यं तृणवन्नित ॥ १२८ ॥
सत्यथाय निरक्तात्मा सर्वभोगेषु निस्पृह ।
न चास्य लब्धताऽभीष्ट मूर्च्छा स्यात्क्षीवन चन ॥ १२९ ॥
अथ स्वात्मस्वरूपज्ञस्तत्त्वपदी चितांबर ।
सर्वं हेयमुपादेय वचि जैनो यतियथा ॥ १३० ॥
न केनाप्यन्यथाकर्तुं शक्यते रत्नबुद्धिमान ।
रागयान्यमहार्णवरपक्षोऽप्यपक्वहृदयम् ॥ १३१ ॥
सांप्रतं मात्सवैराग्यः संस्कारात्पूर्वजन्मन ।
निश्चल्य सर्वजीवेषु मामाभिपुरस्सरयम् ॥ १३२ ॥

१ वैराग्यवं । २ मोक्ष ।

आकर्ण्येदं वचश्चक्री निष्ठुरं वज्रघातवत् ।
व्यग्रं चतश्चमत्कारं न चकाराचरमग्रम् ॥ १३३ ॥
क्षणं वपुरस्यासीकृद्रि व्यामाह्यासिनि ।
स्ववद्भुसमाप्लजघनपु·पस्मावली बलात् ॥ १३४ ॥
गद्गदं च वचो मत्पवनल्पकरुणास्वन ।
विमलप महीपालो हा विधिपत्नैवचाऽहितम् ॥ १३५ ॥
अन्यथा चिंतितं कार्यं दैवात्सपद्यतेऽन्यथा ।
यथा वारिजमध्यस्थ षट्पदः करिणा इव ॥ १३६ ॥
वरं(दि)स्येव ससताप चक्रवर्तिन्यनत्सन्नः ।
अंत·पुरजनं सार्धं वनमाना गता वरा ॥ १३७ ॥
पुत्र क्वापि दुष्टेन पाठितस्त्व स्तनंधय ।
अप्रगल्भा मतिभेर्य विधेत नव संप्रति ॥ १३८ ॥
बाल्यावस्था क्व ते वत्स क्व प्रव्रज्यापद महत् ।
न्दं कार्यमसंभावि घटते न कदाचन ॥ १३९ ॥
नवो इंद्रस्य महाभोगान त्रिष्मानमरदुर्लभान ।
भानमस्तलकृपाकसाम्राज्यपदसंस्थितः ॥ १४० ॥
इत्यात्रिकं पितुर्वाक्यं शृण्वन्योगीश्वकार सः ।
कुमार प्रतिवाक्यं च धर्म्यां कामलया गिरा ॥ १४१ ॥
तात कर्मवशान्मूनं बंभ्रम्यंत च जंतुभिः ।
चतुर्गतिभवावर्ते स्थितं क्वापि न निश्चलम् ॥ १४२ ॥
कदाचिच्चारको भूत्वा भवति तिर्यग्वा नरः ।
नर स्वापु·घये भूत्वा स्यादेवोऽथ नरूपकः ॥ १४३ ॥

पुत्रः कोऽपि न कस्यापि पिता वा न मुतस्य वै ।
उन्मज्जति निमज्जति जीवा जलतरंगवत् ॥ १४४ ॥
नर्य लक्ष्मा पित साध्वी सन्निभमत्याज्जिता यत ।
एवं त्यक्त्वा भितान्यत्र पर्य्यवारव चचला ॥ १४५ ॥
कान्ता नात्र विश्वास क्षण वाऽनवधानत ।
उल्काभिसारिका तुल्या कारण दुःखसकट ॥ १४६ ॥
भागा भुजगभागाभाः सद्यःप्राणापहारिण ।
स्वमन्द्रजालवचात तारुण्य विपयास्पदम् ॥ १४७ ॥
इद मत्यक्तता ज्ञान मत्यभिज्ञानकारणम् ।
त्यात्साध्वी यत्रि राज्यश्री कथ त्यक्ता महर्षिभि ॥ १४८ ॥
श्रूयतेऽत्र पुरावृत्त श्रीमता ज्ञानसाधना ।
त्यक्त्वा सर्वांगसाम्राज्यं तपश्चक्रुर्विमुक्तये ॥ १४९ ॥
कुरु तात समाधानमलं भाग्यैरभाग्यकैः ।
आपाते मधुरै रम्यैर्विपाके कटुकैरिह ॥ १५० ॥
स धर्मो यत्र नाधर्मस्तत्पदं यत्र नापद ।
तज्ज्ञानं यत्र नाज्ञान तत्सुखं यत्र नासुखम् ॥ १५१ ॥
श्रुत्वा पुत्रवचश्चक्री सन्दर्भसंदर्भगर्भितम् ।
निश्चिकाय तत प्राज्ञः सुतस्यापि मनीषितम् ॥ १५२ ॥

१ पवित्र । २ अयिनो' इता । ३ यशस्तिलकचम्पूकाव्ये यशस्तिलकान्ते स्याद्वादे
निम्नश्लोकोपलभ्यते ।

सधर्मो यत्र नाधर्मस्तत्सुखं यत्र नासुख ।
तज्ज्ञानं यत्र नाज्ञानं सा गतिर्यत्र नागति ॥

नूनं स्वामहितायासौ निर्विण्णा ममभीरुकः ।
चग्रं तपः समादाय गंताल परमां गतिम् ॥ १५३ ॥
जानन्नपि महामोहाद्दुःखाय धरणीपति ।
भूत्वा विधाहि कारुण्यं मयि यथान्यभर्तरिपु ॥ १५४ ॥
चातयकानिव सौम्य पयालाचय साम्प्रतम् ।
तथा त तपस सिद्धिमम भावत्कदर्शनम् ॥ १५५ ॥
तव संप्रस्थिता भूत्वा कुरु पुत्र यथेप्सितम् ।
उग्रं तपाव्रतादीनि यथाशक्ति समाचर ॥ १५६ ॥
रागद्वेषौ न विद्येते यथात्मज वनेन किम् ॥
स्यातां चेद्य सङ्कुलापतनेन वनेन किम् ॥ १५७ ॥
इत्यादिकं विमुनोक्यं भत्वासौ करुणारसः ।
क्षणं वाचयमी तस्थौ निस्तरंगसमुद्रवत् ॥ १५८ ॥
तथा मृदुगिरोवाच कुमारः करुणार्द्रिव ।
एवमस्तु करिष्येऽहं यथा तात मनीषितम् ॥ १५० ॥
कुमारस्तदिनान्नूनं सर्वसंगपराङ्मुख ।
ब्रह्मचर्यैकवक्षाऽपि मुनिवच्चिष्ठत गृह ॥ १६० ॥
अकामी कामिनी मध्ये स्थितो वारिजपत्रवत् ।
अहो ज्ञानस्य माहात्म्यं दुर्लभ्यं महतामपि ॥ १६१ ॥
कचित्कातर धुर्कं द्व्यन्तरऽव्य करापन ।
पक्षान्तरऽथ मासान्त स्पर्शं सजन्मवाजनम् ॥ १६२ ॥
प्राशुकं शुद्धमाहारं कृतकारितवर्जितम् ।
भात्म्य भिक्षयानीतं मित्रेण हडवर्मणा ॥ १६३ ॥

तत्र तीव्रतपानलैर्दह्यमानं मिराक्ष्य वै ।
मारकाघादया नष्टा प्रादुरासन्न तु पुन ॥ १६४ ॥
एवं सपस्यतृ पष्टिसहस्राणि तपस्यता ।
नीतानि पापभीतेन कुमारेण महात्मना ॥ १६५ ॥
स्वायुरंते तदा जातो यथामाता महामुनि ।
त्यक्त्वा चतुर्विधाहार मांस्यविधौ जितेन्द्रिय ॥ १६६ ॥
ततस्तप फलान्मूनमणिमान्गुणान्वित ।
ब्रह्मोत्तर सुरेन्द्रोऽभूद्विद्युन्माली तन्नाम्यया ॥ १६७ ॥
आयुःप्रमाणमस्यासीद्दशसागरसंख्यकम् ।
महादेव्योऽपि विद्यन्ते चतस्र प्राणवल्लभा ॥ १६८ ॥
सोऽयं प्रत्यक्षतो राजन राजते त्रिदिवे द्युवराद् ।
नास्य कांतिरमुतुच्छा सम्यक्त्वस्यातिशायित ॥ १६९ ॥
अथ सागरचन्द्राख्यो यो मुनिमतत्पर ।
सन्यासेन वपुस्त्यक्त्वा प्रतीन्द्रस्तत्र सोऽभवत् ॥ १७० ॥
सोऽपि नानाविध सौख्य भुंक्ते पचाक्षसमवम् ।
मनोभिलषित रम्यं निर्विघ्नं च यथेप्सितम् ॥ १७१ ॥
धर्मात्सुख कुर्त धीर्म धर्मात्सना हि सपद ।
इति मत्वा सदा सम्या धर्ममूल्य प्रयत्नत ॥ १७२ ॥

इतिश्री जम्बूस्वामीचरित्रे भगवच्छ्रीपश्चिमतीर्थकरापरम्परानुसरेण स्याद्वादानवद्यगद्यपद्यविशारदपण्डितराजमल्लविरचिते साधुपासातानयश्रीसाधुटोडरसमभ्यर्थिते भावदेवभवदेवभ्रातृस्वर्गगमनवर्णना नाम चतुर्थ सर्ग ।

अथ पंचमः सर्गः

कुर्वन्तु मंगलं नित्यं चतुर्विंशजिनाधिपाः ।
श्रीसाधुधरस्यास्य साधुपासात्मजस्य च ॥ १ ॥
इत्याशीर्वादः ।

सपार्श्वं पार्श्वराधिष्ण्यं यं विघ्नाघशान्तये ।
चन्द्रप्रभमहं नौमि चन्द्रराधिर्धनञ्चयम् ॥ १ ॥
भवातः भणिको नम्र पृच्छति स्म गणाधिपम् ।
स्मा ह्यप्रमत्तस्याऽपि कुत पुण्यादिहागताः ॥ २ ॥
भासां भवान्तराणीश मम संशयविच्छिदे ।
नवाभाव गणभ्राना विनयप्राप्या हि यागिन ॥ ३ ॥
शृणु भणिक देशेऽस्मिन्नगरी स्याच्चंपापुरी ।
तत्राथ सूरसेनोऽस्ति श्रीमत्तामप्रना वरः ॥ ४ ॥
तस्य भार्याश्चतस्रः स्युस्तासां नामान्यथ शृणु ।
जयभद्रा सुभद्रा च धारिणी च यशोमती ॥ ५ ॥
आभिर्भोगान् भुनक्ति स्म चिरं यावच्छुभोदयः ।
पुनश्चाशीरितः पापस्तीव्रसंक्लिष्टसमय ॥ ६ ॥
ततः पापोदयादेव स्याद्दामयमयं वपु ।
युगपत्सप्तरोगाणां सन्निपातमिवाप्नुयात् ॥ ७ ॥
श्वासः कासः क्षयश्चैव मस्तकशूलभगंदरौ ।
मैभिर्मन्त्री महाव्याधिरसदस्तस्य भावत्र् ॥ ८ ॥

---

१ रत्नचूड़ ।

अथ पञ्चम स

कुर्वन्तु मङ्गलं नित्यं चतुर्विंशजिना
श्रीसाधुसुन्दरस्यास्य साधुपासारम

सुपार्श्वं पार्श्वराजिपर्श्च वंदे जिनाग्र
चन्द्रप्रभमहं नौमि चन्द्रराजिर्धर्मप्रभ
अथाव भणिका नम्रः पृच्छति स्म
ष्मा दम्पत्योस्तस्याऽपि कुत पुष्पादिर
भासौ मनोतराणीश यत्र संभ्रमपर्षि
ततोवाच गणभाना जिनप्रभाद्या हि
शृणु भणिक वैदेशेऽस्मिन्नगरी स्यात्त्व
तत्राद्यः सूरसनाऽस्ति श्रीमतामप्रतो
तस्य मायाश्चतम्रः स्नुषास्तो नामा
नयभद्रा सुभद्रा च धारिणी च यशाम
भाभिर्भोगान् भुनक्ति स्म चिरं यावच्छु
पुनश्चारीरित[1] पापस्ताम्रसंक्रमसंभव ॥
ततः पापाद्भयाद्व स्यात्रामयमर्य मसु ।
युगपत्सवरागाणां सन्निपातमिवागमत् ॥
कासः श्वासः समदर्पम जस्तत्र्यरमर्गन्री ।
मैथिमश्री महाभासुरसयस्तस्य चामयम् ॥ ८ ॥

---

१ रोमपुर्ण ।

यथाश्रुतं नाथ ज्ञान विज्ञानमक्रम ।
यच्छिक्षितं क्षणादेव ज्ञातपूर्वमिवामुना ॥ ३१ ॥
शस्त्रशास्त्रादिविद्यासु दुष्कर नास्य किंचन ।
एवंभुवानुभूतत्वाभ्यास कुर्वताऽनिशम् ॥ ३२ ॥
अन्यथुर्दिवनयामास दुर्दशादुष्टबुद्धिमान ।
शिक्षितं न मया चौर्यमेक सर्वगुणान्वितम् ॥ ३३ ॥
निशायति स्वचित्तेऽसौ रात्रौ गत्वा पितृगृहे ।
वनं धनं प्रविश्याशु तत्र तस्करवान्क्रियः ॥ ३४ ॥
गतम्याठाय रत्नानि महार्घानि मनीषया ।
गच्छन् दृष्टः स केनापि रत्नादयार्थरनन्यक ॥ ३५ ॥
ज्ञातस्तेनेद तत्सर्वं भूपस्याग्र निवेदितम् ।
श्रुत्वा भूपस्ततोऽस्याठीदगाज्ञानीयतां स हि ॥ ३६ ॥
इत्याकर्ण्य स्वभावस्त्रिरानीतोऽपि निजालयान ।
पंपवान धीरकमासा स मुखं स्थितवानितः ॥ ३७ ॥
नीता पार्थिवत्र राज्ञा सान्त्वन सौम्यया गिरा ।
पुत्र चौर्यमिदं निर्धं कुत कस्य कृत त्वया ॥ ३८ ॥
भोगान भावनु मत्रामाऽसि यच्चि त्व मम का क्षतिः ।
यथाप्सितान भागान् भुंक्ष्व यापिदृष्टफलनाद्भिमान(फलंपकैः)३९ ।
यत्किंचिदुर्लभं लोके तन्मुल्भं मयाप्य ।
यदि दीयते सर्वं तुभ्यं तत्प्राण समक्षत ॥ ४० ॥
इदं चौर्य महानिषमिदाम प द्र स्तम्भम् ।
मा कुरुष्व महाभाग्र सपसंतापकारणम् ॥ ४१ ॥

१ ए रूपमिद ।

ततस्ताऽपि तपस्तूर्णं निर्विण्णा भवभीतितः ।
आर्यिकाव्रतमादाय निर्ययुः सद्मबन्धनात् ॥ २० ॥
यथागमं तपस्तीव्रं संतेपुस्ताः शुभाशया ।
सन्न्यासमरणं कृत्वा देव्यो ब्रह्मोत्तरेऽभवन् ॥ २१ ॥
विद्युन्मालिसुरस्यास्य संजातास्ता इमा नृप ।
भार्याः प्राणसमा रम्या नानाशास्त्राब्धिपारगाः ॥ २२ ॥
श्रुत्वा धर्मकथामेतां श्रेणिको मुदमाप सः ।
ततो व्यापारयामास पुनः प्रश्नं समीहितम् ॥ २३ ॥
स्वामिन्नद्य त्वया प्रोक्तं विद्युन्मालिसुरस्य यत् ।
निसमं विद्युच्चरणासौ तपस्तीव्रं ग्रहीष्यति ॥ २४ ॥
कोऽस्ति विद्युच्चरो नाम्ना कुतस्त्यः किंकुलो महान् ।
कथं चौरत्वमापन्नो भविष्यति कथं मुनिः ॥ २५ ॥
एतद्वृत्तं कृपां कृत्वा ब्रूहि सन्मतिनां वर ।
सव्यासं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो धर्मफलाप्तये ॥ २६ ॥
ततोऽभाषीज्जिनेशानः कृपापारपयोनिधिः ।
शृणु श्रेणिक धर्मस्य माहात्म्यं परमाद्भुतम् ॥ २७ ॥
अथात्र मगधस्यैव विषये नगरं महत् ।
हस्तिनागपुरं नाम्ना स्वर्लोकपुरोपमम् ॥ २८ ॥
तत्रास्ति संवरो नाम्ना नृपो गर्वदर्पितः ।
तस्य भार्यास्ति श्रीषेणा कामयष्टिः श्रियंवदा ॥ २९ ॥
तयोः सूनुरभूदाख्या विद्युच्चरो नृप ।
शिक्षितः सकला विद्या वर्द्धमानकुमारतः ॥ ३० ॥

यथादृष्टश्रुतं चाथ ज्ञानं विज्ञानमेव च ।
शिक्षितं क्षणादेव ज्ञातपूर्वमिवामुना ॥ ३१ ॥
धनुर्मासादिविद्यासु दुष्करं नास्य किंचन ।
प्राग्भवानुभूतत्वादभ्यासं कुर्वताऽनिशम् ॥ ३२ ॥
अन्यथुश्चिन्तयामास दुर्दैवागुणबुद्धिमान् ।
शिक्षितं न मया चौर्यमेकं सर्वगुणास्पदम् ॥ ३३ ॥
निशापति स्वचित्तेऽसौ रात्रौ गत्वा पितुर्गृहं ।
शनैः शनैः प्रविश्याशु तत्र तस्करवत्क्रियः ॥ ३४ ॥
ततश्चादाय रत्नानि महार्घाणि मनीषया ।
गच्छन् दृष्टः स केनापि रत्नान्यपहरन्नल्पकः ॥ ३५ ॥
प्रातस्तेनाह तत्सर्वं भूपस्याग्रे निवेदितम् ।
श्रुत्वा भूपस्ततोऽप्याशु द्रागानीयतां स हि ॥ ३६ ॥
इत्याकर्ण्य स्वपार्श्वैरानीतोऽपि निजालयात् ।
पर्यङ्कान् धीरकमासौ सन्मुखं स्थितवानिव ॥ ३७ ॥
नीतो धार्मिकवत्तु राज्ञा सार्द्धं च सौम्यया गिरा ।
पुत्र चौर्यमिदं निंद्यं कुतः कस्य कृतं त्वया ॥ ३८ ॥
भोगान् भोक्तुं समर्थोऽसि यदि त्वं मम का क्षतिः ।
यथाप्सितान् भोगान् भुंक्ष्व यावदिच्छस्यनिवारं(कन्दर्पः)३९ ।
यत्किंचिदुर्लभं ज्ञात्वा तत्सुलभं ममालय ।
यत्किंचिद्याचसे पुत्र तत्तेऽहं समर्पये ॥ ४० ॥
इदं चौर्यं महानिंद्यमिहामुत्र च दुःखदम् ।
मा कुरुष्व महाभाग सर्वसंतापकारणम् ॥ ४१ ॥

१ पुरा ज्ञातमिव ।

श्रुत्वापीदं वचस्तथ्यं नासावुपशमं ययौ ।
शर्करादि यथा पथ्यं सन्निपाते न रोचते ॥ ४२ ॥
ततः प्रत्युत्तरं प्राप्य ददौ चौर्यरतः शठः ।
अहो चौर्यस्य राज्यस्य भेदोऽस्त्यत्र महानिति ॥ ४३ ॥
राज्यस्य प्रमिता लक्ष्मीः चौर्यस्याप्रमिता च सा ।
तुल्यता न तयोरासीत्तथा प्राज्ञा गुणस्त्वयं ॥ ४४ ॥
अवमीय पितुः सूक्तिं कृत्याकृत्यासमीक्षकः ।
अगात्स्वराज्यतो दुष्टो नाम्ना राजगृहं पुरम् ॥ ४५ ॥
तत्रास्ति सस्मरस्मरा वेश्या कामलताह्वया ।
आसक्तोऽसौ तया सार्धं भोगान भुङ्क्त मनीषितान् ॥ ४६ ॥
चौर्येणार्जितं द्रव्यमनायासादहर्निशम् ।
यथाकामं स वेश्यायै ददाति स्म स्मरातुरः ॥ ४७ ॥
इति प्रश्नोत्तरं प्राप्य निर्गतं भगवन्मुखात् ।
तुतोष श्रेणिको भूपो भूयः प्रश्नायतोऽभवत् ॥ ४८ ॥
भगवन् यस्त्वया प्रोक्तो विद्युन्माली कथानकम् ।
सप्तमे वासरे स्वर्गादयमेष्यति मत्सख ॥ ४९ ॥
कस्य पुण्यवतः सद्म जन्मना भूषयिष्यति ।
पृष्टः कुर्वन् समाधानं भगवान् जगतांपतिः ॥ ५० ॥
अत्र राजगृहे राजन् राजते श्रीसमन्वितः ।
अर्हद्दासाभिधः श्रेष्ठी जैनधर्मकृतत्परः ॥ ५१ ॥
तस्य भार्या सुरूपाख्या नाम्ना जिनमती स्मृता ।
धर्ममूर्तिर्महासाध्वी सद्विवेक सुखावहा ॥ ५२ ॥

१ अनन्यरूप ।

तस्या गर्भे महापूते पुण्यादवतरिष्यति ।
सम्यग्दर्शनपूतात्मा मुक्तिमर्त्ता भविष्यति ॥ ५३ ॥
अथ कश्चिन्महायशो ननर्त्तानन्दनिर्भरः ।
जिनवाक्यसुधापूरैः परिप्लावितसत्तनुः ॥ ५४ ॥
जय नाथ जय स्वामिन् जय केवललोचन ।
त्वत्प्रसादात्कृतार्थोऽस्मि प्राप्तं पुण्यफलं मया ॥ ५५ ॥
धन्यमेतत्कुलं श्लाघ्यं यत्रोत्पत्स्यति केवली ।
भानुमानिव भात्यस्मिन् केवलज्ञानभानुभिः ॥ ५६ ॥
स एव पावनो देशस्तदेव नगरं शुभम् ।
तत्कुलं तद्गृहं पूतं यत्र धर्मपरंपरा ॥ ५७ ॥
नर्तयित्वाथ यक्षोऽसौ स्वासने स्थितवान् मुदा ।
श्रेणिकः पृच्छति स्मैतत्किमिदं सूरि भो विभो ॥ ५८ ॥
व्याजहार गणाधीशो राजानं श्रेणिकं प्रति ।
नगरेऽत्रैव भो राजन्नासीद्वणिक्सुता वरः ॥ ५९ ॥
धनदत्तो नाम्ना सौम्यो लक्ष्म्या श्रीधनदोपम ।
तस्य भार्या समाख्याता नाम्ना गोत्रमती शुभा ॥ ६० ॥
सहायाख्या(दत्त)सौम्यस्य केवलं श्रेयसाऽपि च ।
श्यद्य पुत्रस्तयोरासीदर्हद्दासाऽविपुष्टिमान् ॥ ६१ ॥
सत स्यादसधीर्माथ जिनदास इतीरित ।
... ... ॥ ६२ ॥
तयोर्मध्ये कनिष्ठो या जिनदासः समाख्यया ।
दुर्दैवयोगतो नून स्यात्सर्वव्यसनातुरः ॥ ६३ ॥

पलमपि पिबन्मद्यं सेवते गणिकां कुधीः ।
द्यूतं क्रीडति पापात्मा निंद्यकर्म करोति च ॥ ६४ ॥
कुपाचौर्यादिकं सप्तमिहामुत्र च दुःखदम् ।
किमत्र बहुनोक्तेन स स्यात्सप्तक्रियामयः ॥ ६५ ॥
अहो प्रसिद्धिर्लोकेऽस्मिन् द्यूताद्धर्मसुतादय ।
एकस्माद्व्यसनाद्भ्रष्टाः प्राप्ता दुःखपरंपराम् ॥ ६६ ॥
अयं सर्वैः समग्रैस्तु व्यसनैर्लोलमानस ।
अद्य श्वो वा परश्वश्च ध्रुवं दुःखे पतिष्यति ॥ ६७ ॥
एवं पौरजनाः सर्वे आनन्दीरं परस्परम् ।
दुर्वचनं वदंति शास्त्रस्य शिक्षाविदस्तये ॥ ६८ ॥
अथान्यद्युर्दिने तेन क्रीडता द्यूतमंजसा ।
हारितं कांचनं तावद्यावन्नास्ति स्वसद्मनि ॥ ६९ ॥
ततस्तेन गृहीतोऽसौ द्यूतकारेण प्रभुणा ।
त्वरितं देहि मे द्रव्यं यत्त्वयात्र पराजितम् ॥ ७० ॥
ततोऽसौ निष्ठुरालापैराक्रुश्याऽपूत्तराभितः ।
यावत्प्रभुस्मरणात्र स चक्रवानसमंजसम् ॥ ७१ ॥
इहाय क्षेपणं न स्यात्प्राणान्तेऽपि च सर्वथा ।
बधबन्धादिकं सर्वमनिष्टं कुरु सत्वरः ॥ ७२ ॥
शृण्वन् जिनदासनार्कं सभिय कुपितोऽभवत् ।
प्रहार्माद महास्वर्णं माणानय ते तस्कर ॥ ७३ ॥

१ मर्मे । २ पूर्वं क्रीडति इति पुस्तकान्तरे । ३ हारितं । ४ मस्तमीकृतं ।
५ तदध । स्वर्णमित्यर्थ ।

नान्या गतिर्भविभीर मानीहि त्व सुनिश्चितम् ।
परस्पर विवादादे भात कालाहस्ता महान् ॥ ७४ ॥
दुष्टेन तेन रुष्टेन क्षत्रियेण प्रकोपतः ।
तस्य पापोदयात्स्वैव जिनदासोऽसिना हतः ॥ ७५ ॥
मूर्च्छितं स सपाशाखय सापराधात्परायित ।
ततः पौरजना सर्वे द्रष्टुं तमागता क्षणात् ॥ ७६ ॥
अर्हद्दासोऽपि समेत्य दृष्ट्वा तं भ्रातरं निजम् ।
क्षणाद्व्याकुलचित्तोऽपि निन्ये स्वस्मात्स्वसद्मनि ॥ ७७ ॥
आनीतः सद्वैद्योऽपि तच्चिकित्सादिहेतवे ।
तथापि न समाधान मभेदस्य दुरात्मन ॥ ७८ ॥
यदिदं दुष्टकर्मारी प्रतीकारा वृथास्थिताः ।
निसर्गतः खले पुंसि कृताप्युपकृतिर्यथा ॥ ७९ ॥
स प्रतिबाध्यमानेन्दुं धर्मबान्धवर्ति वदन् ।
अर्हद्दासश्च तस्मैस्या जैनसूत्रममपीपदत् ॥ ८० ॥
भ्रातमास्मिन् भवावर्ते भ्रान्तो मिथ्यामतिः स्वतः ।
बंभ्रमीति महादुःखं परावर्तैरनन्तशः ॥ ८१ ॥
मिथ्यात्वं विषया यागाः कषाया बन्धहेतवः ।
तत्र द्यूतादिकं कर्म लोकद्वयेऽपि गर्हितम् ॥ ८२ ॥
द्यूतादिव्यसनासक्तानां नूनं स्यादधःपतनम् ।
इहामुत्र महातीव्र कर्मासातं समाश्रयेत् ॥ ८३ ॥
तत्त्वयाप्यसको भ्रात मासा द्यूतफलं महत् ।
नूनं विद्धि परत्रापि तीव्रदुःखं करिष्यति ॥ ८४ ॥

अर्हद्दासाख्यदेवं हि श्रुत्वाभूत्प्रमभीरुकः ।
स्वयं धर्मपीयूष जिनदासो महाद्युत ॥ ८५ ॥
अर्हद्दासं समुद्दिश्य जिनदासेनात्र्क मया ।
मन्ये यदनिष्टं कर्म तत्सर्वं पापकात् कृतम् ॥ ८६ ॥
गतोऽयं च यया कान्त्या मयस्य व्यसनार्णवे ।
अद्य मां कृपया भ्रात सापराधं समुद्धर ॥ ८७ ॥
इह जन्मनि च भ्रातृत्वं यथा सद्धितकारकः ।
परस्माकेऽपि धर्मात्मन् सहायी भव सर्वदा ॥ ८८ ॥
अर्हद्दासोऽप्यतः श्रुत्वा तद्वचः करुणास्पदम् ।
साधन धर्मकार्यस्य मतिं धत्ते स्म शुद्धधीः ॥ ८९ ॥
अणुव्रतानि तस्यादौ प्रार्थितानि मनीषिणा ।
संन्यासेन तदा मृत्वा यक्षोऽभूत्पुण्यपाकतः ॥ ९० ॥
नर्तति स्म तदभ्यासौ निःसीम्न्यास्महर्षो नृप ।
मत्सकलशिनो जन्म मद्वंशे सम्भविष्यति ॥ ९१ ॥
अर्हद्दासगृहे शुभा निःसंदेहं भविष्यति ।
विद्युन्मालिचरः सोऽयं जम्बूनामाऽन्त्यकेवली ॥ ९२ ॥
तदस्यापि परं भूप जम्बूस्वामिकथानकम् ।
कथयिष्यन्ति मुनीन्द्राः सत्पुण्याजनहेतवे ॥ ९२ ॥
श्रुत्वा श्रीभगवद्वाक्यं मुदितः श्रेणिको नृपः ।
पप्रच्छाभीप्सितं सर्वं यद्वीकेऽस्मिन् चराचरम् ॥ ९४ ॥
स्वाक्यं गंधकामीऽसौ आरब्धं स्तवनं ततः ।
गद्यपद्यादिसद्वाक्यैर्भगवद्गुणानपि ॥ ९५ ॥

जय देव महादेव केवलज्ञानलोचन ।
कृपावारिनिधे नद सर्वभूतहितंकर ॥ ९६ ॥
जय देवाधिदेव त्वं घातिकर्मविनाशकृत् ।
मामस्थोपमस्तस्य धर्मतीर्थप्रवर्तकः ॥ ९७ ॥
यथा त्वं शरणं स्वामिन्नसि त्रिजगतामपि ।
तथा मे शरणं भूयाद्यावत्स्यां त्वत्समा विभो ॥ ९८ ॥
इति स्तुत्वा जगामासौ श्रेणिको नगरं प्रति ।
कुर्वन् जिनोदितं धर्मं कर्मममर्मनिबर्हणम् ॥ ९९ ॥
राज्यं कुर्वति भूपाले स्थिते श्रावकाग्रमत्क्रियान् ।
अर्हद्दासाभिधः श्रेष्ठी राज्यकार्यधुरंधरः ॥ १०० ॥
भार्या जिनमती तस्य सातेव शीलशालिनी ।
परं नालंकृता कैर्गुणैरपि विभूषिता ॥ १०१ ॥
तौ दंपती मिथः स्यातां स्नेहार्द्रौ सुखसस्थितौ ।
मार्गाब्धिमध्यगौ चापि जैनधर्मपरायणौ ॥ १०२ ॥
अथान्येद्युः सुखं सुप्ता साऽर्हद्दासस्य भामिनी ।
निशायाः पश्चिमे भागे संददर्श स्वभावलीम् ॥ १०३ ॥
पश्यति स्म शुभं पूर्वं जम्बूफलकदम्बकम् ।
भ्रमरालीसमालीढं संशोभि नयनप्रियम् ॥ १०४ ॥
निर्धूमं ज्वलनज्वालां ज्वालिताभं च शाश्वतम् ।
सारविंदं सरः पश्यन् सफलं च पयोनिधिम् ॥ १०५ ॥
यथाद्राक्षीन्निशि स्वप्ना भर्त्रे न्यवेदयत् ।
आकर्ण्य श्रीमत्तीमाक्तमर्हद्दासाऽभिनंदत ॥ १०६ ॥

यथानंदरव' केकी नंदति स्म घनागमे ।
अयं सूर्ये समुत्थाय नमस्कुर्वन् पुनः पुन' ॥ १०७ ॥
मर्द्दुं स्वप्नफलं चासौ प्रविष्टा जिनमंदिरे ।
सकलमा जिनेशादीनर्चयित्वा विशुद्धधीः ॥ १०८ ॥
प्रणम्य च मुनीशानं पृच्छति स्म विशांपतिः ।
स्वामिन्नद्य निशाभागे पश्चिमे मम भार्यया ॥ १०९ ॥
अनया मुखसात्दृष्टा काचित्स्वप्नावली शुभा ।
तस्याः फलं यथाम्नाय ब्रूहि सज्ज्ञानलोचन ॥ ११० ॥
अथावाच मुनिः स्वप्नफलान्यस्मान्ययथाक्षिदं (?) ।
॥ १११ ॥

कामदेवसमः सूनुः स्याज्जम्बूफलदर्शनात् ।
स चालोकारम्भदीपाग्नेः सधुक्ष्यति कर्मेन्धनम् ॥ ११२
शालिक्षेत्रसमासौ भविष्यति लक्ष्मीपतिः ।
स्यात्कमलाकरालोकाद्भव्यपापौघदाघहा ॥ ११३ ॥
पायोधिदर्शनात्स्वेच्छिन् यथाब्धिमुत्तरिष्यति ।
भव्यानां मुखसंप्राप्त्यै वर्षिष्यति धर्मामृतम् ॥ ११४ ॥
श्रुत्वा धर्मफलान्युर्वीभृत्वा सानन्दमानस ।
मुनिवृन्दं त्रिधा नत्वा श्रेष्ठी स्वसद्ममागतः ॥ ११५ ॥
अनंतरं दिवश्च्युत्वा विद्युन्मालो सुराधमः ।
गर्भाधाने स संक्रान्तः श्रीमत्याः पूर्वपुण्यतः ॥ ११६ ॥
ततस्तद्दिनमारम्भ सासीत्जिनमती तदा ।
सालसांगी च मृद्वंगी सखेदा नीलचूचुका ॥ ११७ ॥

१ पुस्तक द्वय पाठे स्यात् इत्यस्ति ।

आपाण्डुस्तनगर्भेषु श्यामिस्यान्मृदुभाषिणी ॥
तथापि शुद्धमत्यर्थं रत्नगर्भावनियथा ॥ ११८ ॥
विवर्मी यंगमायाता तस्या गर्भे स्थित शिशौ ।
धर्माङ्गिनि सपापावर्जितायास्तदादर ॥ ११९ ॥
अथास्या दोहदा जातः शुभ सर्वोऽपि सम्पदः ।
देवशास्त्रगुरूणां हि पूजायां मीतिरुत्तमा ॥ १२० ॥
जिनबिम्बप्रतिष्ठायां निष्ठायां पुण्यकर्मणे ।
जीर्णचैत्यालयोद्धार दान चैव चतुर्विधे ॥ १२१ ॥
तं सर्वं पूरयामास श्रेष्ठी मुदितमानसः ।
कृतोत्साह स सम्यीचान् स्पृहालुः पुत्रजन्मन ॥ १२२ ॥
नवमामानतिक्रम्य सुखं सा सुषुवे सुतम् ।
तेजस्विनं महापूतं यथा प्राची समारिपुम् ॥ १२३ ॥
उत्तम फाल्गुने मास सितपक्ष शुभ दिन ।
गहिणीसंस्थिते चन्द्रे तथापसि शिनिमये ॥ १२४ ॥
जन्मोत्सव कृतस्तेन श्रेष्ठिनार्हदासिना ।
च पुर्वगरजनपथ तथा पौरजनैः सह ॥ १२५ ॥
नदुर्दुन्दुभय' स्वर्गे पुष्पवाष्टिरभूत्तत ।
मधुवाता सुर्नीला'च सुगंधा पुष्परेणुमि ॥ १२६ ॥
सवमापि चतुर्दिक्षु जयशब्दमहाध्वनिः ।
भूयत परमानन्दकारणं करणप्रिय ॥ १२७ ॥
जगुर्गीतं सुगीतज्ञा कामिन्या भमिनभ्रुव ।
रूपामृत्य महर्षिन्ति कुम्भारणसान्तका ॥ १२८ ॥

१ चन्द्रेषु । २ मूर्धम् ।

दुकूलैर्मणिमाणिक्यैर्यैश्चक्रुश्च शुभांगणम् ।
तत्केन वर्णितुं शक्यं कविनापि महौजसा ॥ १२९ ॥
दानं प्रयच्छतस्तस्य श्रेष्ठिना न मनक्श्रम ।
दरिद्रो न च सम्प्राप्ता तत्परं याचे दरिद्रता ॥ १३० ॥
इति कल्याणमालाभिर्लालित सत्कृतः शुभः ।
जम्बूस्वामीति नाम्नापि ख्यातो पित्रा स च सुना ॥ १३१ ॥
धात्र्यो नियोजितास्तस्य श्रेष्ठिना दक्षिकैव ।
मज्जने मण्डने चास्य संस्कारे क्रीडनेऽपि च ॥ १३२ ॥
ततोऽसौ स्मितमातन्वन्संसर्पन् मणिभूमिषु ।
पित्रोर्मुदं ततानायं यस्मात्स्तुतविचेष्टितः ॥ १३३ ॥
जगदानंदि नेत्राणामुत्सवं परमूर्जितम् ।
कलोज्ज्वलं तदस्यासीच्छैशवं शशिनो यथा ॥ १३४ ॥
मुग्धस्मितमभूदस्य मुखेन्दोश्चंद्रिकासमम् ।
तेन पित्रोर्मनस्तोयमवार्धिर्वर्धिततराम् ॥ १३५ ॥
पीठबन्धः सरस्वत्या लक्ष्म्या हसितविभ्रम ।
कीर्तिवल्ल्या विकासोऽस्य मुखं मुग्धस्मयोऽभवत् ॥ १३६ ॥
स्खलत्पदं शनैरिन्द्रनीलभूमिषु संचरन् ।
स रेमे वसुधां रक्तकञ्जैरुपहरन्निव ॥ १३७ ॥
रत्नपांशुषु चिक्रीड स यथाभिरुचं समम् ।
पित्रोर्मनसि संतोषमातन्वन् ललिताकृतिः ॥ १३८ ॥
प्रजानां दधदानन्दं गुणैराह्लादिभिर्निजैः ।
कीर्तिज्योत्स्नापरीतांग स बभौ बालचंद्रमाः ॥ १३९ ॥

बालावस्थामतीतस्य तस्याभूद्रुचिरं वयः ।
कौमारं देवनाथानामर्चितस्य महौजसः ॥ १४० ॥
वपुः कान्तं प्रिया वाणी मधुरं तस्य वीक्षितम् ।
जगतः प्रीतिमातेनुः सस्मितं च प्रजल्पितम् ॥ १४१ ॥
कलाश्च सकलास्तस्य वृद्धौ वृद्धिमुपाययुः ।
इन्दोरिव जगच्चेतो नंदनस्य जगत्पतेः ॥ १४२ ॥
विश्वविश्वम्भरस्यास्य विद्या परिणता स्वयम् ।
ननु जन्मान्तराभ्यासः स्मृतिं पुष्णाति पुष्कलाम् ॥ १४३ ॥
कलासु कौशलं श्लाघ्यं विश्वविद्यासु पाटवम् ।
क्रियासु कर्मठत्वं च स भेजे शिक्षया विना ॥ १४४ ॥
वाङ्मयं सकलं तस्य प्रत्यक्षं वा समारभूत् ।
येन विश्वस्य लोकस्य वाचस्पत्यादभूद्गुरुः ॥ १४५ ॥
यथा यथास्य वर्धन्ते गुणांशा वपुषा समम् ।
तथा तथास्य ज(य)शसौ वभुता चागमन्मुदम् ॥ १४६ ॥
परमाणुरमास्यापूरमे निर्मिता वपुः ।
आरोग्यं तत्र सामान्यं सौन्दर्यं च विशेषतः ॥ १४७ ॥
कदाचिल्लिपिसंख्यानं गन्धर्वादिकलागमम् ।
अभ्यस्तपूर्वमभ्यस्य स्वयमभ्यासयन् परान् ॥ १४८ ॥
कदाचिच्चित्रकारप्रस्तारादिविधापनैः ।
कदाचिच्छ्रावयन् गोष्ठीं विधाय च कलागमैः ॥ १४९ ॥
कदाचित्सद्गोष्ठीभिः काव्यगोष्ठीभिरन्यदा ।
भावज्ञैः समं कैश्चिज्जल्पगोष्ठीभिरन्यदा ॥ १५० ॥

कर्हिचिद्गीतगोष्ठीभिर्नृत्यगोष्ठीभिरन्यदा ।
कदाचिद्वाद्यगोष्ठीभिर्वीणागोष्ठीभिरन्यदा ॥ १५१ ॥
कर्हिचिद्वीक्षमाण नट्यौ नटपेटकम् ।
नाटयन् करतालेन स्वयमागानुयायिनः ॥ १५२ ॥
कदाचित्कलकण्ठेनानुमन्द्राकिन्याख्यायमयम् ।
गंधर्वैश्च समुद्गीतं स्वं समाकर्णयन् यशः ॥ १५३ ॥
कदाचिद्दीर्घिकाम्भस्सु समं वयःकुमारकैः ।
जलक्रीडाविनोदेन रममाण ससंभ्रमम् ॥ १५४ ॥
सारवं जलमासाद्य सारवं जलदूर्जितः ।
वारवैर्यन्त्रकैः क्रीडन् जलास्फालस्फुटारवैः ॥ १५५ ॥
कदाचिन्नंदनस्पर्द्धितरुच्छायाञ्चित वन ।
वनक्रीडां समातन्वन् वयस्यैरन्वित शिशुः ॥ १५६ ॥
इति कालाञ्चितान् क्रीडा विनोदांश्च स निर्विशन् ।
सुखं स्माद्दृष्टपर्यायो जम्बूस्वामी कुमारकः ॥ १५७ ॥
इति भुवनपतीनामर्चनीयोऽभिगम्य
सकलगुणमणीनामाकरः पूर्णमूर्तिः
सह नृपतिकुमारैर्निर्विशन्कामभोगा-
नरमत चिरमस्मिन्पुण्यगेहे स भव्यः ॥ १५८ ॥
तारासीतरसां दधन् मुखशिरां मल्लस्यसासंगिनीम्
मत्स्या शासनपद्धतीमिव वरां तां हारयष्टिं पृथु ।
ज्योत्स्नामन्यमयांशुकं परिदधत्कांचीकलापान्वितम्
रेजेऽसौ नृपदारककरसंघः क्रीडन् यथेन्दुः शिशुः ॥ १५९ ॥

१ हस्तान् । २ कलापकः ।

यस्मात्पुण्यविपाकतो दिवि सुरा भुंजन्ति सौख्यं परं
यस्माच्चात्र महीतले नरवरास्तीर्थंकराश्चक्रिणः ।
जायन्ते बलभद्रकाममुख्यास्तद्वैरिणो विष्णवः
सेव्यो धर्ममहातरुः सुकृतिभिर्यत्नात्किमन्यैः परैः ॥ १६० ॥

इतिश्री जम्बूस्वामिचरित्रे भगवच्छ्रीवर्धमानतीर्थंकरोपदेशानुसारि-
स्याद्वादानवद्यगद्यपद्यविशारदपण्डितराजमल्लविरचिते
साधुपासातनयसाधुटोडरसमभ्यर्थिते
जम्बूस्वामिजातकर्मोत्सवशैशवविनोदवर्णनो
नाम पञ्चमः सर्गः ।

अथ षष्ठ सर्ग

जीयात्स टोडरः साधुर्यस्य कीर्तिः समुज्ज्वला ।
विस्तृता भुवि पूर्णेन्दोरिव ज्योत्स्ना सुधारदी ॥ १ ॥

इत्याशीर्वादः ।

सुविधिं सुविधातारं धर्मतीर्थस्य नायकम् ।
शीतलं समरं वंदे यस्य वाचः सुशीतलाः ॥ १ ॥
अथास्य यौवने पूर्णे वपुरासीन्मनोहरम् ।
मकरस्येव सखी— — किं पुनः शरदागमे ॥ २ ॥
निरस्तकनकच्छायं कामरूपं निरामयम् ।
क्षीरोस्यस्तवर्नं दिव्यं— — — – –॥ ३ ॥
—— परां कोटिं दधान सौरभस्य च ।
अष्टोत्तरसहस्रेण लक्षणानामलं ...... ॥ ४ ॥
....
.... पार्श्वं येन रूपातिसच्छविम् ॥ ५ ॥
यत्र यत्र— ....
इननमीक्षितु .. .. ॥ ६ ॥
निद्रोपगमसहार्तंका नास्य देहस्य .. ..
..........मलरागाधर ॥ ७ ॥
तदस्य तस्य गात्रं परमौदारिकाह्वयम् ।
महाभ्युदयनिर्माण .. मूलकारणम् ॥ ८ ॥

मानोन्मानप्रमाणानामन्यूनाधिकतां श्रितम् ।
संस्थानमायमस्यासीच्चतुरस्रं समन्ततः ॥ ९ ॥
तदीयरूपलावण्ययौवनादिगुणात्करैः ।
आकृष्टा जनतानेत्रभृंगा नान्यत्र रेमिरे ॥ १० ॥
आलोक्य तस्य सौंदर्यं सर्वाः पौरजनस्त्रियः ।
विद्धा मन्मथबाणेन बभूवुः स्मरपीडिताः ॥ ११ ॥
काचित्तद्वदनं द्रष्टुं वीक्ष्यमाणा मुहुर्मुहुः ।
व्रीडयाकुलचित्ता स्यान्मुग्धा कामातुरा सती ॥ १२ ॥
मुग्धावस्थापि तारुण्याभवयौवनशालिनी ।
काचित्कामाग्निना दग्धा निःश्वसती रिरंसया ॥ १३ ॥
काचित्प्रौढा रसज्ञा च पण्डिता शास्त्रदर्शने ।
स्मरन्ती तद्गुणानत्र स्थिता चित्रार्पितेव च ॥ १४ ॥
काचिद्वातायने स्थित्वा गृहकार्यपराङ्मुखा ।
मार्ष्टुं तदङ्गनं नूनं साभिलाषानुलसिता ॥ १५ ॥
काचित्किंचिच्छलं नीत्वा निःसरन्ती स्वसद्मनः ।
भ्रमति स्म महावीथ्यां यत्र तस्य गमागमः ॥ १६ ॥
काचित्तद्दर्शनायालं सा चालापि विलम्बिता ।
कायध्वसमयोदय चिंतति स्माधर पथि ॥ १७ ॥
काचिज्जन्मांतरेऽपीह भर्तारं तत्समं परम् ।
इच्छति स्म निदानेन सकामभिपयानया ॥ १८ ॥
इत्यादिकास्तदालोकाद्विरहव्याकुलीकृताः ।
याः सर्वा नामतोऽप्यत्र वर्णितुं न क्षमः कविः ॥ १९ ॥

१ ख इच्छ लिंगा यथा ।

सुपुंसा हि वरं चैको यः स्यात्स्वकुलदीपकः ।
न च मन्दं कुपुत्राणां सहस्राणि कुलद्विषाम् ॥ २० ॥
कश्चित्तत्र विशांनाथा श्रुत्वा सद्गुणसंपदः ।
दातुकामाः स्वसात्मीयां कन्यां सोत्कण्ठिताः स्वयम् ॥ २१ ॥
एकस्तत्र विशांनाथा वसत्यश्रीजिनभाक्तिकः ।
श्रेष्ठी सागरदत्ताऽस्य भार्या पद्मावती शुभा ॥ २२ ॥
दुहिता स्यात्तयोर्नाम्ना पद्मश्रीश्च पद्मानना ।
दिव्यसौन्दर्यसंपन्ना नवतारुण्यशालिनी ॥ २३ ॥
धनञ्चोऽपरस्तत्र वसत च वणिग्वरः ॥
भार्या कनकमालाख्या तस्यासीच्छामनानना ॥ २४ ॥
नाम्ना कनकश्रीः पुत्री तयोरासीत्कमस्तना ।
तप्तसौवर्णवर्णाभा साकर्णायतचक्षुषी ॥ २५ ॥
आढ्यो वैश्रवणः श्रेष्ठी तत्रासीद्वणिजां पतिः ।
कान्ता विनयमालास्य सत्यान्वर्थाभिधानका ॥ २६ ॥
आत्मजासीत्तयोर्नाम्ना विनयश्रीरितीरिता ।
कामधामेव तन्वंगी सर्वलक्षणभूषिता ॥ २७ ॥
धुर्यस्तत्र धनिमुख्या विषये श्रीसमन्वितः ॥
स्याद्विनयमती तस्य भार्या साध्वी पतिव्रता ॥ २८ ॥
रूपश्रीरिति विख्याता तयोरासीत्सुता वरा ।
पक्वबिम्बाधरा तन्वी पृथुपीनपयोधरा ॥ २९ ॥
अपि ता स्युस्तवतोऽपि तरुण्यो नवयौवनाः ।
मन्यमाना इवाशां मार्गिष्यन्त स्मरभूपतेः ॥ ३० ॥

१ वरमेको गुणी पुत्रो न च मूर्खशतान्यपि । इति हितोपदेशे । २ तरुण्यः ।

ततोऽपि चिन्तितं तैश्च वणिग्भिर्धर्मराशिभिः ।
इत्थमेवाधुना कार्यं कर्तव्यमथ सर्वथा ॥ २१ ॥
चत्वारोऽपि परामृश्य ततः शीघ्रं समागताः ।
तद्गृहे दातुकामास्तु कन्यास्ता जम्बुस्वामिने ॥ २२ ॥
अथैकमपरमित्याशु निशम्य तैः समस्तत ।
अर्हद्दास भद्र श्रेष्ठिन् धन्योऽसि त्वं जगत्त्रये ॥ २३ ॥
यस्त्वद्गृहे महापूतः पुत्रोऽभूद्विश्वपावनः ।
जम्बूस्वामीति विख्यातस्त्रैलोक्यैकशिखामणिः ॥ २४ ॥
अथास्मत्प्रार्थनां सार्थां समाधां कुरु सर्वतः ।
यत्त्वन्नन्दनयोग्याः सु(स्यु)रस्मद्गृहे कुमारिकाः ॥ २५ ॥
दत्तास्ताः श्रेयसेऽस्माभिः कन्याः स्युस्तद्गृहोचिताः ।
जम्बूस्वामीति तद्भर्ता भवतां प्रीतिरुत्तमा ॥ २६ ॥
युष्माभिः सममस्माकं मैत्रीभावः परस्परम् ।
यथा भूत्वा क्रमप्रीता धर्माज्ञापरायणा ॥ २७ ॥
समभय वचस्तेषां श्रुत्वा श्रेष्ठी मुदं दधन् ।
सस्मितोऽन्तःपुरं गत्वा तत्र जिनमतीं प्रति ॥ २८ ॥
आननन्द ततो हर्षान्निर्भयाधिता सती ।
प्रायः पुत्रास्तत्र नार्यः साभिलाषाः स्वभावतः ॥ २९ ॥
तद्दृष्टाऽपि तदा प्रीत्वा श्रेष्ठी ताननन्दत्सुधीः ।
भद्रा यदभीप्सितं कार्यं कुर्वीध्वं यूयमुत्तमम् ॥ ४० ॥
अथासन्नतृतीयायां निश्चित्याद्यमञ्जसा ।
ससत्कारपुरस्कारा भगवत्स्नात्सवं प्रति ॥ ४१ ॥

१ पुत्र । २ कर्षितं ।

अथ प्रेमसगीतिः स्यात्संधानामपि सप्तसु ।
एकत्रीक्रियते नित्यं सामग्री तत्र भक्ष्यम् ॥ ४२ ॥
धनधान्यसुवर्णादिवस्त्रालंकरणानि च ।
नीयन्तेऽत्र महामौल्यं दत्वा तैः सावधानकैः ॥ ४३ ॥
सधर्मबन्धविप्रादि सर्वं निष्पाद्यते भृशम् ।
परस्परं समाहूतो बन्धुवर्गो यतस्ततः ॥ ४४ ॥
इत्युद्वाहसमारंभे चत्वारोऽपि वणिग्वराः ।
सोत्साहाः सर्वकार्येषु जाताश्चानन्दशालिनः ॥ ४५ ॥
अथ मत्प्रभरागेण वसंतः समुपस्थितः ।
छिंदन् जीर्णानि पत्राणि चिन्वन्नभिनवानि च ॥ ४६ ॥
आतपत्रं दधानोऽसौ प्रफुल्लेन्दीवरच्छलात् ।
प्रसूनैः स्वयशोमालां न्यधान्मूर्ध्नि स माधवः ॥ ४७ ॥
कोकिलालापवाचालं वनं यत्र विराजते ।
आम्रकोरकबाणैश्च हन्तुं वा कामिनां कुलम् ॥ ४८ ॥
प्रससार परागोऽपि दिक्षु सर्वासु यत्र वै ।
मन्ये कामठकेनेव क्षिप्तचूर्णो विमारितुम् ॥ ४९ ॥
पुष्पगंधैरिवाकृष्टा पंक्त्या भ्रमालिमालिका ।
वने भ्रमति मदेन धुंन्वना स्मरदंतिन ॥ ५ ॥
मदानिलो ववौ यत्र सुगन्धश्च सुशीतलः ।
येन मानधना सूत्र माननीभिः पराभवम् ॥ ५१ ॥
यत्राशोकतरू रेजे पुष्पवर्णपकलसकैः[1] ।
स्फुटितस्य हृदो मांसं पिंडो नूनं वियोगिनाम् ॥ ५२ ॥

1 कलत. ।

रेजुः किंशुकपुष्पाणि यथारक्तकज्जलीनि च ।
दग्धुं हृदिरहार्त्तानां चिताः मन्मथशिखा इव ॥ ५४ ॥
एवंविधे मधौ रम्ये कुमारः सह दारकैः ।
रम्यासु वनवीथीषु ययुः काऽपि (प्य) परस्परम् ॥ ५५ ॥
तत्र पौरजनाश्चापि रमंते सकलप्रजा ।
कृत्स्नोपवनवीथीषु क्रीडामारभतेप्सितम् ॥ ५६ ॥
पश्चात्स्नानार्थमाजग्मुः सर्वे तत्र जलाशये ।
स्नात्वाथ गन्तुकामास्ते बभूवुः स्वालयं प्रति ॥ ५७ ॥
संहतिस्तत्र संजाता मिथःसल्लापभाषणैः ।
अश्वं गजमथो यानं वेगादानाय चेतिर ॥ ५८ ॥
तत्र तूर्यनिक्वानैर्महान्कलकलोऽजनि ।
नवदुंदुभिनादैश्च भाभानंदविधायिभिः ॥ ५९ ॥
श्रुत्वा कोलाहलध्वानं विस्मयति स्म महागजः ।
विषमसंग्रामसूराख्यः पट्टेभी राजसंमतः ॥ ६० ॥
भित्वासौ मूलशालास्तंभमथत्र कामवान् ।
स्रवन्मदाविष्टभ्रमरालीविराजितः ॥ ६१ ॥
दुरासदो महामत्तो स बभूव निषादिनाम् ।
भीमश्चीत्कारनादैश्च भासितः स्वगणाग्रणी ॥ ६२ ॥
अंजनाद्रिसमो दन्ती चलत्कर्णप्रभंजनः ।
स्थूलकाय कृतांताभो नयापाशमपाश्रयत् ॥ ६३ ॥
दंतावलोऽथ दंताग्रैःखनन् पृथिवीतलम् ।
शुंडादंडेन तथोत्किरन् वारिसंचयम् ॥ ६४ ॥

१ चक्र इव ।

उच्चस्थान वनं सर्वं रम्यातिविभीषण ।
परिष्यन्दन् तरुम्मानि मूर्धाम्भूसोपितस्तत ॥ ६५ ॥
आम्रजम्बूमधूकीरनारंगनिकराञ्चितम् ।
तमालतालकंकोलिकन्दर्भार्मीभिराजितम् ॥ ६६ ॥
सल्लकीशाल्मलाभाभिः पिचुमन्दैरिहावनम् ।
द्राक्षावधफलजूरदाडिमीफलसम्भृतम् ॥ ६७ ॥
जातीचम्पककुन्दैश्च मुचकुन्दैः सुगंधिभिः ।
पाम्माराममल्लीभिः रमणीयं मनोरमम् ॥ ६८ ॥
नागवल्लीमहावल्लीपिल्लपकुमपल्लवैः ।
पल्लवितं नभोमार्गे भासंचारिद्रुमैरपि ॥ ६९ ॥
एलालवंगमालीनां फलैः पुष्पैरलंकृतम् ।
राजादनीनालिकेरपूगीफलसमन्वितम् ॥ ७० ॥
केकिकेकारवाकीर्णं कोकिलाकलनिस्वनः ।
किमत्र बहुनोक्तेन स्वार्म्यं मतिमद्भिरपि ॥ ७१ ॥
तत्सर्वं हेलया दन्ती बभञ्ज मदपरितः क्षणात् ।
यथा दुष्टवत् क्षोभैर्विषयैर्मक्षिणो मनः ॥ ७२ ॥
यतस्ततः पलायन्तस्तत्र केचिद्भयातुराः ।
धावरत्न समादाय न पुनः सन्मुखं ययुः ॥ ७३ ॥
कश्चिद्रामापरित्राण पर्याकुलितचेतसः ।
यथाधैर्य समालम्ब्य सावधानाः पदं ददुः ॥ ७४ ॥
मान्यमथ किमथारो पितपन्यो महा अपि ।
न समाः सन्मुखं गन्तुं गन्धमायान्तु दंतिनः ॥ ७५ ॥

१ भिन्नैः ।

दृष्ट्वा वीर्यं कुमारस्य भूपा विस्मयतां गताः ।
स्वासनस्यार्धभागे तं नीतवानथ नीतिवित् ॥ ८७ ॥
मूर्ध्न्यस्य मनाऽऽघ्राय स्मार्या कुर्वन् पुनः पुनः ।
पुष्पैरिव सद्रत्नैः पूजयामास भक्तितः ॥ ८८ ॥
धन्योऽसि त्वं महाभाग त्वया नागो वशीकृतः ।
साध्वी जिनमती धन्या यद्गर्भे त्वत्समाऽमनि ॥ ८९ ॥
अथ दुन्दुभिनादैस्तैः सार्द्धं नृपवर्गैर्वृतः ।
पुरं प्रवेशयामास दन्तिनः शिरसि स्थितम् ॥ ९० ॥
अत्यादराद्वशाच्चापि ताभ्यां नीतः स्वसद्मनि ।
पितृभ्यामर्चितः साक्षात्सन्मंगलपुरस्सरम् ॥ ९१ ॥
सिंहासने निवेश्याशु विनयानतमस्तकौ ।
पितरौ पृच्छतो भद्र यत्स्नेहार्द्रितचक्षुषौ ॥ ९२ ॥
कुत्र त्वं वै गतो वत्स निर्भयो गजयूथपम् ।
इति कश्चित्कुमारं तं स्पृशन्तौ मृदुपाणिना ॥ ९३ ॥
क्व ते पुत्र वपुः सौम्यं कदलीस्तम्भसन्निभम् ।
क्व गिरीन्द्रसमो नागो निर्जितस्तु कथं त्वया ॥ ९४ ॥
विस्मयस्य परां कोटिं सन्दधानौ स्वसद्मनि ।
तस्थतुर्यौ सुखं यावत्पश्यन्तौ तौ सुताननम् ॥ ९५ ॥
यस्मात् पुण्यविपाकाद्वै जम्बूस्वामिकुमारकः ।
मान्या राजसभामध्ये तत्पुण्यं क्रियतां बुधैः ॥ ९६ ॥

इति श्रीजम्बूस्वामिचरित्रे भगवच्छ्रीपश्चिमतीर्थंकरोपदेशानुसारि
स्याद्वादानवद्यगद्यपद्यविद्याविशारदपण्डितराजमल्लविरचिते
साधुपासासुतसाधुटोडरसमभ्यर्थिते जम्बूस्वामि-
मदोत्कटकेलिचरितवर्णनो नाम षष्ठः पर्व ।

अथ सप्तम पर्व ।



भवतु श्रेयसे नाथ श्रीसम्भवमुखोद्भवाः ।
श्रीसाधाः टादरस्यास्य साधुपासांगजस्य वे ॥१॥ इत्याशीर्वाद् ।
श्रेयांसं तीर्थकर्तारं हर्तारं दुःखसंतते ।
वासुपूज्यं च वन्देऽहं सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ १ ॥
अथैकदा समागत्य स्थित राज्ञि सुविष्टरे ।
आनमन्मौलिभूपालनिषण्णचरणाम्बुजे ॥ २ ॥
चलद्भिश्चारुसत्कावचामरालीविराजित ।
महामात्यादिराजीवराजन्यकसमन्वित ॥ ३ ॥
लीलया तत्समीपे च जम्बूस्वामिनि संस्थिते ।
निर्जिते तद्गुणकान्त्या भूपानां तेजसां चये ॥ ४ ॥
नभःक्रमागमत्मार्गादागत खचराधिपः ।
चपलोऽप्यात्मामितशोभिर्दिग्वलयं विभूषयन् ॥ ५ ॥
दिव्यं विमानमारूढो रणद्घंटाद्यलंकृतम् ।
व्योममार्गे तत स्थाप्य समुत्तीर्ण क्षणादिह ॥ ६ ॥
स्थितस्तावदीततोऽप्यग्रे राजानं भणितुं मति ।
प्रथमपादुर्दत्तं चापर्यं नमस्कारपुरस्सरम् ॥ ७ ॥
नाम्ना रत्नचूडांऽस्य राजते गिरिसत्तम ।
राजन तत्र वर्तेयत महाविद्याधरा नरा ॥ ८ ॥

१ इन्दुः ।

भूधरे तत्र तिष्ठामि सकलस्वभिरास्युतम् ।
नाम्ना व्योमगतिश्चाहमसहायपराक्रमः[1] ॥ ९ ॥
निर्मिताथ मया वार्ता या विश्वासदकारिणी ।
श्रोतव्या सा त्वया भूप कथ्यमाना मयाधुना ॥ १० ॥
अस्त्यन्यतो गिरीशानो नाम्ना वै मलयाचलः ।
तस्य दक्षिणदिग्भागे केरला पुरिहाख्यया ॥ ११ ॥
मृगांकस्तत्र भूपोऽस्ति यशस्वी च कलानिधिः ।
भामिनी तस्य नाम्नापि विद्यते मालती सता ॥ १२ ॥
सा स्वसा मम भो राजन् स्यात्श्रीमद्गुणमंडिता ।
कांचनामा सुतन्वंगी रोमराजीविराजिता ॥ १३ ॥
या विलासवती नाम्ना सुता स्यात्तनयोः शुभा ।
कंदर्पैकविलासा सा निर्मिता विधिनाधुना ॥ १४ ॥
आकर्णान्तविशालाक्षी पृथुपीनपयोधरा ।
संतप्तकनकच्छाया कांत्या कांतिः सूतावती ॥ १५ ॥
अथान्येद्युर्मृगांकाख्यः सीतैको विद्याधराधिपः ।
पृच्छति स्म मुनीशानं नभसो मूर्तिमानिव ॥ १६ ॥
कृपावारिनिधे स्वामिन् ब्रूहि मे संशयच्छिदे ।
अस्मत्पुत्र्याः पतिर्भावी भविता कोऽत्र भूतले ॥ १७ ॥
आकर्ण्येदं वचस्तथ्यमुवाच मुनिनायकः ।
साक्षयन्निव दिक्चक्रं मसरद्दशनांशुभिः ॥ १८ ॥
पुरे राजगृहे रम्ये श्रेणिकोऽस्ति महीपतिः ।
विद्याधरस्यास्त्वत्पुत्र्याः परिणेता भविष्यति ॥ १९ ॥

१ तोलक्रमः ।

श्रुत्वा मुनिवच पथ्यं मृगाङ्का दधौ प्रश्रयम् ।
ततस्तामन्यस्मै दातुं स नृपेक्षापराऽभवत् ॥ २० ॥
अथो विद्याधिनाथोऽस्ति रत्नचूडः समाख्यया ।
हंसद्वीपमस्फुर्वन् स्वमहिम्ना महौजसा ॥ २१ ॥
प्रार्थयामास सोऽभ्यर्थं कन्यां तां कमलाननाम् ।
मृगाङ्को न ददौ तस्मै मुनिवाक्यममर्षयन् ॥ २२ ॥
ततस्तेनातिरुष्टेन पट्टवैरेण कोपिना ।
स्वावमानं मन्यमानेन कृतं तस्य विरूपकम् ॥ २३ ॥
कृत्वा सैन्यं धनुःसज्जं विध्वस्तं तस्य पत्तनं ।
तेन पापात्मना तस्य चैत्यसद्मानि निघ्नता ॥ २४ ॥
सर्वोऽप्युद्वासितो देशस्तस्य यावान् समृद्धियुक् ।
धनधान्यसमाकीर्णग्रामश्रेणिविराजितः ॥ २५ ॥
उच्छिन्नानि वनान्यस्य दुर्गाण्यपि विनाशिता ।
आसकोल्लासमनामं सर्वस्वं भस्मसात्कृतम् ॥ २६ ॥
त्रस्तस्तत्रासतः सोऽपि मृगाङ्कः धर्मावती भिन ।
अधिदुर्गं समासीनः प्राणान् रक्षति यत्नतः ॥ २७ ॥
वृत्तान्तं सर्वमेतत्तमत्य विपतऽधुना ।
ज्ञानादन्यस्य का वक्ति पुरस्तात्किं भविष्यति ॥ २८ ॥
अथ तत्र मृगाङ्कोऽपि सावधानोऽस्य सर्वतः ।
निपात्यति स संग्रामे भों दिने दिने यथायथं ॥ २९ ॥
यथाऽस्य शामयमन्य सम्मुखस्थं पराभव ।
तर्हि प्राणांस्त्यजत्येष नान्यथा जीवनं वरं ॥ ३० ॥

१ मनाक् । २ विद्या यत्नेन । ३ पुरे ।

महतां न धनं प्राणाः किंतु मानधनं महत् ।
प्राणत्यागे यशस्तिष्ठेत् मानत्यागे कुतो यशः ॥ ३१ ॥
ये स्पृष्टारिबलं पूर्णं तूर्णं समास्तदाहवे ।
पलायंति विना युद्धं धिक् तानास्यमषीमसान् ॥ ३२ ॥
ये तु धैर्यं विधायाशु युद्धं कुर्वंति धीधनाः ।
मृतास्तत्रैव नो भग्ना धन्यास्ते हि यशस्विनः ॥ ३३ ॥
राजन् कुवचघोषस्त्वमहं गन्तुमुद्यमी ।
आवश्यकमिदं कार्यं विलंबोऽनुचितो मम ॥ ३४ ॥
तथाप्यालोक्य भावत्कं दर्शनं स्यात्सुदुर्लभम् ।
इयन्तं गन्तुं चापि स्थितोऽहं क्षणमात्रतः ॥ ३५ ॥
अतः स्थातुं क्षमं यावद्विमार्गे न मे मन ।
रामभामाप्राप्तयस्त्वाशु यथा गच्छामि वेगतः ॥ ३६ ॥
इत्युक्त्वा स नभोगामी त्वरितं गस्यात्समुत्पतः ।
जंबूस्वामीत्यपीवाच वचो विद्याधर प्रति ॥ ३७ ॥
तिष्ठ तिष्ठ क्षणं यावत्प्रयेत्यसौ नराधिपः ।
श्रेणिकोऽयं महासत्त्वो निर्मिताखिलबान्धवः ॥ ३८ ॥
चतुरंगबलोपेतो महाधैर्यो महामतिः ।
सप्तांगराज्यपूर्णांगस्तेजस्वी यशसां पद ॥ ३९ ॥
श्रुत्वा वचः कुमारोक्तं खगी विस्मितमानसः ।
अथादीर्घं समाधाय युक्तिपूर्वं यथाऽखिलं ॥ ४ ॥
युक्तमुक्तं त्वया वाल सामपर्योचितं हि यत् ।
परंस्येदमसमाधि युक्तस्याभासनिर्वचनं ॥ ४१ ॥

यथोमनस्तव दूरं तत्स्थानं तिष्ठतेऽधुना ।
मम गंतुं न शक्यते का कथा भीरुकर्मण ॥ ४२ ॥
अपि मृगाचरा यूयं ते भवा व्योमचारिणः ।
कथं साम्यं भवत्पाद् युष्माकं सह संगता ॥ ४३ ॥
यथार्भकः करस्फालैर्ग्रहीतुं जलसंस्थित ।
भवीच्छतीन्दुबिंब हि तथा युष्मत्समजल्पितम् ॥ ४४ ॥
अथवा (अथ) हास्यास्पद चैतद्दुत्प्राहुवामना यथा ।
प्रांशु धृतफल मावत् तथा स्यात्प्रयदुधम ॥ ४५ ॥
यदि कश्चिद्विषोपादास्यत् कनकाचलं (?) ।
तथय पतत नूनं युष्मदीया समुद्गतिः ॥ ४६ ॥
विना नावा पयानाय यथा कश्चिच्चिकीर्षति ।
रत्नभूम तथा जेतुं युष्मदीया मनोरथ ॥ ४७ ॥
दर्भिवत्स्यादिका भूमिरष्टान्तानां सरस्वत ।
तन विद्याधरणार्थैर्यथास्मप्रतिमावसं ॥ ४८ ॥
मौनीकृताय सवापि कुमारेण यशस्विना ।
वाग्दृष्टैर्यथा नत्य भांगिरष्टान्तकाथिदैः ॥ ४९ ॥
मा यद् विद्यापते वापमित्यमप्रातपूर्विणां ।
श्रुत्वे चेयमथायाद्दा वो यस्यन्या वमापमं ॥ ५० ॥
सणाभिरुत्तरा जानः गणा व्योमगतिस्तदा ।
मूर्त्तिभूत इवाग्रस्थी दर्शितुं तत्पराक्रमम् ॥ ५१ ॥
भोजिरस्मन्य धुम्पा मार्द्दपा।-मवन्नृप ।
शीघ्रंद दुर्पं कृत्यं किंचिच्छाकुम्पयानतः ॥ ५२ ॥

भूयोभूयः परामृश्य खेदमाप धराधिपः ।
किंचित्कर्तुं न शक्नोति दुर्घटे तत्र कर्मणि ॥ ५३ ॥
नापि तत्र गमस्तूर्णं न क्षमो दातुमुत्तरम् ।
युग्मकाष्ठाधिरूढं वा राज्ञो दोलायते मनः ॥ ५४ ॥
तस्मिन्नवसरे धीरो जम्बूस्वामिकुमारकः ।
ऊचे साम्नैव सानंदं गंभीरतरया गिरा ॥ ५५ ॥
स्वामिन्नेतत्क्रियत्कार्यं त्वत्प्रसादात् प्रसिद्ध्यति ।
आस्तां दूरे सहस्रांशुस्तत्र्यंशोऽपि तमोपहः ॥ ५६ ॥
कार्यस्य साधनायालं मादृशोऽपि भविष्यति ।
किं पुनर्युष्मदीया सा सन्निधता सर्वतस्त्वमूः ॥ ५७ ॥
उक्तं जम्बूकुमारेण श्रुत्वानंदमधीशिवत् ।
श्रेणिकः प्रत्यपादि स्म मोच तस्य सदुक्तिवत् ॥ ५८ ॥
तत्प्रोच्य मराजर्द्धं सानंदो मगधाधिपः ।
एवं वैश्याभ्यधर्मस्य मर्यादा स्यादविच्छिन्ना ॥ ५९ ॥
आस्यजन्म पुनर्जातमिव मन्यामहे वयं ।
कन्यालाभः पदार्थेषु लाभिषेषु यशस्वयः ॥ ६ ॥
क्षात्रधर्मो च त्वया धीर फलानां हि परंपरा ।
गंतव्यं त्वरितं तत्र नाथ श्रेयो विलंबने ॥ ६१ ॥
आदिष्टवः कुमारोऽसौ भूपेनानन्दशालिना ।
असहायस्तथैकाकी निर्भीको गंतुमुद्यतः ॥ ६२ ॥
अथीमाप खगाधीशो नाम्ना व्योमगति प्रति ।
जम्बूस्वामिकुमारोऽसावुत्सुको वीरकर्मणि ॥ ६३ ॥

१ कमसदीका ।

मो खगेन्द्र विमानेऽस्मिन्नात्मीये मां निवेशय ।
इतो नयस्व तत्राशु यत्रास्ते रत्नचूलक ॥ ६४ ॥
श्रुत्वा विभास्वदं वाक्यमिदमाह खगाधिप ।
गतेनापि त्वया तत्र कर्तव्यं किमपार्थक ॥ ६५ ॥
तावद्दर्पं स्वसत्त्वस्यधापत्य मृगशावक ।
यावन्नाभिमुखं गमन् क्रुद्धो नायाति केसरी ॥ ६६ ॥
तावदसुः परं सौम्ये लसन्सौदर्यराजित ।
यावद्दंष्ट्राकरालोऽसौ कृतान्तो नात्तुमिच्छति ॥ ६७ ॥
तावत्तृणगणाः सर्वे सन्त्वरण्येषु शाड्वलाः ।
यावन्न स्यादुज्ज्वलज्ज्वालः प्रचण्डो दावपावक ॥ ६८ ॥
तावदाडम्बरं धत्ते सर्वोऽप्यभ्रगणोऽम्बरे ।
यावत्प्रचण्डानिलः कोऽपि न वायादतिदुर्धरः ॥ ६९ ॥
तावदायुः समाराध्यं यत्नः संघटने भय ।
यावद्धिंसा न पापस्य नोदयस्य गरीयस ॥ ७० ॥
तावद्भ्रमयते साक्षाद्धिर्मर्म जैनधर्मवत् ।
यावत्पापिस्यासाणां नापतिममरं मन ॥ ७१ ॥
तावन्मूलगुणाः सर्वे संति धैर्यादिधायिन ।
यावद्दर्पांसी न रापाग्निभस्मसात्कुरुते क्षणात् ॥ ७२ ॥
गौरवं तावदास्तु मानिन कनकाद्रिवत् ।
यावन्न भाषते दैन्यादेहीति ह्री दुरक्षरां ॥ ७३ ॥
सर्वं बन्धन तावत्सुंदर वाम्यमाश्रित ।
रत्नप्रमस्य वाणैस्त्वं यावन्नो जर्जरीकृत ॥ ७४ ॥

इति श्वापदं वाक्यं शृण्वन् भूपा जगाद स ।
भेता:मंघृसिता मयियथाय्र मज्यमिव्यति ॥ ७५ ॥
मां मां स्वामगर्ण शाद्य यावद्(दि)र्थ्य पद्रावन ।
यस्करिष्यामि बालोऽहं तस्यं द्रक्ष्यसि सांमत ॥ ७६ ॥
कुर्वन्ति न वदंस्त्यय कुर्वन्ति च वदति च ।
कस्मादुत्तमसप्याल्नेऽधमाऽकुर्वन् कम्पपि ॥ ७७ ॥
मुक्तमुक्ते कुमारेण श्रुत्वेदं मगधाधिप ।
मर्वाव मति विधाय्रं ज्ञानलक्ष्मींस्पसला ॥ ७८ ॥
यदुक्तं भवता स्वामधारिभम समसत ।
एकाकी तत्र जाताऽपि बालोऽयं किं करिष्यसि ॥ ७९ ॥
स नै पस सपक्षाऽपि प्रतिपक्षरूपिताऽस्त्रिस ।
सगेन ना (न) हतः सिंहो हतश्चाएापदेन सः ॥ ८० ॥
हतं यन जगत्सव हत साऽपि मिनयमः ।
जम्मेनापनर्म नीता सर्वदा दयपावकः ॥ ८१ ॥
वायु मवान्मयम न गिरीन्द्रं महामर्त ।
मिथ्याज्ञानं भवन्ये स्तन्यां थापकारवत् ॥ ८२ ॥
न च स्या मणिशाल यथा सूर्योदये तमः ।
अथ पापिन्कटाक्षेण हता मन्मयशालिनः ॥ ८३ ॥
या न कौमाभिना दग्ध सघः कर्मोदपाद्य ।
कश्चिन्कर्मधानम साऽपि नीतः क्षांति समांमसा ॥ ८४ ॥
ढीलामाश्रय मीर्येण मचसल्यहितंकरी ।
मिलया हंसमानाऽपि पूज्यः स्यान्मुरनायकैः ॥ ८५ ॥

सर्वकाऽप्यवरस्थायी प्रकृतेस्तेजसां चय ।
तमस्तोमं विधुन्वानो नादेति किमु भानुमान् ॥ ८६ ॥
मूर्ख च वृद्धवाक्येषु यत्परीक्षासम वचः ।
य कार्यसाधनायालमेकोऽपि च लक्षायते ॥ ८७ ॥
इत्यादिकां कथामासां रचितां श्रेणिकेन वै ।
धारयामास वा मूर्ध्नि सादराज्जम स्वागम' ॥ ८८ ॥
आज्ञया स्थापयामास खगा दिव्य विमानके ।
जम्बूस्वामिकुमार तमनौपम्यबलान्वितं ॥ ८९ ॥
व्योममार्गो तदा याने गच्छति स्म त्वरान्वितं ।
श्रीममापप्सित स्थान यथा वेगात्मनो जव' ॥ ९० ॥
अयानु त स भूपाऽपि मतस्थं भणिकस्तदा ।
चतुरगचम्वापतः सार्धं सर्वमटाद्भटै' ॥ ९१ ॥
भर्यः प्रस्थानशंसिन्यो नेदुरामद्रनि'स्वना' ।
प्रकाण्डस्वनितानकामातन्वानाः शिखंडिनां ॥ ९२ ॥
चमतां रयचभाणां चीत्कारैर्यरपिवे ।
बृंहितैश्च गजेन्द्राणां शब्दाद्वैत तदाभवत् ॥ ९३ ॥
षडंगबलसामग्र्या सपम' पार्थिवरमा ।
प्रतस्थे श्रेणिकः भूपा रत्नचूर्णामिगपिया ॥ ९४ ॥
प्रदान् गजघटाघंषा रेम स अपचम्न ।
गिरिणामिव संपात' सधारी सदपानिभि ॥ ९५ ॥
'स्पन्दनस्यन्दनमासारमिव भूभिषद्विषैः ।
प्रतस्थ स्यन्दिवर्षं ऊर्मैरिव सनिभ्रर ॥ ९६ ॥

१ च-न्दु। २ न्ना।

मयस्तंबेरमा रेजुस्तुंगाः भृंगारितांगकाः ।
सांद्रसांध्यातपाक्रांतास्पर्वता इव भूधरा ॥ ९७ ॥
चमूमतंगमा रेजुः सज्जाः सज्जयकेतनाः ।
कुसमैक्षा इवायाताः भयाः स्वपक्षमर्दने ॥ ९८ ॥
गमस्कंधगता रेजुर्दुर्मेता विश्वतोमुखाः ।
प्रदीपोद्गतनेपथ्या दर्पाः संदीपिता इव ॥ ९९ ॥
कौसेयैर्वैर्निघातोग्रधाराग्रैः सादिनो बभुः ।
मूर्तीसूय सुलोपाग्रसवैर्या स्वैः पराक्रमैः ॥ १०० ॥
धन्विनः शुरनाराचसंभृतेषुधयो बभुः ।
घनस्थाया महाधाराकोदरस्थैरिवाशिभिः ॥ १०१ ॥
रथिनो रथकृत्यासु संभृतोचितवेवयः ।
संग्रामभाषितरणे भास्थिता नायिका इव ॥ १०२ ॥
भटा हस्त्युरसं भेजुः सन्निर्वर्तद्गुन्दुकाः ।
समुत्खातनिखातासिपाणयः पदरक्षणैः ॥ १०३ ॥
भस्फुरत्स्फुरदच्छौघा भटाः संतर्पिता परे ।
औत्पातिका इवानीका सोल्का मेघाः समुस्थिता ॥ १ ४ ॥
करवालं करासाग्रं करे कृत्वाऽभयोऽपरा ।
पश्यन् मुखरसं वासिन् स्वसौंदर्यं परिचालितान् ॥ १०५ ॥
करार्गं विधृतं खड्गं तुलयत्कोऽप्यभात्कुठा ।
ममिमिस्तुरिवानेन स्वामीसत्कारगौरवं ॥ १०६ ॥
महायुक्यपदानां साधनानि भवस्थिरे ।
पादाविरास्थिरग्रीवरथकम्पापरिच्छिदैः ॥ १०७ ॥

---

१ वनहस्ती । २ घाते । ३ बनारसः । ४ तूणीरः । ५ तनयनि । ६ शिर स्मन्ते इति शिरस्त्राः, तत्तुल्यका कवचाः ।

चमूर्मुकुन्दवदास्ते रत्नांशुद्युम्नमौलयः ।
सलील लोकपालानामसा भुवमिवागता ॥ १०८ ॥
परिवेष्ट्य नैरन्तर्ये पार्थिवाः पृथिवीश्वरं ।
दूरात्स्वस्वसामग्री दर्शयन्ता यथायथम् ॥ १०९ ॥
भूरेणवस्तदाश्वीयखुरोद्धृताः स्वर्गिणः ।
क्षणविश्रितसंमिश्रा मपलस्कुमरांगणा ॥ ११० ॥
समुद्रन्दरसमायैर्मदाशार्पर्पतीश्वराः ।
मपाणका धृतिं प्रापुर्मनजल्पैरपीदृशै ॥ १११ ॥
विरूपकमिदं युद्धमारब्ध मगधश्विना ।
ऐश्वर्यमदुर्वाराः स्वैरिणः प्रमदा यथा ॥ ११२ ॥
पुर पादानमन्वीयं रथकट्याधरास्थितं ।
क्षमाभिरीयुरावहृष्य सपताक रथं प्रभाः ॥ ११३ ॥
वनं धनैर्जनैर्मुक्ता विरेजु पुरवीथयः ।
सङ्घाङ्घ्रिरिव वेलोर्ध्वमहाम्पसीरमूमयः ॥ ११४ ॥
पुरांगनाभिरुन्मुक्ता सुमनाऽञ्जसपाऽप्यनन ।
मोपवातायनस्थाभिर्दृष्टिपातै मम प्रभो ॥ ११५ ॥
पुरा धीरः पुरा पथारमम च विधिनाधुना ॥
दृष्टदृष्टिपर्यंतमसम्भ्यमिव तद्भ्रमम् ॥ ११६ ॥
किमिदं प्रमपर्सामात्सुभितं वारिधमर्म ।
किमुत पिञ्जगरमगाः मस्पयाग्र विमेपल ॥ ११७ ॥
कपिद्गनापूर्वानस्यपंद्गशानिनिम्नाधिनान ।
स्वपनागानरंगस्थान विमरान मधुरस्म ॥ ११८ ॥

१ कम्पर्दनेक ।

क्वचिदिक्षुवणमूलेषु निर्लीनमधुपायसी ।
विलोक्य सस्यकर्त्रीनां सस्मार प्रियपीपितां ॥ ११९ ॥
पच्छायासक्तमोस्तुंगान् सर्वसंभोग्यसंपद॰ ।
मार्गद्रुमान् समद्राक्षीत्स नृपानजुकुर्वतः ॥ १२० ॥
सरसीरम्बुनाऽपश्यत् सरागरजसा ततः ।
सुवर्णकुड्मिमावृक्ता मधुरप्रसुरदि सन्नतीः (?) ॥ १२१ ॥
पक्षरणुभिरारब्धे दोषा मन्ये नमस्पर्शी ।
करुणां स्वंवीं वीक्ष्य चक्र चक्रवाककामिनी ॥ १२२ ॥
गर्वांगणानयापश्यद्राम्यद्वारण्यचारिण॰ ।
सीरमभानिवागस्तं सरत्सीरघ्नवांकितान् ॥ १२३ ॥
सौरमेयान् समुंगाग्रसमुत्खातवस्यधातुमान् ।
मृणालानि पक्षासीम किरणान्यस्य दुर्मदान् ॥ १२४ ॥
वात्सकं सीरसंतोपान्वि निर्मलकविग्रहम् ।
सोऽपश्यचापलस्यन परां कोटिं कृतास्पदाम् ॥ १२५ ॥
ध्यमति सुवमामाहुमिवात्मलमिवानतान् ।
सुपक्वकपिसानन्नं कलमक्षेत्रमैसत ॥ १२६ ॥
नौद्दस्य कर्णयोगीति नृणां वक्तुमिवोधतं ।
पश्यति स्म स मृणाली रामन्यकपारिवृतः ॥ १२७ ॥
सावतसितनीलाम्भाः कर्मैरणुभितस्तनीः ।
इक्षुदंडभृती पश्यत् स्पसीस्यो कुर्वतीः स्त्रियः ॥ १२८ ॥
हारिगीतस्वनाकृष्टर्घोषिता हंसमंडलैः ।
शालिगोप्यो दृशोरस्य मुदं वितुर्मगृहिकाः ॥ १२९ ॥

१ हैमवर्णैरभिः । २ रणमान् । ३ पक्षेण मीयन्तु मीलमारव्ययीति पतयामर्ह ।

सुगपिमुत्तनिभ्भासायुर्मरराफुर्लीकृता ।
मनाऽस्य मधु श्वालीनां पाल्मिका कुम्भयामिका ॥ १३० ॥
मध्यस्थाऽपि यदा भीमं वताप तरणिर्भृष ।
नूनं भीग्रमतापानां माध्यस्थ्यमपि तापकं ॥ १३१ ॥
नृपांगनाङ्गुम्बाम्भानि घर्मबिंदुभिराबभु ।
मुक्ताफलैर्ब्रवीपूर्वैरिवाकल्कविभूषणं ॥ १३२ ॥
महामवपुषा यस्माद्दुर्दर्पन एुरानिव ।
महारस्का स्फुरत्माषा द्रुतं जग्मुर्महारया ॥ १३३ ॥
अभूतपूर्वमुद्भूतमनिभ्यानषम्भ्वनिम् ।
श्रुत्वा बलवदूभेत्युस्निर्यथा वनगाचरा ॥ १३४ ॥
यस्पामादिमा निर्यद्भम्भसामाम्नानिराद् ।
मुग्मः सुविमक्ताग मुरम इव रूपण ॥ १३५ ॥
मवोपमृमनादाम्यं म्यादृग्गं किम केसरी ।
न भिऽम्यपमर्थय किंचित्पचनभीव दनयन् ॥ १३६ ॥
मत्भी रथमादृष्यमुन्मर्त्यापानिम पनन् ।
म्य म्य पत्र पदे पृष्टरमूमिमायुर्वांतमान् ॥ १३७ ॥
पापाण भिग्विनर्त्पा गविनामाभिनत्तण ।
गुरीं ग्यामावनि भैन्यदृत्त माहिपा विर्मा ॥ १३८ ॥
पमृग्भ (घर ?) वाद्भूनसाप्पमा मुद्रका पृगाः ।
स्मिम्ना पंसमानांगा महारम्प सुग ?)भयन ॥ १३९ ॥
पगाहागनि मुक्त्वा पगाहा मुक्तसन्नमा ।
विनमुरिम्फुरयणाम्पमूर्तपादिना नुन ॥ १४० ॥

१ मध्य २ म्पुष२।

१

इति मत्वा धनस्येव प्राणा[1] प्रयाचिता भृशम् ।
मत्वासर्पि चिराद्दीर्घः सैन्यसार्थ मर्सग्रुम्मि ॥ १४१ ॥
ततोऽपि दूरमुल्लङ्घ्य सोऽध्वानं पृथुलावृतः ।
रैवासरित्तटे धीरो विश्राममकरोत्कृती ॥ १४२ ॥
ततस्तां च समुत्तीर्य प्रयस्यै करलां प्रति ।
विशश्राम कियत्काले नाम्ना कुरलभूधर ॥ १४३ ॥
पूजयामास भूमीशस्तत्र बिंबं जिनेशिन ।
मुनीनपि महाभक्त्या तत्र मस्यात्ममुपतः ॥ १४४ ॥
कियद्दूरे ततो गत्वाऽविमुच्यद्गीमगधाधिपः ।
अध्वश्रमापरोधाय सेनासार्मतर्सयुतः ॥ १४५ ॥
अथ तावद्द्रुतं प्राप केरलां नगरीं प्रति ।
जम्बूस्वामिकुमारोऽसौ नीतो विद्याधरेण च ॥ १४६ ॥
किमिदं भो खगाधीश महाक्षोभणाकुलाकुलम् ।
साक्षात्कारी स्वमेवासि ब्रूहि नः संशयच्छिदे ॥ १४७ ॥
ततोऽभ्यादीभमाणापी कुमारं प्रति प्रश्रयात् ।
सेयं सेना स्थिता यस्य रत्नचूलस्य तद्द्विपः ॥ १४८ ॥
यो मयाऽभाषि विद्याभृत् पूर्वं सपारिनाशकृत् ।
कन्यायाश्चापरामासमनर्मर्गमन्योऽस्ति रोषवान् ॥ १४९ ॥
यद्वासितस्तु येनायं दैवः सर्वोऽपि कोपतः ।
मृगांको यत्रपात्रीता चुमसाभिरूप विशुधि ॥ १५० ॥
अभग्नो निर्जिताशेषप्रद्योतोऽयं खगेश्वरः ।
विद्याधराधिनाथैस्तैः संसव्यचरणांबुजः ॥ १५१ ॥

१ प्रेम्णा ।

खगादवद्यः श्रुत्वा कुमारो विस्मिताऽभवत् ।
यथा मय्यामितं वस जग्राम जलयागम ॥ १५२ ॥
रक्ष रक्ष विमानं भो यावद्व्योमगते क्षणात् ।
यावता रत्नचूडस्य द्रक्ष्यामि समयुद्धतम् ॥ १५३ ॥
ततो विमानमुत्सृज्य सप्रसन्नापसीमिनान् ।
पप्यमितस्तत्र सैन्यं कौतुकेन कुतूहली ॥ १५४ ॥
दर्शं दर्शं कुमारं तं सुंदर मारसनिभम् ।
जजल्पुश्चकित किंचित् विपक्षसैनिका मथः ॥ १५५ ॥
अहो देवाधिनाथोऽप्यमायाता लीलया स्वतः ।
दानवाऽप्यधिनाथो वा कामदेवोऽप्यवागत ॥ १५६ ॥
द्रष्टुं वा सैन्यमस्माकमागाम मथापिनि ।
अथ कश्चिन्महाभागो सम्भीवान् किं वणिक्पति ॥ १५७ ॥
सवितुं रत्नचूडस्य पददंष्ट्र मगाऽथवा ।
माव्यमात्सरगव्यस्य सरसहायपवित्रा किमु ॥ १५८ ॥
अथ कश्चिन्महीपाम्य दर्द दालुविवागम ।
जीवनस्य कृत व्याजादोपाद् गौरमुत्तमम् ॥ १५९ ॥
अथ वर्धिवद्धमानश्री धूर्तो वेषधरा नरः ।
मायद्रूप्य यायाम्य पाम्पागिनिरंभक ॥ १६० ॥
एवं नमस्त्वर्मीयु नानाजालाय यदम्भारि ।
जम्बूस्वामिकुमाराग्गो गनम्नगानि क्षणात् ॥ १६१ ॥
मधाराधग्न निर्भीको र के द्राग्रामकारय ।
मर्त्यै मम नौत्वाशु स्वगामाय निवदय ॥ १६२ ॥

भद्र श्रुत्वा मृगांकेन पाठयित्वाथ प्रेषितः ।
तत्सर्वं वक्तुमिच्छामि यस्य साम्प्रतं मया ॥ १६३ ॥
श्रुत्वा दत्तवरा द्वाःस्थस्तस्यास्थाने गतो जवात् ।
भर्तुं नत्वोत्तमांगेन प्राप्तावसरं विचक्षणः ॥ १६४ ॥
देव कश्चिच्चरो वाग्मी त्वद्द्वारि स्थितवानिह ।
वक्तुमिच्छति सान्येव पुण्यस्तद्दर्शनात्सुख ॥ १६५ ॥
श्रुत्वा रत्नशिखश्चापि तद्वच श्रुतिपेशल ।
मंक्षु मयमप स्वं (?) मनितपूर्वं मत्सरी खगः ॥ १६६ ॥
आज्ञामादाय द्वाःस्थेन तत्समीपं प्रवेशितः ।
जंबूस्वामिकुमारास्यो ज्वलत्कोत्या वपुश्छविः ॥ १६७ ॥
प्रविष्ट स दिदीपे वा तिग्मांशुरिव भूतले ।
सर्वे वेमः खगेशानां तिरस्कुर्वन् स्वकांतिभिः ॥ १६८ ॥
दृष्ट्वा त रत्नचूलोऽस्य क्षण विस्मयमाप सः ।
कथं संभावि दूतत्वमस्य कांतिमतः स्वतः ॥ १६९ ॥
यत्किंचिद्धुचितं नाम नमस्काराक्रियादिकम् ।
न कृतं चाटु वाक्यं वा स्वीयते तन स्वभवत् ॥ १७० ॥
नूनं कश्चिदपूर्वोऽयं यथा वा मानवोऽथवा ।
परीक्षां कर्तुमायातो मद्वलस्यापि गौरवात् ॥ १७१ ॥
चिंतयन्निति यमस्थ रत्नचूलः कुमारकम् ।
भ्रामयस्त्वं कुतो दक्षास्तिमर्थं मम सन्निधौ ॥ १७२ ॥
श्रुत्वाथोपसकुमारस्य रत्नचूड खगं प्रति ।
नीतिमार्गे समाधिस्य त्वां विनोपयितुं जवात् ॥ १७३ ॥

१ धीत्रे ।

स्त्वं नहीति दुराग्रहमिहामुत्र च दुःखदम् ।
भयनरकदं स्वर्गार्थाय महादुर्गतिकारणम् ॥ १७४ ॥
सन्ति पापिसहस्राणि सुलभानि पदे पदे ।
तदानर्थेन किं साध्यं नेति विचार्याऽधुना वद ॥ १७५ ॥
अथ चेद्बलसामर्थ्यान्मात्सर्यं वहसि ध्रुवं ।
इदमत्रविश्वासार्थं श्रूयतऽस्मद्वचादतम् ॥ १७६ ॥
यतश्चास्मिन् भवावर्ते जंतवः स्वकर्मशालिनः ।
विधत्त पदकोऽमृतं पर्यटन्ति यथायथम् ॥ १७७ ॥
कर्म नानाविधं तत्र विविधरसपाककम् ।
तत्स्वरूपमजानाना जीवा दुःखेन स्मृता ॥ १७८ ॥
उक्तं च—
" असंख्यनक्रैर्भविनम्यमाया ह्रिदयारिवृन्दपरिगिता ।
मनीश्वरा मंत्ररंतं पियान महस्य कार्योऽस्विति मात्स्वार्गी " ॥१॥
"विभर्ति मृत्पात्रं गताऽपि यासा नित्यं शिर पीडति नाम्य माय ।
तथापि याम्या मयकामवन्त्या कृपा स्वयं सम्यग् इत्यवार्गी " ॥२॥
धर्मं मत्वाऽपि मन्त्राय गर्भे पापन्यमन्यतः ।
तस्मात्परस्मभन्याऽन्ति संसारस्थिरणी स्थिति ॥ १७९ ॥
न चाऽपि विनर्यामूर्त्वा निष्पन्नपूर्वैर्मुखित ।
गेहमात्म जीवानां मयाः ययपरायणान् ॥ १८० ॥
स्वनृप स्वर्गार्थाय मन्त्रियापरा भव ।
धर्मिणाऽपुन्यपारूढाः क्षणात्मना समाप्तिन ॥ १८१ ॥

१ धर्मध्यानैश्वर्यो भट्ट ध्यान २ १ १ ...।

यथा दर्पसमावेशाच्छूर्पति रावणादय[1] ।
भूत्वा चाभापदप्रभाजो मृत्वा या दुर्गतिं ययुः ॥ १८२ ॥
इयं कन्या ददावाद्यौ श्रेणिकाय महीभृते ।
भवतेऽद्य कथं दातुं सोऽपिता दुर्यशोभयात् ॥ १८३ ॥
न चार्यं क्षात्रधर्मोऽस्ति संगरायसपलायनम् ।
जीवनस्य कृते धीमान् कः पिबेदुर्यशोविषम् ॥ १८४ ॥
तत्प्रसीद खगाधीश प्रमादं मा विधेहि भोः ।
गर्हितं वचिद वाक्ये वक्तव्यं न त्वया क्वचित् ॥ १८५ ॥
इति सूक्तिसुधाःपुष्पैर्गुम्फितां चातिशीतलाम् ।
मालामुष्णतरां मेने विपरीत खगस्तदा ॥ १८६ ॥
ततस्तामसजः क्रोधाग्निविस्फुरिताधरः ।
ज्वलत्कोपानलज्वालां खगो वाचमुदीरयत् ॥ १८७ ॥
दूतमन्योऽसि रे बाल यस्त्वमभ्यागतो गृहे ।
अवध्योऽसि तथा नान्या गतिस्त्वादृक् शठस्य वै ॥ १८८ ॥
मत्वाऽभेऽनुचितं वाक्यं विरुद्धं वैरवर्धनम् ।
यद्भ्रम लज्जसे दूत स्वामिकार्यविनाशकृत् ॥ १८९ ॥
वाच्यावाच्यं न वेत्सि त्वं न वेत्सि च बलाबलम् ।
केवलं वावदूकोऽसि धाष्टर्ये (वै?) नाट्यभिव ॥ १९० ॥
भानुप्रकाशितुं नालं यथा घूकोऽपि कौशिकः ।
वाचालस्त्वं तथा दूत नालं वस्तुमिदं वचः ॥ १९१ ॥
नीरक्तः किमु हैमाद्रिं भेत्तुमुत्सहते शठः ।
मृगाङ्कः श्रेणिकौ नालं मामाराधयितुं युधि ॥ १९२ ॥

1 पृच्छरस ।

अथ विद्याधरा दूत श्रेणिका भूमिगोचरः ।
आगत्यार्थेऽस्य सामर्थ्ये तुल्यता न कदाचन ॥ १९३ ॥
आस्फालनादहंतेनाल सत्त्व सार्थयमी भव ।
मया सार्धं युधिस्थैर्य स सर्वोऽप्यापातु वेगतः ॥ १९४ ॥
इत्युक्त्वा रत्नचूडः स स्थितो निभृतमानसः ।
समुद्र इव गम्भीरो निस्तरंगोऽप्यनाकुलः ॥ १९५ ॥
अथ निर्घोषवद्वाक्यमूचे जम्बूकुमारकः ।
घनसदननापतत्पंडो दोर्दंडविक्रमः ॥ १९६ ॥
रत्नचूल खगाधीश यत्त्वयार्थं समस्मरात् ।
दर्पमात्रमदं मन्ये तत्सर्वं त्वदुपार्जितम् ॥ १९७ ॥
यस्मात्त्वाऽपि विद्याभृद्गना भूगोचरेण स ।
रायवेण समादेव युद्धता सह सैन्यपैः ॥ १९८ ॥
मायसस्यापि विद्यत विपक्षमित्यर्थमनसा ।
साऽपि जर्जरिता यावीरहा भूयो पलायित ॥ १९९ ॥
आरक्ष्येदं यथान्याय्य जागरयन् मेन च ।
परिलाल्यद्विपानाद्य मुग्धानामभिनन्दना भग ॥ २०० ॥
मनस्वीर्भ्रमारभ्या जम्बूस्वामी कथान्वितः ।
मृगराजाननर्हाश गर्जे कुंभादिपि क्षिपः ॥ २०१ ॥
यावदेतु कुमारोऽयं यथाम्याशगमनमुचं ।
गम्भीरमूर्द्धं कुमारेण नीमाम्ये ययमदिरम् ॥ २०२ ॥
गजस्यापि पृष्टस्य मार्गमः स्थान्यतोरः ।
पश्चाद्ये कुमारः स्यासरन्ना पश्चात्य ॥ २०३ ॥

कियत्कालं कुमारेण योद्धारो बलशालिनः ।
आतिथ्यं यमगेहस्य नीता दोर्दण्डविक्रमैः ॥ २०४ ॥
पौरुषं चरितुमाशक्तैरारादसिसहायकैः ।
अथ येन क्षिमप्यस्तैर्मृतस्यामरणैरिव ॥ २०५ ॥
अथ व्योमगतिर्ज्ञात्वा द्वौ मिथो योद्धुमुद्यतौ ।
कुमारस्यार्पयामास कृपाणं निशितं स्वतः ॥ २०६ ॥
अथावोचत्कुमारं स नाम्नाकाशमतिस्तदा ।
अधिरुह्य विमानं मे पातयारिकुलं महत् ॥ २०७ ॥
श्रुतं तेन कुमारेण वाचा क्षणेन संस्थितम् ।
न स्थितं भुविरङ्कस्य वाक्यं चापि सगोऽस्थितम् ॥ २०८ ॥
युद्धेन स्थिरेणापि किं किल प्राणरक्षया ।
भवनामावेव नूनमस्ति चेत्पुण्यवद्वपुः ॥ २०९ ॥
उक्तं हि—
" ब्रह्मचारी(?) तृणं नारी शूरस्य मरणं तृणम् ।
दातुश्चापि तृणं लक्ष्मी निस्पृहस्य तृणं जगत् " ॥ २१० ॥
दिदीपेऽथ वरो तस्य हस्ते खड्गलता तदा ।
दारितारिपक्षैर्लिप्ता यमजिह्वेव जित्वरी ॥ २११ ॥
यत्र यत्राभ्यहार्षं स खड्गपाणिः कुमारकः ।
तत्रारिमस्तकस्तोमो न्यपतद्भुवि वेगतः ॥ २१२ ॥
असिद्वन्द्वमरापार्थं कुर्वन्तोऽनुकुमारकम् ।
सर्वे निरर्थका जाता रत्नचूलस्य सैनिकाः ॥ २१३ ॥

---

१ युद्धे ।

मन्मथायस्य सम्यात्र रामाखाऽपि न भिद्यते ।
निर्जितस्मरसैन्यपु किमपाङ्गपातैरपि ॥ २१४ ॥
युद्धं कुर्वेति यथास्मिन् सावधानतयाहव ।
स्यात् सत्पुरतः काऽपि न मनाक् भयावह ॥ २१५ ॥
यथा तिग्मकरश्चैव हंति संतमस जवात् ।
समतापस्तथा साऽपि जयान रिपुसंहतिम् ॥ २१६ ॥
अथावसरे दूतास्तनचिपम चारिणा ।
मृगांकस्य चरणाग्रे गत्वा तत्र निवेदितम् ॥ २१७ ॥
देव कश्चित्समायाता भवत्पुण्यविपाकतः ।
त्वत्सैन्यमहारण्य ज्वलदावानलोपमः ॥ २१८ ॥
अधुना युद्धं करोत्येष निभृत सर्पति स्थित ।
हंत मूनस्ति (स्मनति) नारीणां दृजयाऽप्यविग्रह ॥ २१९ ॥
स वपुस्तावर्णयाम्य भिन्ना या पूर्वजन्मनः ।
मन्मथमाननापि त्वद्दृश(?) मूर्तिमानिव ॥ २२० ॥
अथवा धनिकस्याय कश्चिद्वीराग्रणीभट. ।
तस्यादेवन्नादेन सार्द्ध वीरः समागमत् ॥ २२१ ॥
यथम्युक्तः चरणेन्य कणागायस्ता गते ।
रोमांचितो मृगांकाऽभूद्रपूर्णमिव विधित ॥ २२२ ॥
समम्पूर्ण [illegible] समा भूत्वरतिर्मं मयम् ।
पान्नाभरणमानपुदार्दर्श मर्गायसि ॥ २२३ ॥
मेदः संग्रामयम्म नामनान्मृगाम्यमणः ।
हन पुदम्य मर्गान्ये निमगाम पुराह्नरि ॥ २२४ ॥

१ म्यर्थेन

ततो दुंदुभिनिर्घोषै रत्नचूलोऽप्यनिद्रितः ।
ज्वलितः कोपाग्निना योद्धुं कृतांतः कोपितः किमु ।
अथ द्वाभ्यां च सैनाभ्यामारब्धं युद्धमुल्बणम् ।
हाहाकारकरं रौद्रं कृतभीषणनिःस्वनम् ॥ २२६ ॥
दंतिनो दंतिभिः सार्धमश्वैरश्वा रथै रथाः ।
पदातयो युयुधुः सर्वे खगाश्चापि खगैः[1] समम् ॥ २२७ ॥
यावान्सर्वोऽपि संग्रामो यावद्गातस्तवानघः ।
भास्वान् सहस्रैर्न तावदाप्नुवेऽस्तं समा चयम् ॥ २२८ ॥
क्वचिच्चिदीर्णो यत्र गजच्छोणितवारिभिः ।
हृदयोऽन्तरसंभिन्ना नापकर्षुं रिपून् वहन् ॥ २२९ ॥
यत्रोत्थिते सुरास्तावदंबरे रजसि स्थिते ।
धनुष्टंकारनादेन जाता मतिमदैर्मदाः ॥ २३० ॥
सैनिकाश्वखुरोत्खातधूलीभिश्छादितेऽम्बरे ।
दिनं रात्रीयते स्माथ गगने धनुषायते ॥ २३१ ॥
ज्ञायते स्म भटो यत्र मिथस्तन्नामदेशनात् ।
रथो रथांगचीत्कारैर्घंटाटंकारितैर्गजः ॥ २३२ ॥
कश्चिद्वनानां चीत्कारी हुंकारोऽत्र धनुष्मताम् ।
मध्यभारे रेकारवश्च मावर्तते क्वचित् ॥ २३३ ॥
कैश्चिद्भटैः परभटा यथा निर्भिद्य संगरे ।
गजैर्गजा रथैर्भग्ना रथाः पेतुश्च पत्तयः ॥ २३४ ॥

१ पौरुषेणेति इति पाठः ।

तावज्जम्बूप्रभावेन शिरस्यनमताड्यत् ।
जम्बूस्वामी महाबाहु' विनेदुः समरांगणे ॥ २४५ ॥
वज्रसंहननोपेता दुर्जया वीरकर्मणि ।
यथापृच्छन्मृगांकः स हास्तिकं स्वीयमादरात् । २४६ ॥
सोऽप्ययमापतितो भूमौ वेगात्खेटेन पराजितः ।
मयवीत्तस्मितः सोऽप्यं न स वेत्ति कथं प्रभो ॥ २४७ ॥
विद्याधीशो महात्म्यो रत्नचूलोऽप्यमात्मना ।
जम्बूस्वामिकुमारेण बाणैर्जर्जरितो भृशम् ।
विमानाद्भूमिमानीतो बद्धः स्वभुजपंजरे ॥ २४८ ॥
गाढं स विपरीतस्तु वीर्यमस्य गता मृधम् ।
बद्धेऽस्मिन् सैनिकास्तस्य नेशु' सर्वे दिशोदिशम् ॥ २४९ ॥
ततस्ते सन्नद्धे रथा मानीताः स्वामिनोऽन्तिके ।
सर्वे गलितमानाभास्तत्पुरेत्य हतौजसः ॥ २५० ॥
दृष्ट्वा मृगांकविद्याभृच्चक्रं नभश्चराधिपम् ।
सर्वे विद्याधरास्तत्र तुष्टुवुर्जम्बूकुमारकम् ॥ २५१ ॥
धन्योऽसि त्वं महाभाग रूपनिर्जितमन्मथ ।
क्षात्रधर्मस्य प्रागल्भ्यमद्य जातं त्वया कृतम् ॥ २५२ ॥
नेदुरानकतूर्याणि गर्जितानीव वारिधेः ।
मृदंगपटहादीनि सैन्ये वीररसप्लुतः ॥ २५३ ॥
वंदिवृंदमपारार्थं चक्रुरानंदभाषिणः ।
वर्णयेता महावीर्यं कुमारस्य जयावहम् ॥ २५४ ॥

१ गीर्गिरिनम्नुपादि ।

व्योमगतिश्च सानंदास्कारयामास सत्क्षणे ।
प्रीतिपर्वनमत्यंत जंबूस्वामिमृगांकयो ॥ २५५ ॥
जयो लब्धः कुमारेण आजुर्भुर्जितबाहुना ।
सहस्राष्टमितान् हत्वा लीलया खचराधिपान् ॥ २५६ ॥
एक एव सदा सेव्यो धर्मो सौख्यमभीप्सुभिः ।
यद्विपाकात्कुमारेण जयश्रीः किंकरीकृता ॥ २५७ ॥

इति श्रीजम्बूस्वामिचरित्रे भगवच्छ्रीपश्चिमतीर्थकरोपदेशानुसरित स्याद्वादानवद्यगद्यपद्यविद्याविशारदपण्डितराजमल्लविरचिते साधुपासारूयमसाधुटोडरसमभ्यर्थिते निर्वितरक्ष- मूलविद्याधरप्रतिबद्धसम्बन्धजम्बूस्वामिवि जयवर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥८॥

अथाष्टम सर्गः

जिनयस्वेति सद्वाक्यं पठित स्वपुरोभसो ।
माशामिव सिषेवि त्वं मूर्ध्नि श्रीसाधुचरिरः ॥१॥ इत्याशीर्वादः ।
विमलं विमलध्यानं संस्तुवे विमलाशयः ।
सन्द्राभगः मनेवे पानेवधीयोऽयं (नान्वधीयोऽयं) वंदेऽनंतवधमाश्रये
अथापरस्यकुमारः स धीमत्सामायेषापनिम् ।
भावयामास कारुण्यात्मनिस्यां संसृतिस्थितिम् ॥ २ ॥
अहो भेदविसंयोगाद्युष्मीभूतं जर्थं कश्चित् ।
तस्कि द्रव्यं गुणायेसं जीवलं न समावतः ॥ ३ ॥
तस्छिष्टो ज्ञानवस्त्रिय पिगिमां संभूतिस्थितिम् ।
अमी दुर्योधमानांपा मृत्वा या दुर्गतिं ययुः ॥ ४ ॥
ईपीकविषयासक्ता कैवलं मृतिमाप्नुवतः ।
स्वयमेत्य पतंगाय यथागाद्वशिरोपिपि ॥ ५ ॥
अहो कर्मपिस्संमास----कामापि न शांत--- ।
(भत्तु) न तृष्णाहययै वै जायन्ते विषयाः स्वतः ॥ ६ ॥
आपाके कटुकं यस्य किंपाकस्य तरोः फलम् ।
न स्वादु पीजे मपितुमर्हति ॥ ७ ॥
अथ षट्विषयाधानां संमाप्ता च द्रुतं स्वतः ।
न्यायात्कर्ये क -- --- भियस्कराः स्मृताः ॥ ८ ॥

---

१ दुर्योधैम । २ दुःखमूर्मि । ३ द्विरिष्पणि ।

इदमभोषितं किञ्चिद्यत्तच्छातं निसर्गतः ।
मादानसदृश कार्यं   दुःखवत् ॥ ९ ॥
पर किंतु महर्षिभं यदमी ज्ञानशालिनः ।
केचिद्विधानपि सेवंते परलोकार्थि-- -- ॥ १० ॥
अहो कोपि ग्रहो मोहो दुस्त्याज्यो महतामपि ।
यस्यानुभावतो मधुरास्मीयं मनुते परम् ॥ ११ ॥
(मृगा) मरीचिकां पातुं धावेत्याशु जलाशया ।
तथा तथा समज्ञानादीहेत विषयात्सुखम् ॥ १२ ॥
यथा पश्य-- -- कं कंबुकं काचकामठी ।
तथायं विषयात्सौख्यं मिथ्यापथगमसौ ततः ॥ १३ ॥
यथा वा वह्निशांत्यर्थमिंधनं क्षिपति ध्रुवम् ।
तथा तृष्णाप्रशांत्यर्थमज्ञः स्याद्विषयोन्मुखः ॥ १४ ॥
अथवालमलं तेन पाठेन वृथा यतः ।
कुर्वतापि परादेशं निमग्ना स्वात्मनो हितम् ॥ १५ ॥
पश्यतापि पतता गर्ते मया किं तेन चक्षुषा ।
स्पृहता विषयादींश्च तत्किं ज्ञानेन मादृशाम् ॥ १६ ॥
जानतापि मयाकारि हिंसाकर्म महत्तरम् ।
तत्केवलं प्रमादाद्वा यद्दृष्टता यथामयम् ॥ १८ ॥
प्राण्यान्तेऽपि न हंतव्य* प्राणी कश्चिदिति श्रुतिः ।
मया प्राणसहस्राणि हता निर्दयचेतसा ॥ १९ ॥
आफलोदयमेवैतत्कृत कर्म शुभाशुभम् ।
भक्ष्यत नान्यथा कर्तुमाताप्योषिपतीनपि ॥ २० ॥

यत्स्फाटिको मणिः स्वच्छः समानादिति भासतः ।
सोऽप्युपाधिवशादत्र रक्तपीतादिको भवेत् ॥ २१ ॥
तथायं चिरस्वभावोऽपि जीवोऽतीन्द्रियसौख्यवान् ।
धत्ते नानाविनानात्मपदमुदयादिह कर्मणाम् ॥ २२ ॥
कुर्वन्नालापनामित्थमास्ते यावत्कुमारकः ।
संसक्तस्तावदुच्चैस्त्वं रत्नचूलादिभिर्नृपैः ॥ २३ ॥
अहो द्रव्याश्रयस्थाश्च गुणा निर्गुणलक्षणाः ।
अस्त्यनिर्वचनीयोऽयं गुणग्रामो गुणस्त्वयि ॥ २४ ॥
परस्पर परसाहाय्याश्रयोऽपि मदोद्धताः ।
असहायबलस्त्वत्तो निर्विण्णो विमतीभवन् ॥ २५ ॥
विना व्यूहद्रुमं कोऽत्र कश्चित् याति नम्रताम् ।
अत एवाहवः सौम्य का विभित्स्य धर्मं भजेत् ॥ २६ ॥
इत्यालापे मिथस्तेषां स्वामी रत्नशिखद्विषाम् ।
ऊचे गगनगत्याख्यो खगमाकम्पितं स्वतः ॥ २७ ॥
स्वामिन् जम्बूकुमार त्वं यावत्पुरेऽसि वीरहा ।
अनेनापि मृगाङ्केन कृतं तावत्स्वपौरुषम् ॥ २८ ॥
तत्केन वार्णितं स्वामिन् दृश्यते स्वपुरोऽधुना ।
पर वीरैरपि श्लाघ्यं श्रुतमप्यागतो मया ॥ २९ ॥
श्रुत्वा तस्मात्प्रकोपः स रत्नचूलोऽभवत् नृपः ।
असहिष्णुरतिक्रान्तो मिथ्यावादातिमारवः ॥ ३० ॥
न तत्पराभवान्मूढ दुःखमाप खगाधिपः ।
यन्मृगाङ्कवशस्तत्र मृगाङ्कबद्धसंभवात् ॥ ३१ ॥

उक्तञ्च—

"नागुणी गुणिनं वेत्ति गुणी गुणिषु मत्सरी ।
गुणी च गुणिरागी च विरलः कोऽप्यहो महान् ॥ ३२ ॥"

अहो व्योमगते धीमन् वक्तव्यं न मृषा वच ।
खपुष्पे रचित वन्ध्यासुतशेखरसन्निभम् ॥ ३३ ॥
स्वामिजम्बूकुमारेण केवलं निर्जितो बलः ।
अनन्येऽपि मदीयोऽस्य भवद्भुजविक्रमात् ॥ ३४ ॥
नाभविष्यदयं वीरश्चेत् संग्रामसंकटे ।
यदकरिष्याम्यहं नूनं तदग्रस्यस्त्वमंमसा ॥ ३५ ॥
कृत यत्नैस्त्वयैव विद्याराधनसाधने ।
पदातयोऽप्यलं हन्तुं त्वादृशा मामका अमी ॥ ३६ ॥
बलवानबले सज्जो ययागादुपहास्यताम् ।
चक्रिणापि हतो दीनो विलक्षो न तथापरः ॥ ३७ ॥
यथा वारिभिरस्त्रच्छिन्दी सायका निरवे दिवे ।
लाघवं माप लक्ष्मीऽपि मृतोऽपि न तथा खिन्न ॥ ३८ ॥
गौरवं किंच यदस्ति युष्मदादिषु सांप्रतम् ।
नष्टं न किंचिदद्यापि विद्यमानतयाऽनयोः ॥ ३९ ॥
तावत्तिष्ठत्कुमारोऽसौ मध्यस्थः कौतुकी यथा ।
साक्षात्कारीव युष्माभिर्युद्धमथ विधीयताम् ॥ ४० ॥
वाक्य रत्नसिख शृण्वन् मृगाङ्कस्तुकृप ध्रुवम् ।
मथिताऽग्नौ घनस्वर्णे घृते धूमध्वम न किम् ॥ ४१ ॥

१ मन । २ अमी ।

अस्त्वस्तु ममाणे यद्रत्नचूल स्वयांत्रियम् ।
रेन्नो (म्रः सछ) सस्यते यथा विशुद्दि स्यामिकापि मा ॥ ४२ ॥
यद्युनैव महायुद्धमायपोरुपितं पुन ।
विसर्ग मा कांसी (कार्षी॰) सामास्पिनङ्का मनसगर ॥ ४३ ॥
कावराणां विपिर्मेष स्वीकृतः सावसासिकः ।
महतां हि मतिडैव नियमो यावज्जीवनम् ॥ ४४ ॥
इति मियो वाचसंद्मास्स्याणां योद्धुं समुपवौ ।
कुमारस्तु यथास्थाने तस्यौ वार्षयमीव सः ॥ ४५ ॥
चिंतितं तत्कुमारेण किमत्र क्रियतेऽधुना ।
मूपार्दपोपचामान्यं माप्यस्य्यं मम संदरम् ॥ ४६ ॥
वारयामि मृगांकं चेतद्धस्यापि साधनम् ।
स्यायवत्त्वद्विपक्षोऽस्मि विपक्षो रत्नचूलकः ॥ ४७ ॥
रत्नचूडे निपितेऽभिभवम्य स्याच (भुगो) गौरवम् ।
स्वारमोत्कर्षं हि पुष्णाति विश्वस्यारापितो रिपुः ॥ ४८ ॥
अथानम्य कुमारं तं मन्यमानो यथा गुरुम् ।
रत्नचूडमृगांकौ द्वौ संसज्जौ भवता रण ॥ ४९ ॥
नेदुः संग्रामभेर्यश्च सन्नुस्तं दक्षवीर्दपा ।
समद्वास्ते भयाः सर्वे साभमाना रण पुनः ॥ ५० ॥
पूर्ववत्तुमुलं युद्धं चक्रुर्योऽपि सैनिकाः ।
दृष्ट्वा तं रौरवाकारं केचिन्मूर्च्छा गताः क्षणात् ॥ ५१ ॥
कश्चिद्वैर्यं समालम्ब्य कुर्वीत स्म महारवम् ।
भित्वे धर्मस्तस्येव पातयंतोऽरिर्मदसम् ॥ ५२ ॥

नागैस्तत्र हता नागा अश्ववारैर्निपादिन ।
असिकुन्तशरापातैः पङ्क्तयापि पदातिका ॥ ५३ ॥
कारयामासतुर्युद्धं साहंकारौ परस्परम् ।
रत्नचूडमृगांकौ द्वाविव रावणराघवौ ॥ ५४ ॥
शरासारैस्तदा युद्धं द्वाभ्यां कृतमिवाल्पणम् ।
न कोऽप्यत्र द्वयोमध्ये जितो वाथ पराजितः ॥ ५५ ॥
तत्क्रुद्धो रत्नचूडोऽसौ मायायुद्धमचीकरत् ।
मृगांकस्त्वल्पिपापाणि सावधानोऽभवत्तदा ॥ ५६ ॥
पांशुभिः सकलं सैन्यं स चक्रे व्याकुलं तदा ।
वायव्यास्त्रेण मृगांकोऽसौ ववाम सणतो रज ॥ ५७ ॥
अथ रत्नशिखेनाथैस्तदा वानमक्षीलेपा ।
मग्नासित मृगांकस्य सैन्य सर्वे क्षणादपि ॥ ५८ ॥
मृगांको जम्पूप्रूपा वामिषोपपदितस्ततः ।
इत्यादि सुचिर मोऽपि वैरिणा युयुध भृशम् ॥ ५९ ॥
नागपाशैस्तदा बद्ध्वा मृगांकं बलवत्तरः ।
रत्नचूड खगेशानो सतामदृपोऽभवत् ॥ ६० ॥
तताऽसौ विजयीभूत्वा बद्ध्वा त स्वर्वपने ।
कुवल्ले गेतुकामोऽपि वारितः स्वामिना मक्षम् ॥ ६१ ॥
रे रे मूढ क यासि त्वं नीत्वैन मृगलाञ्छनम् ।
मयि निपसि मूर्पीठ का हि क्षुमविक्रमः ॥ ६२ ॥
क क्षम क्षपमूर्द्धस्यमावातुं मणिमुपमम् ।
कालमपनमादिशात्मानं को वा माहु समीहते ॥ ६३ ॥

१ अर्णिता ।

पापिना या महामरं कथासयितुमिच्छति ।
त्यक्त्वा या सिद्धम्यायां कथाल्लाप सुख मभत् ॥ ६४ ॥
तथा त्वं मामविक्रम्य भद्रं यास्यसि सद्मनि ।
इत्थमेव मदधिर्मं व्रीडया नावृतो यतः ॥ ६५ ॥
यदस्यैवं कुमारेऽस्मिन् जम्बूस्वामिनि सगरे ।
सन्मुखीभूय सन्तस्थौ यावद् रत्नशिखस्तदा ॥ ६६ ॥
अथोवाच कुमारोऽसौ रत्नचूडं खगं प्रति ।
आवाभ्यां केवलं युद्धं विधेयं क्रियतापरैः ॥ ६७ ॥
तत सर्वान्समुत्सार्य सैनिकांश्च महामयान् ।
द्वावेव तस्थतुः सज्जौ कर्तुं संग्राममुद्यतौ ॥ ६८ ॥
ततो युद्धमभूद्घोर द्वयोः खसैन दारुणैः ।
नानाविधैर्महावीरैरन्योन्यं जयकांक्षिणोः ॥ ६९ ॥
मुमोच रत्नचूडोऽसौ नागास्त्रं स्वामिनं प्रति ।
न्यक्कृतं तत्कुमारेण गारुडास्त्रेण तत्क्षणात् ॥ ७० ॥
पुनः कोपोपरक्तः सन्नग्निबाणं ससर्ज सः ।
प्रशशाम तदा वेगात्कुमारो जलधारिभिः ॥ ७१ ॥
पुनस्तोमरपातेन हतो रत्नशिखो यदा ।
तदा हंतुं कुमारं स चक्रं जग्राह बाहुना ॥ ७२ ॥
यावन्मोक्तुं न शक्नोति चक्रं रत्नशिखः खगः ।
तावद्वेगात्कुमारेण छिन्नौ बाणा भयाद्रिपो ॥ ७३ ॥
तेन बाणेन तच्चक्रं खंडितं तीक्ष्णहेतिना ।
न्यपतत्पद्मः खेऽपि विद्युत्पातादिव द्रुतम् ॥ ७४ ॥

तदावाघूर्णमानांगं नागं वीक्ष्य खगेश्वरः ।
मृगांकमवतारासौ कुंतहस्तश्च कोपवान् ॥ ७५ ॥
तावज्जम्बूकुमारेण क्षणादुत्थीय दंतिन ।
हत्वा मुष्टिप्रहारेण पातितः पृथिवीतले ॥ ७६ ॥
त्यक्तमानधनः सोऽपि नीतश्चारोप्य दंतिनि ।
रत्नचूलः कुमारेण बद्धाबद्धा खगाधिराट् ॥ ७७ ॥
तदसौ शुशुभे तूर्णं मृगांकं बंधनाच्छपात् ।
व्यभ्रे व्योम्नि शरत्काले यथादित्यो घनात्यये ॥ ७८ ॥
पुष्पवृष्टिं सुरास्तेनुः कुमारजयशंसिनः ।
दिशो दुंदुभिनादेन पूरयंतो नभोंगण ॥ ७९ ॥
बभ्रुर्जयजयारावं सर्वे ते मित्रवादयः ।
अहो पुण्यद्रुमात्स्वादु फलं सर्वा हि संपदः ॥ ८० ॥
अथ प्रवेशयामासुः कुमारं केरलां प्रति ।
शौर्यविक्रमदानाद्यैर्मृगांकाद्यक्षितीश्वरा ॥ ८१ ॥
यदाप परमानंदं खगा व्योमगतिस्तदा ।
स्तोतुं न शक्यते सर्वो निरनक्षपवया यथा ॥ ८२ ॥
अथ पौरस्त्रियस्तत्र पीनस्तनभरानताः ।
चिक्षिपुः सुमनान्पुंजैः कुमारमनुरागतः ॥ ८३ ॥
काश्चित्पौरांगनास्तत्र जजल्पुश्च परस्परम् ।
काश्चिन्मंगलगीर्तिं गायंति स्म मुदान्विता ॥ ८४ ॥
सखे दर्शय मामाशु नाम्ना जम्बूकुमारकम् ।
हेलया निर्जिता येन रत्नचूलखगाधिप ॥ ८५ ॥

काचिद्वदति धन्योऽयं श्रीपार्श्वस्तत्र जयी ।
अस्माकं येन सौभाग्यं रक्षितं निघ्नता रिपून् ॥ ८६ ॥
धन्या जिनमती धन्या सार्थवाहस्य भामिनी ।
दशमासान् यया गर्भे धृतोऽयं सिंहविक्रमः ॥ ८७ ॥
धन्यः स श्रेणिको भूपो यस्यैतादृगमयीषम ।
एकोऽप्यर्कं सहस्राणां भटानां मानहानये ॥ ८८ ॥
अथ्यापथमहावीथ्यां श्रीमां वणिक्सुतैः कृताम् ।
पश्यन् स्वामी व्रजायाशु तोरणं नृपमन्दिरः ॥ ८९ ॥
तत्र श्रीमातिशायितं निबद्धं मणिमौक्तिकैः ।
दर्शं दर्शं कुमारोऽसौ क्षणं तस्थौ स कौतुकी ॥ ९० ॥
ततः शनैः शनैर्गच्छन् प्रविष्टो नृपमंदिरे ।
आलम्बन् जगदानंद सौन्दर्य (र्य) सुधांशुभिः ॥ ९१ ॥
नीत्वा तत्र मृगांकस्तं क्रियां सन्मज्जनादिकाम् ।
वर्धितो हासयन्नेके मभयाद्दीतमत्सर ॥ ९२ ॥
सर्व यत्रसवस्त्रोऽस्य मृदुस्निग्धं सुखासनम् ।
मृगांकोऽप्यर्पयामास सुखाय स्वामिनः पुरः ॥ ९३ ॥
भुक्तं जम्बूकुमारेण नानाव्यञ्जनसंस्कृतम् ।
भोजनं स्वादु संमिष्टं पूर्णं पुण्यफलादिवत् ॥ ९४ ॥
तत कर्पूरताम्बूलैर्मृगमदादिद्रवैरपि ।
अर्चितोऽसौ मृगांकेण प्रीत्या सत्कारगौरवात् ॥ ९५ ॥
अथ मर्त्यसभे स्थित्वा कुमार[1] करुणापर[2] ।
कारामया सभासार्धं रत्नचूलं सगौरवम् ॥ ९६ ॥

१ तोऽस्थेऽसौ पठितुम् पुस्तक. । २ रचितम् ।

अपि च कोमलालापैः सूक्तिसंदर्भगर्भितैः ।
खगं संतोषयामास कुमारो मारगौरवः ॥ ९७ ॥
जयपराजयौ स्यातां कुर्वतां युद्धमाहवे ।
विषादं खग मा कार्षीर्धर्मं पुंसां निसर्गतः ॥ ९८ ॥
गच्छ गच्छ यथास्थानं स्वसैन्यमपि निर्भयात् ।
वर्तितव्यं परीवारैः स्वीयैः स्वीयपुरालये ॥ ९९ ॥
अथावादीद्रत्नचूलोऽपि कुमारं प्रति मार्दवात् ।
स्वामिन् गत्वा त्वया सार्धं द्रष्टुमिच्छामि श्रेणिकम् ॥ १०० ॥
स्थित्वा तत्र कुमारेण केषुचिद्वासरेषु च ।
ततो विमानमारुह्य प्रस्थितः श्रेणिकं प्रति ॥ १०१ ॥
अत्रान्तरेऽस्मिन् मृगाङ्कोऽपि प्रतस्थे सकलाङ्गकः ।
आदायोद्वाहितुं कन्यां तां विलासवतीं सतीम् ॥ १०२ ॥
तया सार्धं समादाय रत्नचूलोऽपि भक्तिमान् ।
चलति स्म विमानैः स्वैरमा पंचशतैः शुभैः ॥ १०३ ॥
खगो गगनगत्याख्यो मुदा निर्भरमानसः ।
अन्वगात्स कुमारं तं स्वविमानमधिष्ठितः ॥ १०४ ॥
अलंचक्रुर्दिशां चक्रं विमानैर्व्योमगा इमे ।
किमेतदिति भूपालैराकुलं वीक्षितं भयात् ॥ १०५ ॥
ते सर्वे सकुमाराश्च संसिद्धैः पुरमापसम् ।
यत्रास्ति श्रेणिको भूपो राजमण्डलवेष्टितः ॥ १०६ ॥
अथोत्तीर्य विमानानि स्थापयित्वा नभोङ्गणे ।
आनताः श्रेणिकं सर्वे ते मृगाङ्कादयः खगाः ॥ १०७ ॥

१ मष्ट ।

श्रेणिकोऽपि ततस्तूर्णं समुत्थाय निजासनात् ।
आलिलिंग कुमारं तमुत्सुकः परमादरात् ॥ १०८ ॥
साधु साधु मया दृष्टो यचिरादपि मा भवन् ।
त्वयि दृष्टे महान् हर्षो जातो मे हृदि संप्रति ॥ १०९ ॥
ततो गगनगत्याख्यस्तद्वृत्तान्तमथीकथत् ।
यथाश्रुतं द्वयोरेव तथया श्रेणिकं प्रति ॥ ११० ॥
ततोऽसौ दर्शयामास संज्ञया हस्तसंज्ञया ।
तत्संग्रामविधिर्दृष्टं वा तं तं व्योमगतिः खगम् ॥ १११ ॥
एष देव मृगाङ्कोऽयं दृष्टो स तनयां निजाम् ।
एषास्य महती भार्या नाम्ना स्यात्मालतीलता ॥ ११२ ॥
एष रत्नचिलो नाम्ना ख्यातो विद्याधराग्रणीः ।
निर्जितो यः कुमारेण दुर्जयो महतामपि ॥ ११३ ॥
श्रुत्वेवं तन्मुखाम्भोजा स लेभे निर्वृतिं पराम् ।
यथा चन्द्रोदयं सिन्धुर्वृद्धिमाप महौजसा ॥ ११४ ॥
स्तुतिं चक्रे कुमारस्य श्रेणिकश्च मुहुर्मुहुः ।
निसर्गात्स्वदुमापित्वं राशि स्वपकर्ता न किम् ॥ ११५ ॥
परिणीताय मृगाङ्कस्य तनया सा वरांचिता ।
या विशालवती नाम्ना श्रेणिकस्य कृतार्पिता ॥ ११६ ॥
ततश्चोद्वहकल्याणे नृत्यं तेनुः खगेश्वराः ।
कामिन्यो गजगामिन्यो गायंति स्म सर्मगलम् ॥ ११७ ॥
मैत्रीभावो द्वयोश्चापि रत्नचूलमृगाङ्कयोः ।
मिथः कारापितस्तेन श्रेणिकेन महौजसा ॥ ११८ ॥

वकपंक्तिं निरीक्षस्व सरस्तीरेषु सुंदरि ।
त्वत्कण्ठालम्बिनी माला यथा (सु) स्वमनसां त्वयि ॥ १३० ॥
इतश्चक्रयुगं पश्य चकाराक्षि वियुक्तवाम् ।
गतं त्वद्वदनं वीक्ष्य चन्द्रोदयविशङ्कया ॥ १३१ ॥
चातकध्वनिमाराद्वै शृणु कोशानुकारिणीम् ।
रटन्तं परमप्रीत्या बहुशोऽपि प्रिये प्रिय ॥ १३२ ॥
मञ्जरीं पिंजरां पश्य सुभ्रु पुष्पकुमावलीम् ।
तव कर्णावतंसाभ्यां स्पर्धमानां सुपौरकैः ॥ १३३ ॥
शुभ्रमद्विरफवंशानि पश्य पश्य वनान्तरे ।
त्वद्गुणस्तोमरूपाणि लिखितान्यक्षराणि वै ॥ १३४ ॥
दूरादवदां वन पश्य कलिकाकारवाकुलम् ।
सैमारमन्मथाकीर्णे पुन्नागमुकुलच्छया ॥ १३५ ॥
इतः पश्य सरोमालिं प्रफुल्लेन्दीवरानन ।
क्षाममानां द्विरेफैश्च त्वदाननविलासया ॥ १३६ ॥
अयि पद्मभिवर्णी मद्गीमक्षमाचरतां नय ।
त्वन्मुखकरसंस्पर्शो कुर्वती त्वदधैरिति ॥ १३७ ॥
कांठे कांतिसुपर्णतान् पश्य सुमनसां चयान् ।
त्वन्मुखसामोदमादाय वमतः प्रियमुत्तमाम् ॥ १३८ ॥
इतिप्रभृतिभागानां क्षामां सत्यप्रयमयम् ।
मिथाय भणितो भूप माप राजगृहं पुरम् ॥ १३९ ॥
तत्राप्युपवने धीमान् क्षण तस्थौ ससैनिकः ।
तत्रार्य मुनिं नाम्ना सौधर्मं धर्मवत्सलम् ॥ १४० ॥

१ केचन वृत्ती मधूकस्य ।

अथ सप्तमं पर्व ।

भवतु भावशुद्ध्यर्थं स्वभावो भवहानये ।
धर्मे धर्मफले रागस्तव श्रीसाधुधीश्वर ॥ १ ॥ इत्याशीर्वादः ।

धर्मनाथं स्तुवे धर्मतीर्थेश धर्मसिद्धये ।
शांतिनाथं पुनर्नौमि शांतये घातिकर्मणाम् ॥ १ ॥

अथ जम्बूकुमारेण चिंतितं निजमानसे ।
कुतः पुण्योदयादेतन्मया लब्धं यशोधनम् ॥ २ ॥

तत्सर्वं भगधार्तमध्ये समागतौ मुनिसन्निधौ ।
तं प्रणम्यापविष्टश्च विनयावनताननः ॥ ३ ॥
भो मुने कृपया किंचिद्ब्रूहि मे संशयच्छिदे ।
कोऽयं कुतः समायातः कस्मात्पुण्यविपाकतः ॥ ४ ॥
जन्मांतरस्य वृत्तांतं ज्ञातुमिच्छामि त्वन्मुखात् ।
त्वमुपेक्षापरः स्वामिन् निस्पृहः सुखदुःखयोः ॥ ५ ॥
शत्रौ मित्रे समानस्त्वं जीवने मरणे समः ।
स्तुतिनिंदासमः सौम्यो वास्यां वा हरिचंदने ॥ ६ ॥
त्वं निस्तारी भवाम्भोधौ मुने भव्यवत्सलः ।
जीवन्मुक्तस्त्वमेवासि कृपालुः सर्वजन्तुषु ॥ ७ ॥
अथोवाच मुनिर्नाम्ना सौधर्मो धर्मदीपकः ।
शृणु वत्स यदेतेऽ(ऽ)त्र वृत्तांतं पूर्वजन्मनः ॥ ८ ॥

भूपतिस्तत्र नाम्नापि सुप्रतिष्ठ' प्रतिष्ठया ।
जैनधर्मसरोहंसो धुरीणस्तु धर्मकर्मणाम् ॥ २० ॥
भार्या रूपवती तस्य नाम्ना धर्मसमन्विता ।
पट्टबद्धा सुशीलाख्या सौन्दर्यगुणशालिनी ॥ २१ ॥
भवदेवचरो ज्यायान् योऽथ भूत्वाऽमरो दिवि ।
च्युत्वा सागरचंद्रश्च सोऽथ तस्य सुतोऽजनि ॥ २२ ॥
सौधर्म इति नाम्नापि राज्ञः स्यातः स बंधुना ।
क्रमाद्वृद्धिं समासाद्य जातो निःशेषशास्त्रवित् ॥ २३ ॥
कुमारावस्थया यावत्तिष्ठत्यसौ कुलदीपकः ।
अथान्येद्युः स धर्मात्मा सुप्रतिष्ठः कलत्रयुक् ॥ २४ ॥
समवादिस्थितिं भूमिं गत्वा वीरस्य वंदितुम् ।
वर्द्धमानमुखाम्भोजात् श्रुत्वा धर्मोपदेशनाम् ।
सद्योत्पन्ननिर्वेदो भोगेभ्यश्च पराङ्मुखः ॥ २५ ॥
भावयामास स चित्ते संसारासारतां घनाम् ।
क्षणिकत्वादिनादीनां वारिबुद्बुदसन्निभाम् ॥ २६ ॥
दीक्षां जग्राह नैर्ग्रंथी स्वर्गमुक्तिसुखप्रदाम् ।
सर्वसंगविमुक्तात्मा हानये चाष्टकर्मणाम् ॥ २७ ॥
दिवसैः कतिभिर्भिक्षुः श्रुतपूर्णोऽभवन्मुनिः ।
गणधरस्तुर्यो जातो वर्द्धमानजिनेशिनः ॥ २८ ॥
सौधर्मोऽपि तथा धर्माद्वीक्ष्य तं गणनायकम् ।
आत्तमार्गनिर्वेद' प्रवव्राज महामुनि' ॥ २९ ॥
क्रमात्सोऽप्यभवत्तस्य पंचमो गणनायकः ।
सोऽयं सुधर्मनामा स्यां भवद्गात्रधराऽधुना ॥ ३० ॥

अवस्थेयं क्व ते वत्स वयोलीलानुसारिणी ।
क्वेदं दीक्षाभरं सौम्य दुर्द्धरं महतामपि ॥ ४२ ॥
अथ चेत्सर्वथास्था वर्तते तव चेतसि ।
एकशः स्वगृहे गत्वा कुरु कृत्यं यथोचितम् ॥ ४३ ॥
बंधुवर्गं समाहूय समापृच्छ्याथ गौरवात् ।
समाधानतया कृत्वा क्षंतव्यं च परस्परम् ॥ ४४ ॥
पश्चाद्गृहाण नैर्ग्रन्थीं दीक्षां कर्मक्षयंकराम् ।
एष क्रमः समाम्नायात्स्वीकृतः पूर्वसूरिभिः ॥ ४५ ॥
श्रुत्वा जम्बूकुमारोऽसौ प्रोक्तं सौधर्मधारिणा ।
चिंतयामास स्वे चित्ते किं कर्तव्यं मयाधुना ॥ ४६ ॥
चेत्सद्मनि न गच्छेयमहं स्यात्सहठाग्रह ।
गुरोराज्ञाविलोपः स्यात्स न श्रेयस्करः स्वतः ॥ ४७ ॥
तथाऽवश्यं हि गंतव्यं मया स्वात्मालयं क्षणात् ।
पश्चादागत्य दीक्षां तां ग्रहीष्यामि तपोन्विताम् ॥ ४८ ॥
निश्चित्येतन्नमस्कृत्य गुरुं सौधर्मसंज्ञकम् ।
जम्बूस्वामिकुमारोऽसौ जगामाशु निजालयम् ॥ ४९ ॥
गत्वाथ त्वरितं तत्र वार्तां जिनमतीं प्रति ।
निश्चयतः स्वचित्तस्थां सर्वां तामप्यचीकथत् ॥ ५० ॥
मातर्नूनं विजानीहि निर्विण्णोऽहं यथास्थिति ।
इतः पाणिग्रहाचारं कर्तव्यं मयका (हि मया) भुवि ॥ ५१ ॥
चकंपे श्रुतमात्रेण माता जिनमती सती ।
पवनेनेरिता वेगाद्धिमग्रस्तेव पद्मिनी ॥ ५२ ॥

अहो पुत्र किमाख्यात वज्रसंपातनिष्ठुरम् ।
कारणं किमकस्मात्स्यादत्र कार्यनिदर्शने ॥ ५३ ॥
अथोत्तरप्रदानेन समाधानचिकीर्षया ।
कथितानि कुमारेण मुनिवाक्यानि तानि वै ॥ ५४ ॥
श्रुत्वा जिनमती तस्मात्तच्चोत्तरवार्तिकम् ।
धर्मबुद्धितया किंचित्समाधानमुपाददे ॥ ५५ ॥
साऽर्हद्दासाग्रतः सर्वं वृत्तांतं गदति स्म वै ।
चरमांगी कुमारोऽयं जैनीं दीक्षां जिघृक्षति ॥ ५६ ॥
अर्हद्दासो विश्रम्यैतन्मूर्छामाप क्षणादिति ।
महामोहोदयादेव हाहाकारं रटन्निति ॥ ५७ ॥
ततः कथंचित्सोपायैरुत्थितोऽपि वणिक्पतिः ।
विललाप यथात्यर्थं तथा को वर्णयेत्कविः ॥ ५८ ॥
अर्हद्दासेन तत्रैव कश्चिद्वाग्मी विचक्षणः ।
प्रेषितस्तत्कथां वक्तुं सागरदत्तादिसद्मनि ॥ ५९ ॥
आदिष्टस्त्वरितं गत्वा स सदेवोत्तरः सुधीः ।
सर्वं निवेदयामास यथासर्वसमक्षकम् ॥ ६० ॥
अहो दुर्दैवमस्माकं यदुत्पन्नमसज्जनाः ।
माताप्यापि धनमाला विप्रकर्मोदयादिह ॥ ६१ ॥
आकर्ण्येदं वचस्तीक्ष्णं दुःसहं वज्रपातवत् ।
भीतिनस्तु महाभीतेश्चत्वारोऽपि चकंपिरे ॥ ६२ ॥
दधंति स्म शुचाक्रांताः क्षणं विस्मितमानसाः ।
किमन्यत्र कुमारोऽप्यद्भुतं कर्तुमिच्छति ॥ ६३ ॥

१ दूतः ।

तावत्स एव संपृष्टः[1] श्रेष्ठिभिस्तैर्महाग्रहैः ।
यत्र सौम्य यथास्तथ्यं कारणं किमिहात्र भोः ॥ ६४ ॥
स संदेहहराश्चाशीर्वादपूर्वतरया गिरा ।
अहो स्वामिकुमारोऽयं तितीर्षुर्भववारिधिं ॥ ६५ ॥
निश्चयात्कामभोगेभ्यो निस्पृहो दुःखभीरुकः ।
सस्पृहो मुक्तिकामिन्यां जैनीं दीक्षां ग्रहीष्यति ॥ ६६ ॥
श्रुत्वा तं वणिजो नाथाः सपाङ्कसतां गताः ।
यामपिहुं स्वकन्यास्ता यमुष्मांत्राभिजातकम् ॥ ६७ ॥
तत्र गत्वा समाहूय भीताम्बाप्यनुवासितुम् ।
ताः कन्याः कुलशीलत्वं न प्राहुर्लेशतस्त्रिया ॥ ६८ ॥
शृणु भो जम्बूकुमारोऽयं श्रूयते भोगनिस्पृहः ।
व्रतान्यादातुमीहेत तपःपूर्वाणि मुक्तये ॥ ६९ ॥
तद्वदस्तु यथाकामं का नो हानिस्तु सांप्रतम् ।
भवतीनां समुद्वाहे भमैवाय वरोऽपरः ॥ ७० ॥
निशम्यैतत्पितुर्वाक्यं पद्मश्रीः कुपिता तदा ।
ममाग्रहाद्धा कर्णपिदे माभिहस्येव योगिराट् ॥ ७१ ॥
तात मा वद दुर्वाक्यमेतन्नीचाक्षरं मयि ।
प्राणान्तेऽपि न कर्तव्या क्रमहानिर्महात्मभिः ॥ ७२ ॥
एक एव यथा देवः सर्वदोषविवर्जितः ।
अर्हन्निति त(स)दास्थातो धर्मैको महात्मनाम् ॥ ७३ ॥
तथा जम्बूकुमारोऽयं भर्ता मेऽस्तु हि मामकः ।
नापरः कश्चिदेवासौ नियमो मे निसर्गतः ॥ ७४ ॥

१ किशो एष्ठी । २ कमाशिवर्जं ।

धिग्भोगान्विषयोत्थानिन्द्रजालोपमानिह ।
पतौ गच्छति दीक्षायै वयं सुपथगौ रता ॥ ७५ ॥
अथ पेन्द्राविनी सेयं सागरसंपदनीदक्षी ।
अस्माकं भाग्यसंयोगादयं स्वास्यति सद्मनि ॥ ७६ ॥
यदि भोगान्तरायस्य कर्मणो मे विपाकतः ।
नारितो बहुधोपायैरयं गता तपोवने ॥ ७७ ॥
तदापि न मनस्तापो भविता मे सुनिश्चयात् ।
नान्यथा स्वक्ष्यते कर्तुं यद्भाव्यं तद्भविष्यति ॥ ७८ ॥
अलमत्र बहूक्तेन तात वाचयमी भव ।
सर्वथा पतिरेको मे जम्बूस्वामिकुमारकः ॥ ७९ ॥
श्रुत्वा सागरदत्तास्य श्रेष्ठी शुभवचस्ततिम् ।
सर्वं निवेदयामास स संदेशहरे मति ॥ ८० ॥
श्रुत्वा वचोहरश्चापि गत्वा श्रेष्ठिनिवासकं ।
जगाद सर्वतस्तत्त्वं यथा कन्याकथानकम् ॥ ८१ ॥
अथ चाहद्दासो गच्छन् मातुरस्ताचर्क मितः ।
अहो न क्षमका द्रष्टुं संतः परविपत्तयः ॥ ८२ ॥
इति कर्तव्यतामूढः सोऽर्हद्दासो वणिक्पतिः ।
गत्वा प्रति कुमारं स विज्ञप्तिमकरोत्कृती ॥ ८३ ॥
एकमेव दिनं वत्स विवाहानंतरं तव ।
त्वया ताभिः सहास्थानं कर्तव्यं नैकशः किल ॥ ८४ ॥
मामकीं प्रार्थनां शुभ मामोघां विधेहि भो ।
पश्चाद्यद्रोचते तुभ्यं तत्तथा विधीयताम् ॥ ८५ ॥

निरीहोऽपि कुमारः स पितुरत्याग्रहात्तदा ।
तथेत्युवाच तात त्वं मा विषादीः स्वचेतसि ॥ ८६ ॥
ततो मांगल्यतूर्याणि पचानां श्रेष्ठिनां गृहे ।
नेदुरानंदभेर्यश्च पूरिताशामुखा जवात् ॥ ८७ ॥
कलगीतानि कामिन्यो गायंति स्म मुदान्विताः ।
संभ्रमन्मृगनेत्रास्ताः पीनोन्नतपयोधराः ॥ ८८ ॥
उद्वाहोचितसामग्री या काचन प्रसिद्धितः ।
तया सह यथाशास्त्रमध्यास्त कुमारकः ॥ ८९ ॥
ध्वनद्भिर्घोषसंघैश्च वंदिवृंदैः सुमञ्चकैः ।
पठद्भिस्तद्यशोध्यानं नृत्यद्भिर्नर्तकीजनैः ॥ ९० ॥
पौरांगनादिसल्लोकैर्वीक्ष्यमाणः पदे पदे ।
प्राप जम्बूकुमारश्च सार्थवाहस्य सद्मनि ॥ ९१ ॥
उत्तीर्य तुरगात्तूर्णमुपविष्टश्चतुष्किकाम् ।
मघगंभीरनिस्वानो धीरो मंदरकूटवत् ॥ ९२ ॥
अथानीताभिरत्यर्थमुद्वाहस्य कृते कृती ।
करग्रहमनिच्छोऽपि मेघश्रीप्रमुखासु हि ॥ ९३ ॥
विवाहानंतरं सर्वे स्वर्णरत्नादिभाजनम् ।
दत्तं सागरदत्ताद्यैर्दानीयं यद्गृहोचितम् ॥ ९४ ॥
पट्टकूलानि श्लक्ष्णानि विविधानि वि (च) त्राणि च ।
परार्ध्याद्दुहिता (तृ) भ्यो मणिमुक्ताप्रवालकान् ॥ ९५ ॥
सत्कर्पूरसुगंधीनि कुंकुमार्दीनि सन्मुद ।
पर्यंकासनयानादिवस्तूनि वणिजो ददुः ॥ ९६ ॥

हस्त्यश्वधनधान्यादिदासीदासादिकं तथा ।
यदुत्तमं गृहे किंचित्तत्सर्वं स्वामिने ददुः ॥ ९७ ॥
तदादाय स कन्याभिः संबद्धवसनाञ्चलः ।
रजन्यां सहकांताभिर्नानाविधमहोत्सवैः ॥ ९८ ॥
पठद्भिर्बंदिवृंदैश्च नृत्यद्भिर्नर्तकीजनैः ।
मर्हावासगृहे प्राप स्वामिजम्बूकुमारकः ॥ ९९ ॥
यच्चप्राप्युचितं किंचित्प्रासंगिकमुत्तमम् ।
तत्सर्वं विनयान्नूनमर्हावासाऽप्युपाददे ॥ १०० ॥
यः कश्चित्तत्र दानीया सोऽपि दानेन प्रीणितः ।
प्रभवार्होऽपि यः कश्चित्सत्कृत स तथा किल ॥ १०१ ॥
जिनमत्यापि सोत्साहात्स्वगेभ्यो बहुमानिता ।
यथास्वं पट्टकूलादि ताभ्यो दत्तं स्वभक्तितः ॥ १०२ ॥
सन्मानिताश्च ते सर्वे (ताः सर्वाः) प्राप्ता निजनिजगृहम् ।
निद्राघूर्मि (र्मि) तनयाश्च बभूवुः शयनोद्यता ॥ १०३ ॥
सह ताभिः कुमारश्च रहस्यकक्ष मंदिरं ।
स्थापितस्तु वयस्यालीजनैः सस्मितभाषणैः ॥ १०४ ॥
अथ ज्वलत्सु दीपेषु दीपितावासवस्तुषु ।
हंसतूलास्यशय्यायां स्थितस्ताभिः सहासकौ ॥ १०५ ॥
तत्र प्रार्थयमानाशु तस्थौ स्वामी विरक्तितः ।
संस्थितश्चापि तन्मध्ये पद्मपत्रं जले यथा ॥ १०६ ॥
नापि वक्ति न पश्यश्च सुरूपास्वपि तासु च ।
स्थितः स्थिरतरः स्वामी निस्तरंगसमुद्रवत् ॥ १०७ ॥

१ गरिष्ठं शोभितः । २ सखीजनैः ।

ताराणां निकरा रेजे तदा व्योम्नीव निर्मलः ।
यामिनीकामिनीभूपाहारमुक्ताफलश्रियः ॥ १०८ ॥
अथ तासां शरीरेषु ज्वलति स्म स्मरानलः ।
प्रस्तुपायैरसद्यश्च स्वामिलाभा रिरंसया ॥ १०९ ॥
तत्समक्षं तत्र स्थित्वा ताभिः कामातुरात्मभिः ।
मंदं मन्दमथालाप कुर्वतीभिः परस्परम् ॥ ११० ॥
कामाकुलाभिरामिश्च ताम्बूलादिप्रवित्सया ।
आरब्धा स्मरसंचेष्टा नानाशृंगारचार्थया ॥ १११ ॥
दर्शयन्त्यसुकी काचिदत्र हारमिषात्स्तनौ ।
दृढौ बिल्वफलाकारौ यौवनोन्मांमुखौ पर्धौ ॥ ११२ ॥
काचिन्नाभिं सुगंभीरां दर्शयन्ती स्फुटादिव ।
काचिदुद्बन्धोल्लास भत्त स्म निमसीलया ॥ ११३ ॥
काचिदुरहासान्निर्मगर्भं च मर्मवित् ।
वचश्चोच नवाढाढा स्वामिनं प्रति सस्मरा ॥ ११४ ॥
काचिद्रक्तोत्पलीलाभिः स्वसात्कर्तुं समीहते ।
हावभावविलासाद्यैः काचित्कार्यं विभावति ॥ ११५ ॥
काचिद्रागोत्थ गायंती पञ्च (म) ध्वनिमिश्रितान् ।
काचित्पठति सद्गद्यार्पितं स्वामिना मनः ॥ ११६ ॥
इत्याद्विविधिभिर्भावैर्लक्षयन्त्यः स्वपाणयम् ।
न समास्ताश्चवर्तोऽपि तन्मना माहितुं मनाक् ॥ ११७ ॥
इतिप्रकृत्वविपाकात्स्वामिजम्बूकुमार

सकलमुत्सनिधाना मारमार्तंगसिंहः ।

कृतपरिणयकर्मा धर्ममूर्तिर्विरक्ता
विषयविरतचेताः स्यात्समासन्नभव्य ॥ ११८ ॥

इति श्रीजम्बूस्वामिचरित्रे भगवत्श्रीपश्चिमतीर्थंकरोपदेशानुसारित स्याद्वादानवद्यगद्यपद्यविद्याविशारदपण्डितराजमल्लविरचिते साधु पासाह्मजसाधुटोडरसमभ्यर्थिते जम्बूस्वामिपरिणय-नोत्सववर्णनो नाम नवम पर्व ।

अथ दशम पर्व ।



भपस्याराधिता सम्यग्भारती परमेष्ठिनां ।
साधुपासांगमस्यास्य भवेत् साधुभवच्छिदे' ॥१॥ इत्याशीर्वादः ।

कुर्युं कुम्भादिसदृशं पदतीर्थावभासकम् ।
अरं चारित्रिनाशाय वंदे मुक्तिवधूवरम् ॥ १ ॥
अथ तासां वतभ्रूणां दृष्ट्वा चंचुविचेष्टिताम् ।
निर्विद्य विद्वांवर्यो जम्बूस्वामी तदर्थकृत् ॥ २ ॥
हा धिगज्ञानमेवैतन्मोहकर्मोदयादिह ।
यत्प्रभावात्तु मन्यंते जीवा दुःखं हि सौख्यवत् ॥ ३ ॥
यथा मरीचिकां पातुं मृगा धावंति वार्धिया ।
तथा प्राणिगणाश्चापि भिच्छोद्भूतार्थकं सुखम् ॥ ४ ॥
यथा कंडूयनं कुर्वन्नातुरो नखरैः खरैः ।
अजानन् स्वस्वदुःखौघं मनुते हि परं वरम् ॥ ५ ॥
तत्सौख्यं यन्निराबाधं सार्वाः स्वात्मसमुत्थय ।
निर्विपक्षमथा नित्यमव्याबाधमतीन्द्रियम् ॥ ६ ॥
इदं स्वास्थ्यं सुखाभासं परं बाधापुरःसरम् ।
बंधहेतुरनित्यं च तद्धेयं हि महात्मभिः ॥ ७ ॥

---

१ सपरं बाधासहियं विच्छिण्णं बंधकारणं विसमं ।
जं इंदिएहिं लद्धं तं सोक्खं दुक्खमेव तहा ॥
इति प्राकृतश्लोकः ।

माया(त्मा)नवमजानानो जनः महापरावत ।
विषयेषु समासक्तः सुखं वदति मूढधीः ॥ ८ ॥
किं चास्मिन्सुखे मग्नो जीवो मज्जति दुर्गतौ ।
योषित्पाशैर्दृढं बद्धो यथा वागुरया मृगः ॥ ९ ॥
आशीर्विषं वदन्त्यन्ये दंदशूकविशेषकम् ।
वृथा वै तदहं मन्ये वदयो योषिदञ्जसा ॥ १० ॥
यासामर्धविलोकैश्च दह्यन्ते हि कामुकाः ।
ज्वलत्कामाग्निना दग्धाः शरापातैर्मृगा इव ॥ ११ ॥
असारेऽपि वधूकाये मोमुह्यन्ते शठाः कथम् ।
त्यक्त्वातीन्द्रियसौख्यं हि सीदति वत दुर्मदा ॥ १२ ॥
यदत्र गर्हितं किंचित्तत्सर्वं स्त्रीकुटीरके ।
सर्वोमूत्रासृङ्मांससंभूत कीकसोच्चये ॥ १३ ॥
सुंदरं चापि यद्वस्तु पूत वा यन्निसर्गतः ।
वपुःसंसर्गतो नूनं याति दुर्गन्धतां क्षणात् ॥ १४ ॥
आलकोलाहलेनासमिमाः सर्वाश्च योषितः ।
मन्ये प्राणिविघाताय धात्रा पाशा विनिर्मिताः ॥ १५ ॥
एवं संचिन्तयन्नास्ते यावत्स्वामी स्वचेतसि ।
तावत्प्रोवाच पद्मश्रीस्तास्वित्सोऽपि वधूः मति ॥ १६ ॥
नाथोऽस्मिन् निर्गुणे पुंसि किं कृतेनापि चाटुना ।
बाणाः कुर्वन्ति किं पीडे मन्मथस्यापि सर्वज्ञ ॥ १७ ॥

---

१ अपिधि भार्या वा विषमस्येति विषधर सर्पः ।
गर्हितं दधति इति वैरदधः दधः । ३ पुरीषं ।

यथापि नर्तनेनापि गानेन बधिरं न हि ।
कातरं किं कृपाणेन किं लक्ष्म्या कृपणं वृथा ॥ १८ ॥
सर्वं सर्पासकारीव वर्तते प्रार्थ्यमानयम् ।
प्राप्तं तपःफलं त्यक्त्वा पुनः कर्तुं समीहसे ॥ १९ ॥
यथा कश्चिन्नरो मूर्खः सिद्धमन्नं स्वसद्मनि ।
त्यक्त्वाज्ञानात्प्रमादाद्वा भिक्षुर्भिक्षामटत्यहो ॥ २० ॥
तपसां हि फलं सौम्य तत्स्वर्गो वा महीतले ।
प्राप्तं चापि न जानाति नूनमभ्यस्तता जडः ॥ २१ ॥
वयं रंभासमा नाथ सर्वं तत्स्वर्गसन्निभम् ।
वपुर्दिव्यं गृहे संपद् दुर्लभं किमतः परम् ॥ २२ ॥
सर्वं स्वाधीनमुत्सृज्य तपः कर्तुं समीहसे ।
तव सा प्राप्स्यते नो वा विचारार्हस्त्वयम् ॥ २३ ॥
सख्यः कथानकं चैकं रम्यं वर्णितभूमिगम् ।
सावधानतया श्राव्यं युष्माभिर्भव्यमस्ति यदि ॥ २४ ॥
शृण्वंति स्म च तास्तिस्रो सामर्ष्याः सकुमारकाः ।
गंभीरवदस्सौम्या घनश्चकथानकम् ॥ २५ ॥
यथात्र हौमिकः कश्चिद्धनदत्ता नाम्नाप्यभूत् ।
तस्य भार्या धनानाम्नी वर्तते स्म मुदान्विता ॥ २६ ॥
तयोर्जातः सुतश्चैको नाम्ना वै सर्वको वशी ।
अप्येककार्की स निष्णातो गृहकार्ये समः शमी ॥ २७ ॥
अथ दैववशात्तस्य हालिकस्य मृता वधूः ।
सरूपा सस्मीपया स्मार्ते दहनाशमपक्षणात् ॥ २८ ॥

१ हौमिकः जाति इति पर्यायेऽपि सर्वत्र ।

हालिकेन ततः पश्चादुद्वाह्याशु सुतं परम् ।
परिणीता परा स्वस्मै वृद्धेनापि सकामिना ॥ २९ ॥
षोडशाब्दमिता सेयं षष्टिवर्षमितः स्वयम् ।
तया सार्द्धं रतिक्रीडां कुर्वन्नास्ते स कामुकः ॥ ३० ॥
अथाऽन्येद्युर्निर्भीय सा कामुकी कामिना सह ।
कथंचित्प्रणयकोपाज्जाता मानमधिष्ठिता ॥ ३१ ॥
ततोऽनुनेतुकामोऽसौ स्वप्रियां तां प्रसादयन् ।
उवाच हालिकः कामी चाटुवाक्यं वचामिति ॥ ३२ ॥
प्रिय प्रिये वदस्वाशु सन्मुखीभूय मां प्रति ।
कोपस्य कारणं किं स्यादद्याकस्मात्प्रिये मयि ॥ ३३ ॥
वदत्येवं मृदूक्त्यापि सानुकूलेऽपि भर्तरि ।
मा मां स्पृश करेणेति सावदत्कोपशालिनी ॥ ३४ ॥
अलं त्वया प्रियेणापि मद्वचोऽकुर्वता शठ ।
अज्ञानाभिज्ञता प्रीतिं तल्लक्षणममानता ॥ ३५ ॥
उक्तं च—
"पानीयं च रसः शीतं परान्नं सादरं रसः ।
रसो गुणयुता भार्या प्रियस्पर्शान्तरी रसः" ॥ ३६ ॥
इत्याकर्ण्य स भार्योक्तमूचे वाच प्रियंवद[1] ।
वद प्रिये मया चाशु कर्तव्यं त्वन्मनीषितम् ॥ ३७ ॥
श्वासितानुनयेनेह साथ पापाशया शुभा ।
नंदन सभस नाम्ना चातुर्येण सुनिश्चयात् ॥ ३८ ॥

१ वो।

श्रुत्वेति कंपमानाऽसौ हास्तिकः पुनरब्रवीत् ।
यद् मुग्धे महादुष्टमेतत्कर्म त्वया कथम् ॥ ३९ ॥
किं भेयस्तद्भयेनापि दर्शयस्व प्रिये मम ।
नं हि कार्यमनुद्दिश्य मंदस्यापि प्रवर्तते ॥ ४० ॥
हास्तिकं सा (प्रिया) वादीद्युक्तिसद्गर्भया गिरा ।
हत त्वस्मिन्महाभेषा मा भीति मृणुव (?) यथा ॥ ४१ ॥
सत्यस्मिन् सुतः केचिद्ये यास्यंति ममोदरात् ।
ते सर्वेऽप्यस्य दासत्वं करिष्यंति न संशय ॥ ४२ ॥
अतोऽयं सर्वथा वध्यो नूनं भर्तर्विभेरि यत् ।
मारिते त्वत्र ते सर्वे स्वाधीनाः स्यु सुतादराः ॥ ४३ ॥
एवं तद्वचनैरीषत्समस्तसन्मानसोऽपि सः ।
किंचित्कारुणिकस्तत्र हास्तिक[2] पुनरब्रवीत् ॥ ४४ ॥
मुग्धे निरपराधं तं मारयामि सुतं कथम् ।
अपि चैकं सुतस्यास्य चोदारं विनयान्वितम् ॥ ४५ ॥
यदि वा मारिते तस्मिन् राज्ञो दंडभयो भवेत् ।
बांधवाश्चापि ते सर्वे कोपं दास्यंति सत्वरम् ॥ ४६ ॥
पुनर्दुर्लक्षिता सा च भर्तारं हास्तिकं प्रति ।
प्रपंचेन सर्वथा भर्तरन्यथा नापयी सुखम् ॥ ४७ ॥
अतः परं तु मद्गर्भे ये भविष्यंति सूनवः ।
तद्दत्ते ते करिष्यंति निर्विघ्नं सुखमापयाः ॥ ४८ ॥
अप्युपायं च ते वच्मि यथा तस्य वधं कुरु ।
नापि नृपतिभीतिः स्यान्नापि कुप्यति बांधवाः ॥ ४९ ॥

१ प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते इति सुभाषितं । २ मारकत्वं ।

यदासौ लांगलं मंदं मंदं वाहयति स्फुटम् ।
तदा स्वमप्यतः पश्चाद्वाहयातीव वेगतः ॥ ५० ॥

खरशृंगैर्बलीवर्दैः प्रातोदादसिताडितैः ।
मारयैनमनायासाद्यथापूर्वनिवेशितम् ॥ ५१ ॥

एवं कृते न भूपालो वद ज्ञास्यति ते क्वचित् ।
नापि बन्धुजना सर्वे युष्मद्दोषापवादा मनाक् ॥ ५२ ॥

भार्योक्तं प्रतिपाद्यासौ कामान्धो हालिकः कुधीः ।
तथास्त्विति बभाषे च तामाश्वास्य पृथग्जनः ॥ ५३ ॥

आलिंग्याभिमुखीभूय संतुष्टासौ स्वमानसे ।
कामकेलिं तया चक्रे प्रिया सुरतिपण्डिता ॥ ५४ ॥

अथ तत्सूनुना सर्वमाकर्णितं यथोदितम् ।
प्रच्छन्नोपसृतं वृत्तं समक्षमनुरक्तयोः ॥ ५५ ॥

प्रातरुत्थाय मार्गेण समागात् सवसः सुतः ।
हालिकस्तदनु भावो हन्तुकामः स्वनन्दनम् ॥ ५६ ॥

पृष्ठतोऽपि यावत्स जनकस्तत्र गच्छति ।
तावत्तत्पदनेनाशु तेभि संधारितं हलम् ॥ ५७ ॥

अथ गत्वा ददर्शासौ पामरस्तत्समं परम् ।
मूलान्मूलं हि कुर्वाणं खासिक्षेत्रं हलाग्रतः ॥ ५८ ॥

इत्याय हालिकोऽत्यादौ रे पुत्र महाशठ ।
भ्रात्या (?) कष्टकरं मूलमर्यच्छन्न करोषि किम् ॥ ५९ ॥

१ हलम् । २ नीचजनः ।

तथाथ पुत्र मां तात पीनत्वात्सस्यसम्पदम् ।
सोन्मूल्य रोपयिष्यामि नवोत्पातमसुखास्पदम् ॥ ६० ॥

समाकर्ण्य वचस्तस्य पित्राप्युक्तं स्वबुद्धितः ।
सिद्धं त्वमसि रे पुत्र नर्म्यं कांक्षसि रे जड ॥ ६१ ॥

छलान्वेषी स पुत्रोऽपि वचस्योपे समुद्यवाक् ।
तावेवं चेत्स्मरस्याशु रामौ यज्ञस्थितं त्वया ॥ ६२ ॥

इत्याह मां सुखस्थाने पुत्रं वांछसि मायिनम् ।
सुखार्थं कान्तया सार्द्धं तात बुद्धिस्तवाल्पकी ॥ ६३ ॥

पुत्रवाक्यात्स मूर्खोऽपि जातः मतिविशुद्धवां क्षणात् ।
दुराग्रही स्वयं बाले नैतु भक्त्या न मार्दवम् ॥ ६४ ॥

अथवच्चेऽप्येवं तद्वत्स्वामी जम्बूकुमारकः ।
स्वाधीनाः संपदस्त्यक्त्वा संक्लिष्टाः पुनरीहते ॥ ६५ ॥

एतत्सर्वं कथार्थं श्रुत्वा प्रोवाच धीधनः ।
निरीहोऽपि यथा वक्ति धर्मास्थान मृषोगिराद् ॥ ६६ ॥

प्रियाः कथानकं चैकं भवभ्रान्तिविघातकम् ।
सावधानतया श्राव्यं भवतीभिर्मयोदितम् ॥ ६७ ॥

विन्ध्याचले महाटव्यां यूथवर्ती मतंगज ।
वर्षापूरभरेणैव नर्मदां मधि सोऽप्यगात् ॥ ६८ ॥

तत्कलेवरं[1] कश्चिद्भक्षमाणोऽपि वायसः ।
मन्वगात्स करीकस्या लोलुपः पिशिताशितः ॥ ६९ ॥

१ तत्कलेवरोपरि स्थितः ।

मध्येमर्क यथाधावत्पतितोऽसौ महांबुधौ ।
काकस्त्वपिश्रितग्रासरससंलुब्धमानसः ॥ ७० ॥
भक्षितं वह्गुस्त्र्णं मत्स्याद्यैर्जलचारिभिः ।
काकेन गंतुमारब्धमुड्डीनेन महाम्बुधौ ॥ ७१ ॥
उड्डीयाड्डीय यावत्स व्योम्नि पश्यति दिङ्मुखम् ।
स्थानं ग्रामं तरुं वेलं विश्रामार्थं न किंचन ॥ ७२ ॥
कियत्कालं स संभ्रम्य पतितोऽथ महार्णवे ।
मांसैकलंपटमिस्तुच्छा वराका पचतां गत ॥ ७३ ॥
यथा तन्मांसलुब्धेन प्राप्ता चापदनीदृशी ।
तथाहं न भविष्यामि कांता कांचनपुत्रयाः ॥ ७४ ॥
भोक्तारं चाधुना भोगान् पुण्यरससम्पर्कसंभवान् ।
तत्याकान्मां निमज्जंतमुद्धरत्को भवांबुधौ ॥ ७५ ॥
इत्थं तेन प्रतिध्वस्तं तत्पद्मश्रीकथानकम् ।
कनकश्रीरथोवाच कथां कौतूहलावहाम् ॥ ७६ ॥
कैलासे पर्वते रम्ये कपिश्चैकोऽभवत्किल ।
दैवयोगाद्यथा पेथुः शैलशृंगमधिष्ठितः ॥ ७७ ॥
पतित्वाथ ततो वेगात्संक्षर्णरितविग्रह ।
अकामनिर्जरां कुर्वन् मृत्वा जातः खगाधिपः ॥ ७८ ॥
एकदा स मुनिं मत्वा पप्रच्छ स भवांतरम् ।
मुनिस्तूचे यथाहृत्तं सावधिज्ञानचक्षुषा ॥ ७९ ॥
पुरा जन्मनि निर्येश त्वमासीत्कपिसत्तम ।
कैलासात्त्व पतित्वाशु मृत्वा जातो खगः शुभात् ॥ ८० ॥

भुक्त्वेविमचनं रम्यं पावनं मुनिनोदितम् ।
निश्चिकाय स्वगेनाशु स्थापितं हृदि दुर्धिया ॥ ८१ ॥
यत स्थानात्कपिर्मृत्वा जातो विद्याधरो नरः ।
नूनं ततः स्वगो मृत्वा यथोऽहं भविता क्षणात् ॥ ८२ ॥
अतएव मयावश्यं कर्तव्यं मरणं वरम् ।
तत कैलासकूटाग्रात् पतित्वाय तथाविधम् ॥ ८३ ॥
विमृश्य चैकदास्थादीत्सगो निजमियां प्रति ।
यथा मनीषितं स्वस्य प्राणघातस्य सूचकम् ॥ ८४ ॥
प्रिये सर्वं हि प्राप्यं स्वगमोक्षात्रिकं फलम् ।
कथकं कैलासकूटाग्रात्पातेनाशु विभ्रमया ॥ ८५ ॥
भर्तुर्वचः समाकर्ण्य विलक्षणापातिदुःखिता ।
भार्या विद्याधरस्योच्चैर्विहस्य क्षीणमानसा ॥ ८६ ॥
कांत कांत महामाझ वृथा मरणमिच्छसि ।
विद्याधरोऽसि नाथ त्वं दुष्कर्म किमतः परम् ॥ ८७ ॥
उल्लंघ्याय प्रियावाक्यं कैलासशृंगात्पपात सः ।
मृत्वा दुर्ध्यानयोगेन यातो रक्ताननः कपिः ॥ ८८ ॥
ससम्पो यथा स्वगो मूर्खो भुक्त्वा स्वाधीनसंपदः ।
मृत्वाप्यापन्मयी जातस्तथास्यात्कीयनायकः ॥ ८९ ॥
मातादयापि महारम्यास्त्यक्त्वा सर्वा हि सम्पदः ।
भाविन्यस्ताः समीहेत प्राप्येत तपसा न वा ॥ ९० ॥
जम्बूस्वामी तदाकर्ण्य सर्वं कनकश्रियोदितम् ।
भावाचीधरं व्याजादेक किंचित्कथांतरम् ॥ ९१ ॥

विंध्याद्रौ बलवान्कश्चिदासीत्कामातुरः कपिः ।
असहिष्णुः कपीन् सर्वान् हन्यमानो वनेचरान् ॥ ९२ ॥
यावं जातं स्वभार्यायाः स्वपुत्रमपि हन्यते ।
एकाकी सुरसक्रीडां कर्तुं (कामो ?) वनांतके ॥ ९३ ॥
अथैकदा तत्सुतोऽपि जातो न ज्ञायते तदा ।
वैभारभूद्विगाद्गोप्यः स्थितो भूतसा ॥ ९४ ॥
ततः क्रमेण जातोऽसौ युवा स्मरातुरः कपिः ।
(स) भार्या मन्यमानश्च मातरं रंतुमुद्यमी ॥ ९५ ॥
— न केनापि तत्पित्रा वानरेण सम(मीसि)क्षतः ।
समुद्भूतरुषा तेन हंतुं नीतो बलादिह ॥ ९६ ॥
— स्कारस्कास्यश्च विभीषणः ।
सोऽपि दंतैर्नखाग्रैश्च जातकोपोऽदशत्कपिम् ॥ ९७ ॥
तदा तौ मिथ   द्धौ युद्धमुल्बणम् ।
नखदंताभिघातैस्तैर्मर्मरौ जनकात्मजौ ॥ ९८ ॥
मध्ये वृद्धकपिर्वेगादपक्षा — — हाम् ।
रुष्टः कोपपरः पृष्ठी निर्भीकस्तरुण कपिः ॥ ९९ ॥
तावधावद्विनस्ति स्म वानरं वृद्धमेव तम् ।
—विमयीभूत्वा व्याकुलः स्वगृहं प्रति ॥ १०० ॥
अथ पिपासया तूर्णं तृषार्तशुष्कताल्लकः ।
संप्रविष्टो जले मीपयोये सर्पकिले ॥ १०१ ॥
पीत्वाथ कल्लषं तोयं ततो निःसर्तुमक्षम ।
आतुरा विषपार्येषु मृतस्तत्र कुधीर्यथा ॥ १०२ ॥

तथा नाहं भवाम्यत्र संसारे प्रियवादिनि ।
निर्ममं विषयपूर्वैः कः को मां हि समुद्धरेत् ॥ १०३ ॥
इत्युत्तरश्रवणादेव कनकश्रीरभीरभूत् ।
विनयश्रीस्तृतीयोऽथ सा कथाकोपकौतुका ॥ १०४ ॥
एकः कश्चिद्दरिद्रो हि सत्तनामास्ति कुत्रचित् ।
मध्येवनं स प्रत्यूषे याति काष्ठादिहेतवे ॥ १०५ ॥
ततश्चेन्धनमानीय विक्रीयाथ यथार्थतः ।
कष्टेन वर्तनं तस्य भवेत्तावत्तराद्यथात् ॥ १०६ ॥
एकदा बहुमूल्यस्याक्षम्यं किंचित्ततोऽधिकम् ।
भाजनाद्यधिष्ठं स्यादेकं रत्नकमागतम् ॥ १०७ ॥
ततो विमृश्य दीनोऽसौ भार्यया समकं तदा ।
आपद्गताविहेतीस्वद्भूमौ निक्षिप्तवानिह ॥ १०८ ॥
अथ कश्चित्तवासी च साध्वसात्तत्र कानने ।
रत्नभांडं सुनिक्षिप्य गतस्तीर्थादिकेषु सः ॥ १०९ ॥
काननं भ्रमता तेन दृष्टं तद्दैवयोगतः ।
निक्षिप्तं च ततोऽन्यत्र क्षोमायात्र विमृश्यता ॥ ११० ॥
अस्याहं रत्नमेकैकं ग्रहीष्यामि यथावत ।
इत्यानंदमनाश्चासौ वैभापूर्णे स्वसद्मनि ॥ १११ ॥
गत्वा गेहे दरिद्रोऽसौ भार्यां प्रति निवेदयत् ।
रत्नभांडं मया प्राप्तं प्रिये पुण्योदयादिह ॥ ११२ ॥
स्थापितं तच्च कांतारे मया चाद्य प्रयत्नतः ।
सत्यं जानीहि हे कांते नान्यथा वच्मि कर्हिचित् ॥ ११३ ॥

श्रुत्वाश्चर्यवती भार्या जाता रोमांचिता तदा ।
भद्रं तवास्तु हे कांत चिरंजीवी त्वकं मम ॥ ११४ ॥
अथ मयोदितं मन्त्रमवश्यं क्रियतां त्वया ।
संचितो रूपकः पूर्वं योऽसौ संगृह्य लसताम् ॥ ११५ ॥
सोऽपि तत्रैव संस्थाप्यो रत्नभांडे सुकौशलात् ।
त्वमहं च तथापूर्वं कुर्याव कर्म सांप्रतम् ॥ ११६ ॥
भार्यापितं दरिद्रेण मोहाद्भार्योदितं वचः ।
वरं वरं त्वयोक्तं यत्कांते वैदग्ध्यशालिनि ॥ ११७ ॥
ततस्तौ दंपती स्यातां कार्यगुप्तरसमौ ।
पद्नाच्छिरसा नीत्वा विक्रीय च कुक्षिंभरौ ॥ ११८ ॥
एवं व्यतीयमानेऽत्र काले कियति चानयोः ।
दैवाद्रत्नपतिः सोऽप्यमागतस्तत्र कानने ॥ ११९ ॥
यथास्थाने निरीक्ष्याशु न लब्धं रत्नभांडकम् ।
ततश्चायमभवान् जातो यत्र तत्र निरीक्षणे ॥ १२० ॥
चिराल्लब्धं धनेशेन रत्नभांडं स्वपुण्यतः ।
नीत्वोत्साय गतः सोऽयं सानंदास्यास्यं भवि ॥ १२१ ॥
अहो पुण्यवशाल्लक्ष्मीर्यत्रयत्रापि समायतः ।
विनष्टाप्यन्यथानेन कथं लब्धा सुखादिह ॥ १२२ ॥
एकदोद्घाट्य कुंभं स रिक्तं यावत्स पश्यति ।
हत्वा हत्वा शिरः स्वीयं रोदिति स्म शठोऽधमः ॥ १२३ ॥
रत्नभांडेन तेनाहं मम पूर्वोऽपि रूपकः ।
संचितोऽपि विनष्टोऽमुकेन सार्द्धं स्वदुष्कृतात् ॥ १२४ ॥

हा वंचितोऽस्म्यहं नून दुर्दैवेन विपाकिना ।
यतो लब्ध्वमपि स्याम दानायाय न शक्नुय ॥ १२५ ॥
स्वपर्शां शृणवे नैव मत्स्मीं भासामर्पाइ यः ।
पश्चात्तापपरो मूर्ख संसयतस भविष्यति ॥ १२६ ॥
जम्बूस्वामी निशम्यैतद्विनयश्रीकथानकम् ।
प्रोचे कथांतरं व्याजाद्वाक्यं मत्युत्तरप्रदम् ॥ १२७ ॥
आसीद्भूमिमन्दर' कश्चिन्नजुल्कपदत्त इतीरितः ।
वाणिज्याय जगामाशु कांतारं वर्त्म दुर्गमम् ॥ १२८ ॥
दुर्दैवात्तत्र सम्प्राप्तो गजो दुर्मदभीषण ।
धावं तं वणिजं कापालकांत इव निर्दयः ॥ १२९ ॥
तद्भीतो वणिजां नाथः पलायपरस्ततः ।
वट्यारोहमाकांक्ष्य स्थित कूपांतरालतः ॥ १३० ॥
तत्र मारोहमूलं वल्कुर्वात मूषकद्वयम् ।
सितासितं च वर्णेन तद्दर्शं वणिग्वरः ॥ १३१ ॥
चिंतितं तेन चित्ते स्व किं कर्तव्यं मयाधुना ।
कूपगर्ते पतिष्ये चेच्छिन्ने शतलंडवा ॥ १३२ ॥
चिंतयमिति यावत्स स्थिता धीरतया वणिक् ।
तावत्कूपस्य भूभागेऽजगर हष्टवानहो ॥ १३३ ॥
कंपमानाऽस्य तद्भीतरतर तत्र कूपके ।
पार्श्वेवाल्मीकरंध्राच्च निर्गता भीषणाहयः ॥ १३४ ॥
यावत्सं वणिजो दुःखं तावत्तापत सकले ।
चिंताव्याकुलचित्तस्य कः समा वत्सुर्मता ॥ १३५ ॥

नागोऽप्य रोषधावत्य यदभूत्तत्समुद्यमी ।
आत्मस्कंधप्रवेशेनेह ध्वनति स्म महाद्रुमम् ॥ १३६ ॥
स्थितस्तत्र वटाभासे च्युता माक्षिकसद्मनः ।
एकस्तस्योन्मुखस्यास्ये मधुबिंदुरपीपतत् ॥ १३७ ॥
स तेन निर्वृतिं लेभे यथा स्वर्गं मनीषितम् ।
उत्तमं स्थानमेवैतन्मया मार्तं यदमिति ॥ १३८ ॥
अत्रांतरे खग कश्चित्संचरन्व्योमवर्त्मनि ।
दृष्ट्वा दुःस्थं तमुत्तीर्य विमानादित्यवीवदत् ॥ १३९ ॥
रे रे मूढ खगेशोऽहं त्वामुद्धर्तुमनं स्वर ।
मामकं भुजमालम्ब्य निःसरस्वाशु सत्वरात् ॥ १४० ॥
श्रुत्वावादीत्स मूढात्मा मधुसास्वादलोलुप ।
प्रतीक्षस्व खगेश त्वं मन्मुखे संपतन्मधु ॥ १४१ ॥
तावत्सुखेन तिष्ठामि जीव्ये चाहं यथास्थित ।
मधुबिंदुरसाभावात्ततो निःसरणेन किम् ॥ १४२ ॥
भूयमपि कृपाक्रांत खगो भूयोऽवदत्सुधी ।
रे रे मूढानभिज्ञोऽसि मर्तुमिच्छसि किं हठात् ॥ १४३ ॥
नेक्षसे मरणं पार्श्वे स्थितं ते दुर्निमित्ततः ।
बिंदुमात्रस्य लोभेन मा याहि यममंदिरम् ॥ १४४ ॥
आलकोलाहलेनालं यदि जीवितुमिच्छसि ।
आलंबयस्व मे बाहुं विलंबाऽनुचितस्तव ॥ १४५ ॥
इत्यादिविविधैर्वाक्यैर्बोधितोऽपि खगेशिना ।
नागमन्मार्दवं मूर्खो रसनेन्द्रियवञ्चित ॥ १४६ ॥

आकर्ण्येदं वचस्तस्य मर्तुकामस्य दुर्दशः ।
विद्याधरो जगामाशु सत्वरं स्वास्पदं प्रति ॥ १४७ ॥
अथ प्राप्तः स पंचत्वं सरथाश्वपतीरितः ।
श्वपाकुलीभूय भ्राम्यति हाहाकारं रवमिति ॥ १४८ ॥
कूपश्रीपतद्देवासौ सम्पदत्ता वणिक्सुतः ।
गुल्मसूपकसंछिन्नभयारोपसमन्वित ॥ १४९ ॥
कूपांत मपतमाशु मसिताऽजगरेण सः ।
कालरूपेण तेनाशु सम्पदत्तो वणिग्यथा ॥ १५० ॥
तथाहं न विश्वासाम्मि सुखलेशस्य हेतवे ।
कालवस्त्र महाभीमे विद्याभ्यासरतो भवन् ॥ १५१ ॥
निभृता स्वामिवाक्यास्ता विनयश्रीः सुधीरपि ।
अथोवाच कथां तुर्यां रूपश्री रूपशालिनी ॥ १५२ ॥
अथैकत्र समायात प्रावृट्कालो मनोहरः ।
नवांभोदैर्महीमार्गं दुर्गमकारणं जगात् ॥ १५३ ॥
रन्ध्रच्छिद्राणि सर्वाणि वारिपूरैर्महीतले ।
विपु ज्ञा(?)न्धारसंभवसर्पापिजनकर्दकाः ॥ १५४ ॥
गमनागमनाभ्यां च कर्दमीभूतभूतलः ।
महादुर्दिनतमस्तोमतिराहितदिवाकरः ॥ १५५ ॥
अथ चैवविधे काले वर्तमाने महीतले ।
कुंभकारः क्षुधाक्रांता निगता मृत्कर्ये बिलात् ॥ १५६ ॥
तेन पर्यन्तगा दृष्टौ तदमूलीअतिनीपणः ।
संमनाभाऽविपीमरसथमभिज्ञासयम कपः ॥ १५७ ॥

१ मरद्यः इत्यमरः स्यात् इत्यमरः ।

कृष्णसर्पं समालोक्य कृषकस्य पुरःस्थितम् ।
तथास्थे कृकलासोऽथ भीतकम्पितगात्रो भयात् ॥ १५८ ॥
भीषिष्येऽहं कथं देव केनोपायेन सांप्रतम् ।
चिंतयन्निति सद्गात्रिविशेश नकुलालय ॥ १५९ ॥
नागोऽपि तमनुप्राप्य छिद्रे छिद्रशतान्विते ।
क्षुधार्तनामरो कास्या प्राणिनां प्राणिसंकटे ॥ १६० ॥
तथाप्यग्रे स्थित मुक्त्वा कृकलास सरीसृपः ।
गच्छति स्म ततोऽप्यग्रे तत्कुटुम्बाभिलाषया ॥ १६१ ॥
विशंस्तत्र बिले दृष्ट्वा नकुलैः स विलेशय ।
भक्षितस्तैः क्षुधाक्रांतैः समेत्य पशुभिर्यथा ॥ १६२ ॥
तथाय मामकः स्वामी विवेकरहितो जडः ।
भस्यप्रास त्यजंल्लक्ष्मीं यथप्राप्यो भविष्यति ॥ १६३ ॥
श्रुत्वा जम्बूकुमारोऽसौ वाक्य रूपश्रियोदितम् ।
ऊचे तत्प्रतिबोधाय रम्यं किंचित्कथांतरम् ॥ १६४ ॥
आसीत्स जम्बुको कश्चित्त्र विन्ध्याचलतले ।
एकदा तु बिभार्येर्या जगाम नगरांतरम् ॥ १६५ ॥
तत्र जरद्रव वैकं मृत दृष्ट्वा स हर्षित ।
अद्य संपत्स्यते नून यथास्य मे मनोरथः ॥ १६६ ॥
चिंतयित्वा प्रविष्टः स तत्कलीवरेऽपमर ।
भक्षयन्निषितं तस्य नाशासीद्रमनीं गताम् ॥ १६७ ॥

१ बुभुक्षितः किं न करोति पापं । इति हितोपदेशे । २ सर्पः । ३ रात्रौ ।
४ स्वदयनं ।

प्रातःकालेऽथ संप्राप्ते दृष्टः पौरजनैरिह ।
वदस्थिपंजराशिर्यक् निःसर्तुमपि न क्षमः ॥ १६८ ॥
चिंताव्याकुलितः सोऽयं चिंतति स्म निजे हृदि ।
अद्य मे मरणं नूनं संप्राप्तं दैवयागत ॥ १६९ ॥
अथ पौरजनः कश्चित्तस्य कर्णद्वयं यथा ।
पुच्छकं च छिनत्ति स्म सिद्धौषधिधिया कुधीः ॥ १७० ॥
चिंतितं जम्बुकेनेह जीविष्ये चेदहं मनाक् ।
ईदृशोऽपि कथमिहं न नष्टं न किमप्यहो ॥ १७१ ॥
अथ कश्चिद्द्विजस्तस्य रदानुत्पाट्य चाश्मना ।
नीत्वागमद्गृहे स्वस्य वशीकरणहेतवे[1] ॥ १७२ ॥
अचिंतयत्तदा सोऽपि दैवात्क्षीप्ये कथंचन ।
दृष्टोऽपि मदापेऽद्य नूनं यामि वनांतरम् ॥ १७३ ॥
चिंतयन्निति तथाशु श्वानाद्यैर्मारितः क्षणात् ।
भक्षितश्च शृगालोऽसौ रसनावशमी यथा ॥ १७४ ॥
तथाहं न भविष्यामि विषयाशा न सुस्थधीः ।
प्रिये जानीहि रे मात्रा हस्तिनाशुत्पथे पतेत् ॥ १७५ ॥
मामधुर्कं हृषीकार्थैरामेत्यां कः समुद्धरेत ।
न परीक्षाक्षमं चैतद्वचोऽपि तव सम्मतम् ॥ १७६ ॥
इत्थं नानाविधाकाराद्यैः संलापैस्तया चालितम् ।
न चचाल मनस्तस्य मनागपि महात्मनः ॥ १७७ ॥
अथोत्तरं सुरासक्तो नाम्ना विद्युच्चरो नरः ।
निशि कामस्तागराभिर्गतघोरकर्मणि ॥ १७८ ॥

---

1 उत्पाद्य ।

सौधं सौधं भ्रमन्नेव चिंतयंस्तस्करेक्षणात् ।
सोऽर्हद्दासगृहे दैवात्प्रविष्टो दुष्टधीः खलु ॥ १७९ ॥
रम्यागारं कुमारस्य प्राप्तवानिति व्यचिंतयत् ।
आदौ रत्नानि गृह्णामि किं वा पश्यामि कौतुकम् ॥ १८० ॥
वधूवरद्वयोरेव मिथःसंजल्पकौतुकम् ।
शृणोम्येकाग्रतो नूनं ततो मुष्णामि सद्धनम् ॥ १८१ ॥
इति निश्चित्य चित्ते स्वे शुश्रूषुः स्याद्द्वयोरपि ।
वार्तां विद्युच्चरो नाम्ना दस्युकर्मरतोऽपि यः ॥ १८२ ॥
श्रुत्वा द्वयोर्यथा वृत्तं वृत्तांतं वरकन्ययोः ।
परमाश्चर्यपन्नो जातः सोऽपि विद्युच्चरस्तदा ॥ १८३ ॥
अहो धैर्यमहो धैर्यं वर्णितुं केन शक्यते ।
यद्युवोऽपि मनाग्धैर्यं नापि भिन्नं वधूमनैः ॥ १८४ ॥
अत्रांतरे कुमारस्य माता सा दुःखपूरिता ।
गमागमौ करोति स्म व्याकुला तत्र वर्त्मनि ॥ १८५ ॥
पश्यति स्म महामोहाद्गृहद्वारं मुहुर्मुहुः ।
किं जातमद्य किं भावि वर्तमानमथात्र किम् ॥ १८६ ॥
कामिनीकंठपाशे किमपतत्किमुताऽथवा ।
इति संशयदोलायामारूढा दुःखिता सती ॥ १८७ ॥
कुड्यपार्श्वेऽत्र संलीनं तस्करं संददर्श सा ।
अवादीद्भीतभीता च कः कोऽस्त्यत्र महानिशि ॥ १८८ ॥
ततो विद्युच्चरोऽवादीन्मातर्मा गच्छ साध्वसम् ।
अहं विद्युच्चरो नाम्ना चौरोऽस्मीह धरातले ॥ १८९ ॥

चौर्यकर्म करोम्यत्र नित्यं स्वनगर वसन् ।
अतःपूर्वं हृतं मातर्बहुशोऽपि महाधनम् ॥ १९० ॥
मुषितं स्वद्गृहादेव स्वर्णरत्नादिकं मया ।
किमत्र बहुनोक्तेन यावदद्य विधीयते ॥ १९१ ॥
अथोवाच कुमारस्य माता विद्युच्चरं प्रति ।
वत्स यद्रोचते तुभ्यं तद्गृहाण ममालयात् ॥ १९२ ॥
ततो विद्युच्चरेणोक्तं वाक्यं जिनमतीं प्रति ।
मातर्मन्यस्व मे चिन्ता न स्याद्य धनार्जने ॥ १९३ ॥
किंतु कौतूहलं चैतन्मया दृष्टमपूर्वजम् ।
यद्युषो न गता निद्रा कन्यासैर्वरयापिताम् ॥ १९४ ॥
कारणं हि किमत्राहो मातरप्रातिती वद ।
अतस्त्वं मे स्वसा धर्मादहं भ्राता यथा तव ॥ १९५ ॥
श्रुत्वा जिनमती प्रोच धैर्यमालम्ब्य तं प्रति ।
भ्रातरेकोऽस्ति पुत्रो मे सुधीः कुलदीपकः ॥ १९६ ॥
मोहादुद्वाहितोऽप्यत्र तपो वाञ्छेद्विरक्तधीः ।
आसूर्योदयमस्यास्ति नियमस्तपसे ध्रुवम् ॥ १९७ ॥
प्रातर्मुनिरसौ दीक्षां ग्रहीष्यति न संशयः ।
तद्वियोगकुठारेण मे मनः खण्डखण्डताम् ।
नीयतेऽतोऽधुना भ्रातर्जागर्तास्मि चलचेतसा ॥ १९८ ॥
द्रष्टुं पुत्रोत्सवं दैवाद्वधूभिः सह संगमम् ।
मुहुर्मुहुर्दुर्लभतरं व्याकुलार्ता विलोकये ॥ १९९ ॥
श्रुत्वा जिनमतीवाक्यं जातः कारुणिको महान् ।
ऊचे मातर्मया ज्ञातं सर्वमेतत्कथानकम् ॥ २०० ॥

मा बिभीस्त्वं सुसाध्येऽस्मिन् कार्ये कार्यविदा मया ।
यथाकार्यविधित्सार्थे मधु मां हि प्रवेशय ॥ २०१ ॥
मोहनं स्तंभनं मंत्रं तंत्रं चापि वशीकरम् ।
यथावदुर्घटं किंचित्तत्सर्वं हेलया क्रिये ॥ २०२ ॥
अद्य चेद्भूपवनसरोजालीमधुव्रतम् ।
त्वत्सुतं न करोम्यत्र तदेयं मे गतिर्ध्रुवम् ॥ २०३ ॥
एवं कृतमतिस्तोऽसौ यावदास्ते पतिः स्वयम् ।
गत्वा जिनमती तत्र तद्द्वारे सनके स्थिता ॥ २०४ ॥
अङ्गुल्यग्रैः कपाटस्य युगलं तर्जयत्यपि ।
नोवाच व्रीडया किंचिच्चातुर्यैकनिधिस्तदा ॥ २०५ ॥
अररद्वंद्वमुद्घाट्य नीतांतः सूनुना तदा ।
आशीर्वादनपरा जाता ससभा मधुरा सती ॥ २०६ ॥
अथ जम्बूकुमारेण विज्ञप्ता जिनपादयो ।
त्वरितं वद भो भ्रातः किमत्रागमकारणम् ॥ २०७ ॥
ऊचे जिनमती पुत्र त्वयि गर्भस्थितेऽगमत् ।
अनुजोऽस्य मामको भ्रातर्वाणिज्यार्थं विदेशके ॥ २०८ ॥
इदानीं स समाकर्ण्य पुत्रोद्वाहमहोत्सवम् ।
दूरादप्यागतो द्रष्टुं युष्मत्संदर्शनोत्सुकः[1] ॥ २०९ ॥
श्रुत्वा जिनमतीवाक्यमूचे जम्बूकुमारकः ।
आनयस्वाशु भो मातरागतं मम मातुलम् ॥ २१० ॥
पुत्रस्याज्ञां समादाय माता नीतः समभ्यगात् ।
दस्युर्विद्युच्चरो नाम्ना तत्समीपं समागतः ॥ २११ ॥

१ कम्पम् ।

मामामातुसमालोक्य जम्बूस्वामी स्वगौरवात् ।
आलिलिंग महास्नेहात्तल्पेकादुत्थितो त्वरा ॥ २१२ ॥
पृच्छति स्माय सं स्वामी मार्गोद्भिकुशलं वरम् ।
एतावत्सु दिनेपूच्चैः क स्थितं मातुल त्वया ॥ २१३ ॥
श्रुत्वा विद्युच्चरोऽप्यादीद्भागिनेयप्रिया तदा ।
वाणिज्यस्य कृते सौम्य शृणु यत्र मया स्थितम् ॥ २१४ ॥
दक्षिणस्यां दिशि प्राप्य समुद्रं मलयाचलम् ।
पटीरविद्रुमाकीर्णमत्रोत्तुंगमनोहरम् ॥ २१५ ॥
अगम्यं हि सिंहलद्वीपं केरलं देशमुत्तमम् ।
द्रविडं चैत्यसद्धारामं जैनलोकपरिवृतम् ॥ २१६ ॥
चोलं कर्णाटसंज्ञं च कांबोजं कौतुकावहम् ।
कांचीपुरं सुकांत्या वै कांचनाभं मनोहरम् ॥ २१७ ॥
कौंतलं च समासाद्य सद्धे पवनमुत्तमम् ।
महाराष्ट्रं च वैदर्भदेशं नानाजनाश्रितम् ॥ २१८ ॥
विचित्रं नर्मदातीरं प्रवत्र विंध्यपर्वतम् ।
विंध्याटवीं समुल्लंघ्य तत्रस्थसिंहव्याघ्रम् ॥ २१९ ॥
आहीरदेशं पेचर्लं मृगुकच्छतटं महत् ।
यत्र श्रीपालमूपालो यवनकोऽपि जिनः श्रुतः ॥ २२० ॥
कोङ्कणं नमरं चाथ किष्किन्धनगरं स्फुटम् ।
इत्यादिकौतुकान्येपि दृश्य वै कृतमानहम् ॥ २२१ ॥
पश्चिमायां च सौराष्ट्रदेशं संख्यमानहम् ।
अनिशं तीर्थकर्तुर्यो पंचकल्याणपावनम् ॥ २२२ ॥
यत्रोर्जयादिशृंगेषु नेमिनाथो जिनेश्वरः ।
त्यक्त्वा राजीमतीं भार्यां कृतवांश्च तपश्चिरम् ॥ २२३ ॥

संपद संति सर्वाश्च तत्र को वर्णयेत्कविः ।
यतो मुक्तिमगात्रेमिः यदुवंशविभूषणः ॥ २२४ ॥
मित्रमाळ विशालं च गच्छाऽऽर्द सर्बुदाचलम् ।
लाटदेशं महारम्यं सर्वसंपत्समन्वितम् ॥ २२५ ॥
चित्रकूटं गिर सौम्यं देशं माळवसंज्ञकम् ।
पारियात्रमथास्याथ देशं जैनालयाङ्कितम् ॥ २२६ ॥
उत्तरस्यामथो दृष्टा मया शाकंभरी पुरी ।
जैनचैत्यालयाकीर्णा मुनिवृन्दैः समाश्रिता ॥ २२७ ॥
काश्मीरं करहाट च सिंधुदेशसमस्तकम् ।
दृष्टवानेकशा चाह किं दूर व्यवसायिनाम् ॥ २२८ ॥
ततः पूर्वदिशाभागे कम्बोज गौडदेशकम् ।
अंगं वगं कलिंगं च जालन्धरमनुक्रमात् ॥ २२९ ॥
वाणारसीं कामरूप दृष्टवानहमादरात् ।
यद्यद्दृष्टं मया पूर्वं तत्सर्वं कथ्यते कियत् ॥ २३० ॥
इति विविधकथौघं सद्विवेकी स शृण्वन्
परपरिचयभीत कामिनीमध्यसस्थ ।
तदनुविरतचित्तो चौरवाक्यं च किंचित्
जयति जगति पूज्यः स्वामिजम्बूकुमार ॥ २३१ ॥

इति श्रीजम्बूस्वामिचरित्रे भगवत्श्रीपश्चिमतीर्थकरोपदेशानुसरित
स्याद्वादानवद्यगद्यपद्यविद्याविशारदपण्डितराजमल्लविरचिते
साधुपासाख्यसाधुटोडरसमभ्यर्थिते मार्गाचतुष्ककथा-
विधुच्चरागमनवर्णनो नाम दशमं पर्व ॥ ८ ॥

अथ एकादश पर्व ।

धर्मवृद्धिमसाधाद्यै सर्वेऽप्यीष्टा भवतु वः ।
साधुपासांगजस्यार्धो वव श्रीसाधुर्धीश्वर ॥ १ ॥ इत्याशीर्वादः ।

मल्लि मोहमहामल्लप्रविमल्लमहं स्तुवे ।
मुनिसुव्रतमाम्नातसुव्रतापवर्गसौरविकम् ॥ १ ॥
अथ विद्युच्चरोऽप्यानीन्मयां मातुलसैतकः ।
मार्दवोद्वाधमिच्छुस्तं जम्बूस्वामिनमंजसा ॥ २ ॥
अहो जम्बूकुमार त्वं महाभागो महोदयः ।
कामदेवसमो दीप्त्या मीर्याइग्निसमो वशी ॥ ३ ॥
हिमरश्मिसमः सौम्यो यमुसाम महीतले ।
मेरुवद्धीरधीरस्त्वं गंभीरश्च समुद्रवत् ॥ ४ ॥
भानुमानिव तेजस्वी कंजवत्कामकाद्यमः ।
शरणागत महाराम रक्षण भ्रमपंजरः ॥ ५ ॥
दुर्लभं भोगसामग्रीं जानीहि त्वं भरावले ।
सा सर्वापि त्वया प्राप्ता पूर्वोपार्जितपुण्यतः ॥ ६ ॥
दुर्लभं चैकतमेकं वस्तुजातं समागतः ।
भोक्तुं शक्तिर्न केषांचिदपवासत्यपि भोजने ॥ ७ ॥
परेषां भोजनं नास्ति भोक्तुं शक्तिस्तु वर्तते ।
द्वय प्राप्य न भुंजीत यः स दैवेन वंचितः ॥ ८ ॥

यथा या संति कामिन्यः कामोत्साहो न विद्यते।
अथ कामोद्यमस्तस्य कामिन्यो न कदाचन ॥ ९ ॥
यथा वा दानशक्तिर्येषेरे द्रव्यं न वर्तते।
अथ येद्(स्त्व)गृहे द्रव्यं दानशक्तिर्न जायते ॥ १० ॥
दैवाद्यदुभयं प्राप्य यो न भुंक्ते स मूढधीः।
मक्षमुगभक्षुन्नुरेति संध्याभ्रतं जडः ॥ ११ ॥
तस्य हेतोस्तपःक्लेशं चिकीर्षसि विचक्षण।
सांगं निर्विघ्नं पूर्णं वस्तुसं स्वत्पुरःस्थितम् ॥ १२ ॥
तत्यक्त्वा तपसा मून ततः साधिकमीहसे।
इत्याकूतं ते भाति न परीक्षाक्षमं क्वचित् ॥ १३ ॥
एकं कथानकं रम्यं वच्मि दृष्टांतहेतवे।
भागिनेय महाभाग सावधानतया शृणु ॥ १४ ॥
तद्यथा करभः कश्चिदासीत्सौहस्त्यर्मथरम्।
यथेच्छं कानने रम्ये भ्रमति स्म द्रुमान् बहून् ॥ १५ ॥
एकदा भ्रमता तेन वृक्षः कूपतटे स्थितः।
आस्वादितो यथास्वादु ग्रीवया संभ्रमात्मया ॥ १६ ॥
पत्रकानि सकृत्स्येव छित्वा करभेण च।
स्वादितं मक्षिकाजालान्मधुबिंदुं तथैककम् ॥ १७ ॥
चिंतयामास चित्ते स रसास्वादवशीकृतः।
वृक्षस्यास्योर्ध्वशाखायां साधिकं तद्भविष्यति ॥ १८ ॥
निश्चित्येति महालोभादूर्ध्वशाखां प्रचक्रमे।
गंतुं पुनः पुनश्चोर्ध्वशाखां प्रति तृषातुरः ॥ १९ ॥

किं बहु मत्सरंस्तत्र मृतः कूपे पतन्नसौ ।
मर्मरांगो महालोभाद्बभूव करभो यथा ॥ २० ॥
तथा त्वं मामिमामार्य त्यक्त्वा प्राप्तां हि संपदम् ।
चिकीर्षसि तपश्चोग्रमज्ञानेन विमोहितः ॥ २१ ॥
जम्बूस्वामी ततो वाचमूचे विदुरवरं प्रति ।
अमीषरमदं किंचिच्छृणु वाम कथांतरं ॥ २२ ॥
एको वणिक्सुतः कश्चित्सद्व्यकार्यरतोऽभवत् ।
एकदा व्यवसायार्थं गतो देशांतरं स्वतः ॥ २३ ॥
मार्गे पिपासितः सोऽयमभूत्काननसंकटे ।
स्वापदा जलमप्राप्य पश्चात्तापेन पीडितः ॥ २४ ॥
निश्छ्लोऽहं यथा गेहादरण्ये पतिताऽधुना ।
न मामीति मतं चैन्म मरणं स्याद्विनिश्चयात् ॥ २५ ॥
चिंतयन्निति यावत्स आस्ते वणिग्वनांतरे ।
क्षुधितस्तावदभ्यस्तैश्चौर्यकर्मपरायणैः ॥ २६ ॥
ततः शोकपिपासाभ्यां पीडितोऽसौ वणिग्वरः ।
गंतुं नालं पदं चैकं सुष्वाप तरोरधः ॥ २७ ॥
तत्र सुप्तः स अद्राक्षीत्स्वप्नमेकं वनांतरे ।
पयः पीत्वा करोति स्म निद्रया शयनं तथा ॥ २८ ॥
अथ जाग्रदवस्थः स चिंतयामास चेतसि ।
क्व सरः क्व जलं तत्र यन्मया पीतमंभसा ॥ २९ ॥
तद्वत्स्वप्ननिभां विद्धि मातुल त्वं च संपदम् ।
महतां हि कथं लोभो भवेदत्र कदाचन ॥ ३० ॥

इति श्रुत्वा कुमारस्य वार्तां विद्युच्चरस्तदा ।
जातो निरुत्तरस्तूर्णं मिथ्यैकांतादिवादिवत् ॥ ३१ ॥
अथ विद्युच्चरो वस्तुर्मायया मातुलश्च यः ।
निरस्तोऽपि कथां कांचिदपरामब्रवीत्पुनः ॥ ३२ ॥
एकः कश्चिद्वणिग्वृद्धो गृहमेधी मियारतः ।
तस्य प्रिया प्रचंडास्य (स्ति) युवती नवयौवना ॥ ३३ ॥
सैकदादाय स्वर्णादि गृहेरादपि निर्गता ।
विषयद्रव्यसुखं भोक्तुं स्वेच्छया कामरूपवत् ॥ ३४ ॥
गच्छंती सापि धूर्तेन केनचिद्वसिता क्षणात् ।
रंजिता मायिना तेन चाटुवाक्यकृता जवात् ॥ ३५ ॥
चाटुरित्यामदद्धूर्तः स्नेहकोमलया गिरा ।
सुंदरि त्वयि दृष्टायां मयि स्यात्स्नेहवर्धनम् ॥ ३६ ॥
न जानीमो विशालाक्षि कारणं त्वत्र कर्मणि ।
किं वा जन्मांतराबद्धो स्नेहोऽद्याप्यनश्चिप्यति ॥ ३७ ॥
साचादीच्चेदिदं संस्था वर्तते तव चेतसि ।
तदा त्वमेव मे भर्ता नान्यमान्याहमः क्वचित् ॥ ३८ ॥
ततस्तौ दंपती जातौ स्नेहबद्धैः (द्धौ) परस्परम् ।
कामलीलां प्रकुर्वंतौ यथेच्छं सुरतप्रियौ ॥ ३९ ॥
ततःप्रभृति कालोऽगात्कियान्वाद्युतरस्तयोः ।
एकदा सापि स्नुष्या स्यात्सार्धमन्येन कामिना ॥ ४० ॥
अथ द्वाभ्यां रतं मुक्ते सा जलसस्सरवासिनी ।
निर्लज्जा निर्घृणा पापा मायामिथ्याभिर्भाषिनी ॥ ४१ ॥

मनस्यन्यद्वचस्यन्यत्कार्ये कुर्वन्ति पापिताः ।
अहो क्वापि न कर्तव्या विश्वासस्तासु पण्डितैः ॥ ४२ ॥
एकदा मथुरां गन्तुं प्रस्थितः कश्चन सार्थिकः ।
निगूह्य सौम्यमार्गेण भार्यया सह तस्थिवान् ॥ ४३ ॥
सायाह्ने स गतः शीघ्रं तस्करस्कन्धसंनिधिम् ।
क्रोधाविष्टो महारौद्रमूर्तिर्दुश्चरितस्तयोः ॥ ४४ ॥
तस्करस्य महापापी शृणु साश्चर्यकारिणीम् ।
रामां कश्चित्समागत्य रमते मामकीं वधूम् ॥ ४५ ॥
अथ चैवं कथंचित्तं सभा भर्तुं निशीथिके ।
तदा ते स्वर्णकाम स्यादित्युक्त्वा स गृहेऽगमत् ॥ ४६ ॥
क्रमात्प्राप्ते निशीथेऽस्य प्रागमैव स्थितस्तदा ।
यः पूर्वोपपतिस्तस्या द्रष्टुं तच्चरितं स्वयम् ॥ ४७ ॥
अथागता भार्या तस्या द्वितीयोपपतिः शनैः ।
तद्वाक्यात्सा समुत्थाय तत्समीपं गतेश्वरी ॥ ४८ ॥
तत्र नीता मराक्षीर्मध्ये यावत्कामातुरेण सा ।
तावद्यामस्तूर्णं प्राप्तोद्ध तस्करस्यकः ॥ ४९ ॥
तत्र कोलाहले जाते सा दुष्टा कपटान्विता ।
पुनर्व्याघुट्य सुष्वाप पूर्वोपपतिसंनिधौ ॥ ५० ॥
आगतास्ते महारौद्रास्तस्करक्षकभृत्यकाः ।
रूक्षुः कोऽत्र गृहे तिष्ठेद्वितो वा तस्करोऽथवा ॥ ५१ ॥
द्वितीयोपपतिर्वेगाद्दुर्वाक्यम्यपर्यंतु भीतः ।
न जाने घूर्णमानोऽगो (ऽर्गो) निद्रयाहं प्रघूर्णितः ॥ ५२ ॥—

इतोऽभूत्तस्तवो दृष्ट्वा चतुः पूर्वपतिः शठैः ।
सोऽयं येनोक्तमेवैतत्सार्यं चेति चदत्यपि ॥ ५३ ॥
तं नीत्वाशुभ स्वस्थान घातयतः पदे पदे ।
यष्टिमुष्टिप्रहारैश्च महानिर्दयमानसा[१] ॥ ५४ ॥
अथ सा चिंतयामास मम श्रेयः पलायनम् ।
अन्यथा निग्रहोऽस्माकं भविष्यति न संशय ॥ ५५ ॥
विमृश्येति तया जारः शिक्षितः स्वीयभार्यया ।
अथ द्वौ दंपती भूत्वा गंतुं सार्द्धं समुद्यतौ ॥ ५६ ॥
नीत्वाथ यद्गृहे किंचिद्वस्त्रालंकरणादिकम् ।
उत्तमं बहुमूल्यं च जारेणामा चचाल सा ॥ ५७ ॥
मार्गेऽन्यदा नदीं प्राप्य पतिमन्योऽव्रदत्तदा ।
प्रिये वस्त्रादिकं मह्यं दत्स्वाशु विश्वकया (क्रिया) ॥ ५८ ॥
समुत्तीर्य गते पारे स्थापयामि सुनिश्चलम् ।
एकत्र सुस्थिते स्थाने वस्त्रालंकरणादिकम् ॥ ५९ ॥
पश्चाद्‌गत्य स्वस्कंधे त्वामारोप्य प्रयत्नतः ।
वेगादुत्तारयिष्यामि निश्चयस्पृहतया प्रिये ॥ ६० ॥
स्वयं धूर्तापि विश्वासान्मन्यमाना तथैव सा ।
ददौ स्वर्णादिकं तस्मै मतीता पतिबुद्धितः ॥ ६१ ॥
सा स्वयं नग्निका भूत्वा तस्थावर्धीकृतटं क्वचित् ।
बीभत्सा निस्त्रपा रूपा डाकिनीव भयंकरा ॥ ६२ ॥
अथावतीर्य गत पारे तस्यास्थोपपतिर्जवात् ।
नागतः पुनरत्रासौ मेतुमेकाकिनीमिमाम् ॥ ६३ ॥

१ अमानता ।

सामाय रे महाधूर्त मां मुक्त्वेह गतं त्वया ।
तेनोक्तं रे त्वस्व सम तिष्ठ त्वं पापशालिनि ॥ ६४ ॥
एतस्मिन्नन्तरे कश्चिज्जम्बुकः समुपागतः ।
वस्तुच्छ पाशपमाशु मांसखंडं मुखे दधन् ॥ ६५ ॥
जलादुच्छ (त्य) स्थितं मत्स्यमेकं दृष्ट्वा स जम्बुकः ।
धावति स्म महालाभान्मुक्त्वा मांसं मुखे स्थितम् ॥ ६६ ॥
तावन्मरैति यावत्स मत्स्योऽगाद्वारिमध्यगः ।
मांसपिण्डमितो गृध्रो नीत्वागात्काननान्तरे ॥ ६७ ॥
उभयभ्रष्टं तमालोक्य जम्बुकं दैववंचितम् ।
सा कामिनी महाशोकैः परिदीनमन्यमानसा ॥ ६८ ॥
अविचार्य कृतं वै तज्जम्बुकेन कुबुद्धिना ।
मुक्त्वा स्वाधीनमप्येतत्परायत्तं समीच्छता ॥ ६९ ॥
पार स्थिताऽवधूर्तो धर्ममिह्वधने तथा ।
त्वयापि किं कृतं मूर्खे पश्यात्मानं सुनिश्चिता ॥ ७० ॥
अयं तिर्यग् न जानाति वाच्यावाच्यं हिताहितम् ।
त्वं विदग्धा स्वभर्तारं हत्वा चान्यरतामभवत् ॥ ७१ ॥
तद्भयमिति तां मुक्त्वा धूर्तोऽगात्स्वीयसद्मनि ।
तदा साचीमुखी जाता नारी लज्जापरा यथा ॥ ७२ ॥
तथा त्वमपि मा गच्छ भागिनयाऽपहास्यताम् ।
त्यक्त्वा हस्तस्थितां लक्ष्मीमिच्छन् दूरे स्थितामहो ॥ ७३ ॥
ऊचे जंबूकुमारोऽसौ परकथां श्रुतिपेशलाम् ।
प्रसरद्दशनज्योतिरुद्योतितनिजाश्रयः ॥ ७४ ॥

आसीद्वणिक्सुतः कश्चिद्दारिद्र्यव्यवसायवान् ।
एकदा पोतमारुह्य सोऽगाद्द्वीपांतरं क्वचित् ॥ ७५ ॥
सर्वं वस्तु सुविक्रीय रत्नमेकं समग्रहीत् ।
ततः स्वगृहमुद्दिश्य चचाल वणिजां वरः ॥ ७६ ॥
चिंतयन्निति स्वे चित्ते कार्यसंदोहमीदृशम् ।
हस्ते संस्थाप्य तद्रत्नं विलोकयन्मुहुर्मुहुः ॥ ७७ ॥
वेलाकुलमितं प्राप्य विक्रियेऽहं महन्मणिम् ।
ग्रहीष्यामि गजाश्वादि विविधं वस्तु सुंदरम् ॥ ७८ ॥
ततो नृपसमो भूत्वा यास्यामि निजपत्तनम् ।
श्रिया च शोभया पूर्णो मंत्रिभृत्यादिसेवितः ॥ ७९ ॥
तथापि स्वगृहे स्थित्वा जीविष्यामि सुखं यथा ।
आरुह्य सप्तभौमादि पश्यन् योषित्सु सस्मितम् ॥ ८० ॥
एवं चिंतयतस्तस्य यावद्रत्नमपीपतत् ।
हस्तादब्धौ प्रमादाद्वा दुर्दैवाद्वा महाघमा (?) ॥ ८१ ॥
मोघीभूतास्ततस्तस्य चिंतिताश्च मनोरथाः ।
न लभ्यते महारत्नं हाहाकारं प्रकुर्वता ॥ ८२ ॥
तथाहं न भविष्यामि मातुल त्वमतोऽहं भो ।
त्यक्त्वा धर्मफलं सौख्यं तुच्छं भुंजामि संप्रति ॥ ८३ ॥
इत्युत्तरप्रदानेन स्वामिना कथितेन वै ।
निरस्तो मातुलो नाम्ना चौरो विद्युच्चरोऽभवत् ॥ ८४ ॥
पुनराह कथामेकां दस्युर्विद्युच्चरस्तदा ।
हतोऽपि मुरजो नूनं करोति मधुरध्वनिम् ॥ ८५ ॥

तद्यथा मातुलः कश्चिच्छिक्षाऽप्यासीदनुधरः ।
नाम्ना दृढप्रहारीति विख्यातो संयमस्थिति ॥ ८६ ॥
वनैकदा हतो धन्वा कुञ्जरो प्राणसंहतः ।
वारि पातुं तृषाक्रान्तः समागच्छन् जलाशय ॥ ८७ ॥
दैवात्सोऽपि मृतो विद्धो दष्टः सर्पेण तत्क्षणात् ।
अथ साऽपि धनुर्घातान्मृतमाशु भुजंगमः ॥ ८८ ॥
मृतेष्वेतेषु जीवेषु गजाभिल्लाहिषु स्फुटम् ।
आगतस्तत्र गोमायुः क्षुधितः काननादित ॥ ८९ ॥
पतितं चापि वीक्ष्याशु गजं भिल्लं सरीसृपम् ।
धनुश्चापि स हृष्टांगो जातो लोभाद्दुरुत्तया ॥ ९० ॥
चिंतति स्माथ गोमायुः कुंजरोऽयं मृतो महान् ।
भक्षयिष्यामि षण्मासं यावदन्नं सुनिश्चयम् ॥ ९१ ॥
ततो मासैकपर्यंतमहं नरकलेवरम् ।
ततोऽप्येकदिनं यावत्सर्पं भक्ष्यास्मि निश्चितम् ॥ ९२ ॥
इमे यथास्थिताः सर्वे तिष्ठंतु कुंजरादयः ।
तावदद्य मया भोग्या ज्याबद्धा गुण एव हि ॥ ९३ ॥
इति तं भक्षमाणोऽसौ गोमायुः पापपाकतः ।
मृतस्तुच्छधराघाताद्धनुस्फोटेन दुःखितः ॥ ९४ ॥
यथा बहुसुखं वाञ्छन् गोमायुर्मृत्युमागमत् ।
तथा त्वमैहिकं सौख्यं स्वपत्या मा गच्छ हास्यताम् ॥ ९५ ॥
मातुलोक्तं ततः श्रुत्वा प्रोच जम्बूकुमारकः ।
किंचित्कथांतरं रम्यं भवितान्ययविवित्सया ॥ ९६ ॥

१ नौ निष्ठन्तु वाम विनोति [illegible]।

एकः कर्मकर कश्चिदासीद्दतिदरिद्रवान् ।
वनादिन्धनमानीय विक्रीय कुरुतेऽशनम् ॥ ९७ ॥
अथैकदा महाभारं नीत्वा स्कन्धे कथंचन ।
मतस्थे धत मध्याह्न स्वालय प्रति यत्नतः ॥ ९८ ॥
भाराक्रांतोऽथ पापात्मा तप्तवाह्लश्च तृष्णया ।
सुप्तं सुष्वाप श्रांतः सभपभारस्तरोरध ॥ ९९ ॥
सुप्त स स्वप्नमद्राक्षीभिद्रया कर्मकारकः ।
साम्राज्यपदमारूढं स्वात्मानं समपश्यत ॥ १०० ॥
आसीनं विष्टरे रम्ये मणिमौक्तिकभूषिते ।
चलच्चामरसंपातैर्वीज्यमानं मुहुर्मुहुः ॥ १०१ ॥
वंदिवृंदजयाराव स्तूयमानं मनोहरे ।
क्वापि यौवतमध्यस्थ कालकेसिरसाकुलम् ॥ १०२ ॥
गमाभादिपरीवारैर्वेष्टिते राममंदिरे ।
अभ्यंतरे स पादाभ्यां ताडितो यष्टिमुष्टिभिः ॥ १०३ ॥
भार्यया स्वस्य समेत्य क्षुपापीडितया बलात् ।
उत्थितो जागरूकः स चिंतयामास कर्मकृत् ॥ १०४ ॥
केयं लक्ष्मीः क्व साम्राज्य दृष्टनष्टं क्षणादपि ।
तद्वन्नाम कलत्रादि स्वप्नसाम्राज्यसन्निभम् ॥ १०५ ॥
मानीहि क्षणिकं सर्वं सद्यस्प्राणापहारि च ।
मत्वेति नाम को धीमान् जनो दुःखाकर्य भ्रमेत् ॥ १०६ ॥
त्यक्त्वा स्वात्मीस्थिरं सौख्यं जन्ममृत्युविनाशकृत् ।
जंबूस्वामिकथां श्रुत्वा मोचे विद्युच्चरः सुधीः ॥ १०७ ॥

१ कुमतीनां समूहः ।

यामिनीपश्चिमे भागे तुर्ये चापि कथानकम् ।
एकः कश्चिन्नरो१ऽभिज्ञो कलाविज्ञानकोविदः ॥ १०८ ॥
आसीदत्र सुविख्यातो यथानामा कुतूहली ।
अथैकदा नृपस्याग्रे ननर्त बहुकौशलात् ॥ १०९ ॥
नर्तकीभिः समाकीर्णः सार्धचारिभिरप्यसौ ।
तन्नृत्यं पश्यता राज्ञा प्रसन्नमनसा तदा ॥ ११० ॥
दत्तं स्वर्णादिकं तस्मै पट्टकूलादिकं तथा ।
राज्ञः प्रसादं नीत्वा ते सुषुपुस्तत्र निद्रया ॥ १११ ॥
रजन्यां जागरूकत्वात्सुप्तसमका नटाः ।
अथ सुप्तेषु तेषूच्चैर्नर्तकपादिमनेप्याति ॥ ११२ ॥
तन्मध्येऽस्तदा तस्थौ जाग्रन्नेव स पापधीः ।
जाग्रता चिन्तितं तेन पंचकृत्वापियाऽपिपा ॥ ११३ ॥
नीत्वा हेमादि सर्वस्वं गच्छामि नीचस्वैर ।
यथोत्तमं कृतं तेन नीत्वा सर्वस्वमञ्जसा ॥ ११४ ॥
गंतुकामो धृतस्तूर्णं जाग्रद्भिर्नर्तकीजनैः ।
चौरत्वेनाभियुक्तस्तैर्नीतो भूपस्य सन्निधिम् ॥ ११५ ॥
दृष्ट्वा रुष्टेन भूपेन कृतं चौरोचितं हि यत् ।
तद्दृष्टं भागिनेयाहो जम्बूस्वामिन्महामते ॥ ११६ ॥
मागाऽहर्षलाभाय श्रीप्यानस्थां कथापन ।
जम्बूस्वामी निशम्यैतन्मातुलोक्तं कथान्तरम् ॥ ११७ ॥
किंचित्कथोत्तरं रम्यं प्रोवाच प्रतिभान्वितः ।
वाराणस्यां सुविख्यातो भूपोऽप्यासीन्महत्तरः ॥ ११८ ॥

१ वानरो ।

आस्थया लोकपालोऽसौ राज्यभारधुरंधरः ।
तस्य राज्ञी तु नाम्ना स्याद्रूपाढ्या मनोरमा ।
कंदर्पस्य धनुर्यष्टिर्जिगीषोरिव भूपते ॥ ११९ ॥
अथान्येद्युः स भूमीशो जगामाशु सलीलया ।
आखेटकक्रियासक्तो धन्यारंतु वनांतरे ॥ १२० ॥
अत्रांतरे महाराज्ञी राज्ञस्तस्य मनोरमा ।
कामुकी रंतुकामासीत्कामबाणैर्निपीडिता ॥ १२१ ॥
दूतीं कांचित्समाहूय विदग्धामभिसारिकाम् ।
चित्तस्थं गूढमाकूतं सानुरक्तामवेदयत् ॥ १२२ ॥
मातर्मां च विमानीहि तदार्तां सोढुमक्षमाम् ।
कातरां कुपिते कामे त्वयि तत्परमानसाम् ॥ १२३ ॥
तत्त्वं मे शरणं भूयाः सोपता मदनज्वरे ।
आनयस्वाशु गत्वाथ सुंदर तरुण नरम् ॥ १२४ ॥
तत सोचे महापापा दूती साहसिकं वचः ।
मय्यत्र सानुकूलायां मा वौरुप्यं कुरु सुंदरि ॥ १२५ ॥
आनयामि स्ववार्ताभिर्निष्काममपि योगिनम् ।
का कथा नरकीटानां कामाज्ञावशवर्तिनाम् ॥ १२६ ॥
अंतरे दैवयोगाद्वै स्वसौधस्थितया तया ।
दृष्टः कोऽपि युवा वीथ्यां पर्यटंस्तत्र लीलया ॥ १२७ ॥
नाम्ना पंग इति ख्यात स्वर्णकारो रसोत्कः ।
अयमेवोचितो रंतुं तया चेत्यवलक्षित ॥ १२८ ॥
दृष्ट्वा तं मृगशावाक्षी दूतीं मत्वाह पुंश्चली ।
एनमानय सोपायैर्जीवनस्य कृते मम ॥ १२९ ॥

---

१ मूलस्य नाम पोतकः ।

भवस्थे सा तदादेशात्पुत्री मायान्विता सती ।
आनयामास तं भगात्स्थिता यत्र मनोरमा ॥ १३० ॥
सा राज्ञी रंतुकामा तं यापयीत्वा स्वसद्मनि ।
शय्यातले समायाता सस्मरा सुरतोत्सवा ॥ १३१ ॥
तावदेवाक्रमात्स्वा नृपोऽप्यत्र समागतः ।
धृतातपत्रसच्छाया वीज्यमानः सुचामरैः ॥ १३२ ॥
आगच्छंतं तमालोक्य राजानं स्वर्णकारकः ।
व्याकुलोऽभूद्भयाक्रांतः कंपमानो मुहुर्मुहुः ॥ १३३ ॥
गोपयित्वा तथा पीनं कौशल्यात्पूर्वरूपक ।
सन्मुखीभूय भूपालः क्रीडामीतः स्वसद्मनि ॥ १३४ ॥
कामासक्तः स भूमीशः पल्यार्कं स्थितवानिह ।
मनोरमां सुखांभोमग्नामभ्यमधुमत ॥ १३५ ॥
भोजनस्य कृते तत्र ग्रासमात्रं प्रयत्नतः ।
मुक्तोच्छिष्टच्छटाद्येव क्षिपति स्म मनोरमा ॥ १३६ ॥
एवं पापस्य पम्मास विप्रस्तत्रातिदुःखितः ।
पांडुरोगी महापापाज्जातो दुर्गंधवासितः ॥ १३७ ॥
अथ भूपाज्ञया नीचः कूपे प्रक्षालिते जलैः ।
धंग प्रणालिकाद्वाराभिर्गत्वागात्सरित्तटे ॥ १३८ ॥
तत्रस्थे सवस्त्रकेण पृष्टः सार्द्रमानसे ।
कोऽसि त्वं ते कथं पांडु जातं कांचनसन्निभम् ॥ १३९ ॥
यंगनीतकमर्गा लोका मसीन्द्रियामसोफनात् ।
मोक्षं पातालकन्याभिनीतोऽस्य परमादरात् ॥ १४० ॥

ततश्च गन्तुकामं मां ज्ञात्वात्मीयगृहान्मुसम् ।
चक्रुर्वैमनस्यमत्यर्थं कोपाक्रान्तास्तु ताः स्त्रियः ॥ १४१ ॥
निसर्गतोऽपि यत्सत्यं न वदति कदाचन ।
किं पुनः कारणं प्राप्य तथया स्वर्णकारकः ॥ १४२ ॥
तत्राथापि क्रमादेव कृच्छ्रात्तच्छर्मैर्गृहं प्रति ।
आगतर्मंगनामासौ कथकथमिवास्महा ॥ १४३ ॥
तत्रानाशमयावैर्नीतः सौरभ्यमादरात् ।
सुगन्धद्रव्यसंयोगे शौमनांगोऽप्यथयथा ॥ १४४ ॥
अथैकदा गतस्तत्र वीथ्यां कार्यवशादिह ।
राजसौधसमीपस्थो दृष्टः साऽपि तया स्त्रिया ॥ १४५ ॥
तयैव सत्वरा साथ चेंगमुद्दिश्य संज्ञया ।
आगच्छागच्छ भो भूयोऽप्यकरो मम सद्मनि ॥ १४६ ॥
चेंगेनोक्तमस्तं स्नेहैस्त्वादकीयैः सखेऽधुना ।
यस्मात्तं त्वद्गृहादुःखं विस्मरामि न तत्क्षणम् ॥ १४७ ॥
अथापि न तन्मरेहादौर्गन्ध्यं याति सर्वतः ।
उपसर्गाद्विमुक्तोऽहं नाविमृश्यं करोम्यतः ॥ १४८ ॥
तद्भार्ये भविष्यामि सुखलेशस्य हेतवे ।
तिर्यगादिगतिष्वाहो मातृपितृदुःखसमागमम् ॥ १४९ ॥
बहुमन्यपितेनालं मातुल त्वमवैहि भो ।
नारमाद्यं सुखं भुंजे समाधानशतैरपि ॥ १५० ॥
ज्ञात्वा विद्युच्चरो वस्तुः कुमारं दृढमानसम् ।
स्तुतिं चक्र मुनिर्धीर्ण्णं सोऽप्यासन्नभवः स्वतः ॥ १५१ ॥

ततस्तत्याज वस्त्राणि भूरुणानीव निजान्वयात् ।
फलानीव मायायाः क्षणादेव विचक्षणः ॥ ५० ॥
सुधाटं कण्ठसूत्रं च दन्तिं मणिखचितं ।
इदं बन्धनमस्येव संसारस्य महाद्विपः ॥ ५१ ॥
ततः कुंडलयुग्मं च न्यक्कृतं कर्णयोः स्थितं ।
पुण्डरीकस्येव चक्रयुग्ममिवाधुना ॥ ५२ ॥
कचलोचः कृतस्तेन कराभ्यां स्वस्य लीलया ।
पंचमुष्टि यथाम्नायमात्मभावरभिति ॥ ५३ ॥
सदर्भांगीकराति स्म गुरोरादतः क्रमात् ।
शुद्धान्मूलगुणान्सम्यानष्टाविंशतिसंमितान् ॥ ५४ ॥
महाव्रतानि पंचैव स्मृताः समितयस्तथा ।
इंद्रियाणां निरोधश्च पंचपंचेति प्रकीर्तिताः ॥ ५५ ॥
लोचभक्ता गुणी मुख्या षाडावश्यकसत्क्रिया ।
अचेलत्वं ततः प्रोक्तं शुद्धचारित्रधारिभिः ॥ ५६ ॥
अहिंसाव्रतसिद्ध्यर्थं यतीनां स्नानवर्जनम् ।
प्राशुकावनी शयनं वैराग्यादिविवृद्धये ॥ ५७ ॥
दंतधावनादिभागश्च विरागाणामनुत्तमः ।
गत्स्थपाविक्रिया चापि कर्तव्या न यतीश्वरैः ॥ ५८ ॥
कायोत्सर्गेण भोक्तव्यं स्थितिभोजनमेकशः ।
किंचनं देहसिद्ध्यर्थं न मार्गार्थं कदाचन ॥ ५९ ॥
एते मूलगुणाः प्रोक्ताः श्रमणानां जिनेश्वरैः ।
संख्योत्तरगुणाश्चापि लसाशतुरशीतिकाः ॥ ६ ॥

सर्वेऽप्यामरणं नीत्वा पालनीया मुमुक्षुभिः ।
एवत्समुदितं सर्वं निर्मितं स्यान्मुनिव्रतम् ॥ ६१ ॥
इत्युक्तं गुरुणा स्वेन गुरुणा सद्गुणैरपि ।
श्रुत्वा जम्बूकुमारोऽसौ सर्वं जग्राह शुद्धधीः ॥ ६२ ॥
ततो जयजयाराव चक्रुः सर्वेऽपि सम्मुदा ।
श्रेणिकप्रमुखा भूपाः सर्वे पौरजनास्तथा ॥ ६३ ॥
ततः केचित्तु भूपालाः शुद्धसम्यक्त्वभूषिताः ।
बभूवुर्मुनयो नून यथाजातस्वरूपकाः ॥ ६४ ॥
केचिन्मोहाद्वतेस्तत्र क्लीबत्वेन कदर्थिता ।
श्रावकस्य व्रतान्युच्चैस्तेऽपि जगृहुः सादरात् ॥ ६५ ॥
अथ विद्युच्चरो दस्युर्विरक्तो भवभोगतः ।
सर्वसंगपरित्यागलक्षणं व्रतमग्रहीत् ॥ ६६ ॥
सार्धं पंचशतैर्भूपपुत्रैरासीत्स सयमी ।
दस्युकर्मरतैः सर्वैः प्रभवादिसुसंज्ञिकैः ॥ ६७ ॥
अतः परं मुनिर्विष्णुः सोऽर्हद्दासो वणिग्वरः ।
सकलार्थं गृहं त्यक्त्वा स्रष्टोऽभून्मुनिकुंजरः ॥ ६८ ॥
सुधर्मा(र्मा)र्यिका पार्श्वे माता जिनमती ततः ।
संसारासारतां मत्वा स्यादार्यिका (याः) व्रतान्विता ॥ ६९ ॥
पद्मश्रीप्रमुखा वध्वो वीक्ष्य संसृतिसंस्थितिम् ।
सुधर्मा गणिनीं नत्वा गृह्णंति स्म तपो महत् ॥ ७० ॥
प्रणम्याशु तत सर्वान् सौधर्मादिमुनीश्वरान् ।
जग्मुः श्रेणिकभूपाद्याः मतिसंभ्रमसमुत्सुकाः ॥ ७१ ॥

अहो स्वामिन्महो भ्रात धन्योऽसि त्वं जगत्त्रये ।
मादृशां का कथा नाथ त्वं पूज्योऽसि द्युसद्भिरपि ॥ १५२ ॥
संसारमहार्णवे पारं प्राप्तोऽसि त्वं महामते ।
धर्मकल्पतरोर्मूले त्वं भेत्ता कर्मभूभृताम् ॥ १५३ ॥
इत्यादिस्तवनं कृत्वा तेन विद्युच्चरेण वै ।
निक्षिप्तमात्मनश्चाग्रे गदितं तस्करादिकम् ॥ १५४ ॥
अत्रांतरे द्विमासीत्याग्रकवर्णा सुभास्वरा ।
जम्बूकुमारसंत्यक्ते रागैर्वातैरिवाग्निः ॥ १५५ ॥
केचित्तस्यद्रुपस्तंभे ध्यानसंलीनमानसाः ।
कायोत्सर्गपरा भव्या बभूवुः परमादरात् ॥ १५६ ॥
कश्चिद्धर्मिभिर्जिनेशानां पूजां कर्तुं समुद्यताः ।
गंधधूपादिसामग्रीं स्वीकुर्वाणा यथास्वरम् ॥ १५७ ॥
ततो वेगाद्देवेति स्म भानुमानुदयाचलात् ।
स्वामिनं द्रष्टुमौत्सुक्यादुद्यमप गर्भस्तिभिः ॥ १५८ ॥
यत्प्रसादान्महासत्त्वा शुमति सुलभमच्युतम् ।
शक्रचक्रपदं चैव सभ्यो धर्मः स धार्मिकैः ॥ १५९ ॥

इति श्रीजम्बूस्वामिचरिते भगवच्छ्रीपश्चिमतीर्थकरोपदेशानुसारेण स्याद्वादानवद्यगद्यपद्यविद्याविशारदपण्डितराजमल्लविरचिते साधु पासात्मजसाधुटोडरसमभ्यर्थिते विद्युच्चरकथा-चतुष्कवर्णनो नाम एकादश पर्व ।

१ विरतैः ।

अथ द्वादश॰ पर्व ।

श्रियमस्तु सदा तुभ्यं जैनशासनशासनात् ।
साधुपासांगमस्यास्य सव श्रीसाधुवाक्टर ॥ १ ॥ इत्याशीर्वाद ।

नमिं नमस्सुराधीश पञ्चकल्याणभागिनम् ।
नेमिं धर्मरथस्येव नेमिं नौमि जगद्गुरुम् ॥ १ ॥

अथ प्रभातसमये यद्भूच्छ्रेष्ठिनो गृहे ।
प्रवक्ष्यामि तदेवोच्चैर्यथाश्रुतमनुक्रमात् ॥ २ ॥

नैवं तस्य कथावृत्तमश्रौषीच्छ्रेणिको नृपः ।
अर्हद्दासेन सप्रोक्तं स्वतो गत्वा नृपालयम् ॥ ३ ॥

तत्र वैलक्ष्यमासाद्य सान्द्रक्लेशवशान्नृपः ।
धर्मबुद्ध्या पुनः सोऽथ जातमानंदनिर्भरः ॥ ४ ॥

नेदुर्दुंदुभयस्तत्र श्रेणिकस्याज्ञया तदा ।
केवलज्ञानसाम्राज्यपदप्राप्तिर्यथा परा ॥ ५ ॥

मङ्गलानकनादैश्च व्याप्ता भुवनपस्तदा ।
कल्याणेष्वेष तीर्थेशां व्योममार्गे यथामरैः ॥ ६ ॥

आगत श्रेणिकश्च भूपः सोत्सुकः श्रेष्ठिनो गृहे ।
स्वदारैः सकुटुम्बश्च वंदितुं स्वामिपंकजम् ॥ ७ ॥

नवनम्राद्विचेष्टाभिर्निर्विकाराभिरस्य वै ।
धीरं वैराग्यमारूढं स्वामिनं सोऽप्यभिज्ञपत् ॥ ८ ॥

ज्ञात्वा स भूषयामास स्वामिनं भूषणादिभिः ।
जानन्नपि विरागं तं भावशुद्ध्यर्थमात्मनः ॥ ९ ॥
चंदनाद्यैरङ्गरागं चर्चितं स्वामिना बभौ ।
यथा मेरौ जिनस्यास्य मूर्ध्नि चामरैर्षिणा ॥ १० ॥
सश्वेतवस्त्रं स्थिरस्थस्य शोभामापातिशायिनीम् ।
स्वयंवराय मुक्तिश्रीकामिन्या इव संस्कृतम् ॥ ११ ॥
ततः सानुमतिर्भूत्वा भूपतिः श्रेष्ठिना सह ।
शिबिकायां स्वहस्ताभ्यां स्थापयामास स्वामिनम् ॥ १२ ॥
वन गन्तुं समुत्सुकं स्वामिनं तपसः कृते ।
सर्वः पौरजनस्तत्रागमद्दीक्षितुमादरात् ॥ १३ ॥
सप्तकार्याण्यतीत्यापि यावन्ती जनसंहतिः ।
अद(दृ)ष्टमिव तं द्रष्टुमाजगाम सकौतुकात् ॥ १४ ॥
मुक्तिमार्गोत्सुकोऽसौ सिद्धिसौख्याभिलाषवान् ।
धन्योऽयमिति सर्वेऽपि जजल्पुश्च परस्परम् ॥ १५ ॥
हाहाकारो महानासीत्तदा राजगृहे पुरे ।
केचित्तत्स्नेहसंसक्ता मुमूर्छुरिव दुःखिताः ॥ १६ ॥
अत्रान्तरे समायाता माता जिनमती सती ।
स्वपदमुसमाकर्ण्य गतश्च स्वामिजल्पति ॥ १७ ॥
प्रतीक्षस्व क्षणं यावत्त्वं मां मातरं प्रति ।
इति दीनगिरं मोहादुच्चैरसौ मुमूर्च्छया ॥ १८ ॥
नष्टचेष्टामिवालोक्य जम्बूं तावद्भूमनः ।
विललाप महामोहात् सशोका गिरमुच्चरन् ॥ १९ ॥

हा नाथ मन्महाप्राण हा कंदर्पकसुन्दर ।
अनाथा वयमद्याहो विनाप्यागःकृता कथम् ॥ २० ॥
पित्रैर्वं येन दृष्टास्य तपसे बुद्धिरुत्कटा ।
पश्यता स महादुःखे तत्कारुण्यमकुर्वता ॥ २१ ॥
अद्यापि भो कृपानाथ प्रसीद कुरु मार्दवम् ।
भुङ्क्ष्व भोगाश्च भोगायामित्यूचुस्ताः प्रियास्तदा ॥ २२ ॥
रेजुर्यथ कथं नाथ त्वां विना दीनवृत्तयः ।
यथा चन्द्राहते रात्रिरिति दीनागिरश्च ताः ॥ २३ ॥
ततः सोपायमालम्ब्य चंदनादिद्रवैरपि ।
यत्नैर्जिनमती नीता ताभिश्चतनयां तदा ॥ २४ ॥
सावधाना तदा प्रोचे माता जिनमती सती ।
धीरवैराग्यमारूढं स्वामिनं माति मभयात् ॥ २५ ॥
क्वेदं तव वपुर्वत्स कदलीगर्भकोमलम् ।
खड्गधारानिभं पुत्र क्वेदमुग्रतरं तपः ॥ २६ ॥
अंगुष्ठप्रज्वलिता यद्वियथा याति भस्मसात् ।
तथा त्वं विजानीहि तस्मादप्यतिरिक्तकम् ॥ २७ ॥
कर्तुं भूशयनं बाल कथं धर्मोपि दुःसहम् ।
बाहुमुख्छीपकं कृत्वा गमिष्यसि कथं निशाम् ॥ २८ ॥
अप्यास्तां (हि) परित्यज्य पितरौ कामलालयौ ।
विना मा (?) दुःखितां कृत्वा कथं यासि वनान्तरं ॥ २९ ॥
इमा वध्वस्तवसाऽपि त्वामृते दुःखपूरिताः ।
एकाकिन्यो न शोभंते भर्तृशून्याः प्रिया इव ॥ ३० ॥

इत्यादिबहुधासंकल्पविकल्पवीचिमातुराम् ।
मातरं प्रति प्राचाच जम्बूस्वामी स्वाशयः ॥ २१ ॥

मातः श्रोतुं यदीति त्वं कातरत्वं परित्यज ।
भावयाशस्त्रमेवैषामनित्यां संसृतिस्थितिम् ॥ २२ ॥

आदौ वैषयिकं सौख्यं यावद्दुःखान्वितं मया ।
बहुशोऽपि यतस्तद्धि न समीहामहे वयम् ॥ २३ ॥

स्वर्गेऽपि यन्महाभागैर्भोगातृप्तिमयं जनः ।
एभिः स्वमनिमेषैर्मर्त्यैः स कथं तृप्तिमाप्नुयात् ॥ २४ ॥

न जाने कियतो वारानभवं नारकः सुरः ।
तिर्यञ्चापि नरश्चाहं भूत्वा भूत्वा पुनः पुनः ॥ २५ ॥

उक्तं च—

" कति न कति न वारान् भूपतिर्भूरिभूतिः
कति न कति न वारानत्र जातोऽस्मि कीटः ।
नियतमिति न कस्याप्यस्ति सौख्यं न दुःखं
जगति तरलरूपे किं मुदा किं शुचा वा ॥ १ ॥ "

इति प्रभृतिवाक्यादिरुचितैरमृतोपमैः ।
मातरं प्रतिबोध्याशु निरगात्स निजास्पदात् ॥ २६ ॥

गच्छन्ननुव्रजन् रेजे तदासौ पितृसौधतः ।
गुर्वर्घनस्पर्धी महामम [illegible] द्रुतम् ॥ २७ ॥

स्तुवंति स्म तदा सुराः सर्वेऽप्यासन्नभव्यकाः ।
तृणाय मन्यमानं तं पदं साम्राज्यसम्भवम् ॥ २८ ॥

भयानदसमायुक्तै श्रेणिकादिनृपादिभिः ।
शिबिकायां स्थितो नीतो हस्ताद्दस्ते स काननम् ॥ ३९ ॥
फलपुष्पसमाकीर्णमकालेऽपि फलोदयम् ।
तदा तत्काननं रेजे किंचिन्मुग्धविक्षेपकम् ॥ ४० ॥
अलिक्षोदूतश्वासाग्रेमसम्मानैरितस्ततः ।
जम्बूस्वामिकुमारस्यागमं नृत्यमिवातनोत् ॥ ४१ ॥
तमर्थ्य मुनिमानम्य गुरुं सौधर्मसंज्ञकम् ।
उपविष्टो यथास्थानं कुमारोऽभिमुखं मुनेः ॥ ४२ ॥
तत्पदाग्रे स विन्यस्य कुड्मलीकृतहस्तकम् ।
तेन जम्बूकुमारेण विज्ञप्तो मुनिरादरात् ॥ ४३ ॥
कृपासागर सद्रूप मामुद्धर भवार्णवात् ।
नानादुःखक्षणावर्तैर्निमज्जंतं कुयोनिषु ॥ ४४ ॥
अथ मे करुणां कृत्वा देहि दीक्षां भवापहाम् ।
पावनीं सस्पृहां सर्वैः कर्मनिर्मूलनक्षमाम् ॥ ४५ ॥
लब्ध्वानुज्ञां स शुद्धात्मा गुरोः सर्वसमक्षतः ।
अंगादुत्तारयामास भूषणानि विरक्तधीः ॥ ४६ ॥
तावत्पुष्पस्रजो मुक्ताः स्वकिरीटाग्रकोटितः ।
दूरीकृता बलादेव मन्मथस्य शरा इव ॥ ४७ ॥
आक्षिपन्मुकुटं मूर्ध्नो हेमया रत्ननिर्मितं ।
मानोन्नत्यमिवात्मीयं निर्मयान्मारभूपतेः ॥ ४८ ॥
ततोऽप्युत्तारयामास हाराद्यस्यापलंकृतान् ।
मुद्रिकादीन्स सद्रत्ननिर्मितानंगतः स्फुटम् ॥ ४९ ॥

ततस्तत्याज वस्त्राणि शल्यानीव निजान्वयात् ।
पटलानीव मायायाः क्षणादेव विचक्षणः ॥ ५० ॥
मुमोच कटिसूत्रं च यन्त्रितं मणिवर्चितं ।
दृढं बन्धनमस्येव संसारस्य महाद्विपः ॥ ५१ ॥
ततः कुण्डलयुग्मं च न्यक्कृतं कर्णयोः स्थितं ।
गुरुश्चरयस्येव चक्रयुग्ममिवामुना ॥ ५२ ॥
कचभारः कृतस्तेन कराभ्यां स्वस्य लीलया ।
पञ्चमुष्टि यथाम्नायमाममधीश्वरामिव ॥ ५३ ॥
ततश्चांगीकरोति स्म गुरोरादरतः क्रमात् ।
शुद्धान्मूलगुणान्सर्वानष्टाविंशतिसंमितान् ॥ ५४ ॥
महाव्रतानि पंचैव स्मृता समितयस्तथा ।
इंद्रियाणां निरोधश्च पंचधैव मनीषिभिः ॥ ५५ ॥
लोचश्चैको गुणो मुख्यः षडावश्यकसत्क्रिया ।
अचेलत्वं ततः साक्षं शुद्धचारित्रधारिभिः ॥ ५६ ॥
अहिंसाव्रतसिद्ध्यर्थं यतीनां स्नानवर्जनम् ।
भूशयना प्रथमं वैराग्यादिविवृद्धये ॥ ५७ ॥
दन्तकाष्ठादिभागश्च विरागाणामनुत्तमः ।
गन्धधूपादिक्रिया चापि कृपाभ्या न यतीश्वरैः ॥ ५८ ॥
कायोत्सर्गेण भोक्तव्यं स्थितिभोजनमेकशः ।
कवलं रससिद्ध्यर्थं न भोगार्थं कदाचन ॥ ५९ ॥
एते मूलगुणाः प्रोक्ताः श्रमणानां जिनेश्वरैः ।
संत्युत्तरगुणाश्चापि लक्षाश्चतुरशीतिकाः ॥ ६ ॥

सर्वेऽप्याभरणं नीत्वा पालनीया मुमुक्षुभिः ।
एवमस्मदिदं सर्वं निर्मितं स्यान्मुनिव्रतम् ॥ ६१ ॥
इत्युक्तं गुरुणा स्वेन गुरुणा सद्गुणैरपि ।
श्रुत्वा जम्बूकुमारोऽसौ सर्वं जग्राह शुद्धधीः ॥ ६२ ॥
ततो जयजयारावं चक्रुः सर्वेऽपि संमुदा ।
श्रेणिकप्रमुखा भूपा सर्वे पौरजनास्तथा ॥ ६३ ॥
ततः केचित्तु भूपालाः शुद्धसम्यक्त्वभूषिताः ।
बभूवुर्मुनयो नूनं यथाजातस्वरूपकाः ॥ ६४ ॥
केचिन्मोहोदयैस्तत्र क्लीबत्वेन कदर्थिता ।
श्रावकस्य व्रतान्युच्चैस्तेऽपि जगृहुः सादरात् ॥ ६५ ॥
अथ विद्युच्चरो दस्युर्विरक्तो भवभोगतः ।
सर्वसंगपरित्यागलक्षणं व्रतमग्रहीत् ॥ ६६ ॥
सार्धं पंचशतैर्भूपपुत्रैरासीत्स तपस्वी ।
दस्युकर्मरतैः सर्वैः प्रभवादिसुसंज्ञिकैः ॥ ६७ ॥
अतः परं सुनिर्विण्णः सोऽर्हद्दासो वणिग्वरः ।
सकलत्रं गृहं त्यक्त्वा ह्यभून्मुनिकुंजरः ॥ ६८ ॥
सुप्रभार्यान्तिका पार्श्वे माता जिनमती तत ।
संसारासारतां मत्वा स्यादार्यिका (याः) व्रतान्विता ॥ ६९ ॥
पद्मश्रीप्रमुखा वध्वो ज्ञात्वा संसृतिसंस्थितिम् ।
सुप्रभा गर्भिणी मत्वा गृहेऽपि स्म तपो महत् ॥ ७० ॥
प्रणम्याशु तत सर्वान् सौधर्मादिमुनीश्वरान् ।
जग्मु श्रेणिकभूपाद्याः भक्तिसंभ्रमसंयुक्ताः ॥ ७१ ॥

कृतार्थं मन्यमान[1] स स्वात्मानं सद्व्रतान्वित ।
कृतोपासोऽविपिस्तत्र स्थितो वाचयमी वने ॥ ७२ ॥
यथाशक्ति समाधाय सेऽपि निःपुवराज्य ।
नीत्वापवासरसंन्यास तस्युर्ध्यानावमर्षिनः ॥ ७३ ॥
सिद्धभक्तिं समार्ध्यते पठित्वाय महामुनिः ।
मवस्यश्चोऽन्य मार्गे पारणार्थं कृतावमः ॥ ७४ ॥
विमन्तामपूः रम्य पुरे श्रामात् स्वसपत ।
अहो पुण्यपदार्थोऽप्यमायातो मूर्तिमानिव ॥ ७५ ॥
आगच्छंतं तमालाक्य दूरादानमप्रसन्नकाः ।
प्रणामुः श्रावकाः सर्वे भयाऽर्थं वीतमत्सराः ॥ ७६ ॥
केचिच्चित्रमिवालोक्य सजनस्युः सविस्मयम् ।
याऽयू (व) प्राग्रणीः पूर्वं सोऽर्थ जातो मुनीश्वरः ॥ ७७ ॥
अहो दैवस्य वैचित्र्य कर्मणो रसपाकतः ।
का वेत्ति किं कथं भावि ज्ञानाद्न्यत्र मारतः ॥ ७८ ॥
कचिद्दानरसाः सक्ताः मतिग्राहितुमुत्सुका ।
तस्युर्मुस्त्वाः स्वधीर्म्यतमार्गोत्साकनवत्सराः ॥ ७९ ॥
वदंति स्म जनाः केचित् स्वामिन्नत्र कृपां कुरु ।
पवित्रीकुरु नो वेश्म चरणाम्बुमरणुभिः ॥ ८० ॥
तिष्ठ तिष्ठात्र मद्गेहे जम्बूस्वामिन्महामुने ।
मासुकान्नं गृहाणाद्य निरवद्यं मचस्या (अपा) पिवम् ॥ ८१ ॥
इतेवागच्छ मद्गृहमिहेवागच्छ मद्गृहम् ।
ऊपुराम्रेडितं मन्ना मिथः केचिदितोऽप्यतः ॥ ८२ ॥

1 भाषेऽपि द्विमिथर्वं इत्यपर ।

काचिद्रूपे वयस्योऽय मन्मथाकारविग्रहः ।
सुंकरांगः कथं कुर्यात्तपो दुष्करमंजसा ॥ ८३ ॥
भगमद्देदनाख्याआत्काचिदर्शी(र्शी)भिरीसहम् ।
कामदेवनिभं देवयकाममपि स्वामिनम् ॥ ८४ ॥
इत्यादिविविधालापैः सपदस्सुमनैष्यपि ।
अगादर्थिस्यइत्यासौ जिनदासस्य सद्यनि ॥ ८५ ॥
नवकोटिविशुद्धं स जग्राहाहारमत्यघः ।
असूदानातिशायित्वात्पचार्य तद्गणे ॥ ८६ ॥
नीत्वाहारं स शुद्धात्मा निरीहाऽपि समीहया ।
कृतेर्यापथसंशुद्धिर्यथाशास्त्रानुसर्न मुनि ॥ ८७ ॥
क्रमादाप वनस्योत पार्श्वे सौधर्मसन्मुनेः ।
सवतः श्रुतपःसिद्ध्यै निर्वाणस्य महौजसः ॥ ८८ ॥
अथ सौधर्मसन्नस्य मुनः कतिपयैर्दिनैः ।
प्रादुरासीत्स्वभावात्य केवलज्ञानमंजसा ॥ ८९ ॥
पादमूलेऽस्य सर्वार्थवदिनाऽनंतधर्मणः ।
चरति स्म तपश्चोग्रं जम्बूस्वामी महामुनिः ॥ ९० ॥
तपोऽनशननन(?)मार्य करोति स्म स सादरात् ।
वेगाद्वास्यविशुद्धयर्थमर्हिसंख्या पुरःसरम् ॥ ९१ ॥
द्वितीयमवमौदर्यं चरति स्म तपो महत् ।
एकग्रासादिकं ग्रंमवमोदर्नं समल क्षमी ॥ ९२ ॥
विधाय सयसंख्यादि यथाशुक्लमथपक्षः ।
वृत्तिसंख्यानमेवैतत्तृतीयं तप आसज्त् ॥ ९३ ॥

---

१ मुक्तिमस्तकः ।

समाचरस्तपस्तुर्यं रसानां परिहापनम् ।
हृषीकाणां निग्रहाय शरीरेकस्य शांतये ॥ ९४ ॥
शून्यागारवनाद्रौ चकार वसतिं वशी ।
तपोऽदः पंचमं नाम्ना विविक्तशयनासनम् ॥ ९५ ॥
षष्ठसंज्ञं समाख्यातं कायक्लेशाभिधं तपः ।
महोपसर्गनैःश्रांतं कर्तव्यं मुमनीषिभिः ॥ ९६ ॥
इदं बाह्यं तपः पोढा चकारेति स रेखया ।
जम्बूस्वामी महावीर्यो वैर्यस्यैकपदं महत् ॥ ९७ ॥
अभ्यंतरं तप प्रोक्तं मायश्चित्तं यदादिमम् ।
कुमार स्वीकरोति स्म सम्यग्दर्शनाभिधानकम् ॥ ९८ ॥
निश्चयादात्मधर्मेषु मोक्षमार्गेष्वनुद्धत ।
विनय समकार्षीत् स यथार्हं परमेष्ठिषु ॥ ९९ ॥
नातिक्रमो मुनीशानां नमस्कारक्रियादिषु ।
वैयावृत्त्यं तप' मोक्तं तत्तृतीयं सुखप्रदम् ॥ १०० ॥
शुद्धस्वात्मानुभूतः स्याद्दभ्यासात् परमं तपः ।
स्वाध्यायं निश्चयाच्छुद्धं चतुर्थमकरोन्मुनिः ॥ १०१ ॥
शरीरापाधिभवेषु ममत्वपरिवर्जनं ।
व्युत्सर्गाभ्यं तपस्तच्च पंचमं मुनिना कृतम् ॥ १०२ ॥
ततोऽप्यनुचरध्यानं तपः षष्ठमनुत्तरम् ।
कृत्स्नचिंतानिरोधेन यदेषतत्त्यावलंबनम् ॥ १०३ ॥
पोढेत्याभ्यंतरं शुद्धं ततपा मुक्तिकारणम् ।
स निर्विण्णमनाः सर्वं निरतिचारमादद ॥ १०४ ॥

अप्यभिव्यक्तरूपश्च ज्ञातज्ञातस्वरूपतः ।
यस्थौ शुक्लिमयेणोच्चैर्वाक्मनोयोगनिग्रहात् ॥ १०५ ॥
कषायारिचमूं भेत्तु बद्धकक्ष इवाभवो ।
भूत्वा प्रशमनैः स्वैः सन्मुखं योद्धुमुद्यत ॥ १०६ ॥
मन्मथस्य मिथामाराद्गतिं मार्गेव निम्नगा ।
प्रभारिवौ मद्ये मारो हेलया येन निर्जितः ॥ १०७ ॥
द्वादशांगमहाविद्यावारिधेः पारगः सुधी ।
द्रव्यभावादिभेदेन नैकधार्थमपञ्चकः ॥ १०८ ॥
एवमष्टादशाब्दानां व्यतिक्रांता इव क्षणं ।
जम्बूस्वामिनि घोरोग्र तप कुर्वति नैकधा ॥ १०९ ॥
तपोमासे सिते पक्षे सप्तम्यां च शुभे दिने ।
निर्वाणं प्राप सौधर्मो विपुलाचलमस्तकात् ॥ ११० ॥
अनंतसुखपाथोधी निर्ममं बकसूचितम् ।
अनंतदर्शनज्ञानं तमहं नौमि श्रेयसे ॥ १११ ॥
तत्रैवाहनि यामार्धे ध्यानयानगति प्रभोः ।
उत्पन्न केवलज्ञान जम्बूस्वामिमुनेस्तदा ॥ ११२ ॥
नष्टे मोहरिपौ ज्ञानदर्शनावरणक्षये ।
आसीत्पद्मासनस्थस्य ज्ञाम वीर्यावृतेः क्षयम् ॥ ११३ ॥
ततः केवलपूजार्थमाजग्मुस्त्रिदशाभ्ययाः ।
सोत्साहा सपरीवारा निजद्ध्यादिसमन्विताः ॥ ११४ ॥
प्रणमुश्च 'परीत्याय स्वामिनं त्रिजगद्गुरुम् ।
तत्स्वर्गमयमपारावपुष्पवर्षंताऽमराधिपा' ॥ ११५ ॥

पूजयित्वाय सामग्रया सुष्ठुपुः मधुमात्रात् ।
गयपयादिसद्द्‌वैरनौपम्यै सुरश्वरा ॥ ११६ ॥
जय मर्ववर्कदर्पदर्पसर्पापह मभा ।
जय कवलमार्तंड प्रकाशितजगत्त्रय ॥ ११७ ॥
स्तुत्वेति बहुधा स्तोत्रैः मांत्यकवलिनं जिनम् ।
ययुर्देवा निज धाम मन्यमानाः कृतार्थताम् ॥ ११८ ॥
विजहार ततो भूमौ भितो गंधकुटीं जिनः ।
मगधादिमहादेशमथुरादिपुरीस्तथा ॥ ११९ ॥
कुर्वन् धर्मोपदेशं स कवलज्ञानलोचनः ।
वर्षाष्टादशपर्यंतं स्थितवांस्तत्र जिनाधिप ॥ १२० ॥
ततो जगाम निर्वाणं केवली विपुलाचलात् ।
कर्माष्टकविनिर्मुक्तः शाश्वतानंतसौख्यभाक् ॥ १२१ ॥
ततोऽनंतरमेवासात्मविद्यासा मुनीश्वरः ।
मंते सल्लेखनां कृत्वा षष्ठेऽभूद्दिवि दिवरात् ॥ १२२ ॥
नाम्ना जिनमती सापि कृत्वा सल्लेखनां शुभाम् ।
ब्रह्मोत्तरे सुरेन्द्राऽभूच्छित्वा योषित्कुलिंगकं ॥ १२३ ॥
ततो धर्मवतस्ता वासुपूज्यजिनालये ।
सुत्वा चंपापुरे तत्र देवीजाता महर्द्धिकाः ॥ १२४ ॥
अथ विद्युच्चरो नाम्ना पर्यटन्निह सन्मुनिः ।
एकादशांगविद्यावामप्रीतो मितप्रभावः ॥ १२५ ॥
मथान्यैद्युः स निःसंगो मुनिर्पचशतैर्वृतः ।
मथुरायां महोद्यानमेत्यैत्यगमन्मुदा ॥ १२६ ॥

सदागच्छतस्तैस्तैश्च(?)कृत्य भानुरस्ताचलं भिय ।
घोरोपसर्गमेतेषां स्वयं द्रष्टुमिवाक्षमः ॥ १२७ ॥
अथमथोरचरमारीति काचिद्वनदेवता ।
मुने पंचदिनान्यत्र स्थातव्यं न त्वयाधुना ॥ १२८ ॥
आगत्य सम्र (?) यात्रायै यूथमेतादयस्त्विह ।
उग्रं बाधां करिष्यति युष्माकं साधुसत्तमाः ॥ १२९ ॥
अतस्त्वैतत्परित्यज्य स्थानमन्यत्र गम्यताम् ।
दुर्निमित्तं स्थमेतिं शास्त्रः सयमध्यानसिद्धये ॥ १३० ॥
इत्युक्त्वा सा गता तूर्णं चंडमारी निजालयम् ।
ऊचे विद्युच्चरं मान्यो मुनिमुद्दिश्य साम्प्रतं ॥ १३१ ॥
अहो वृद्धगणा यूयं मा कुर्वन्तु हठक्रियाम् ।
निष्प्रमादतया यात स्थानादन्यत्र गम्यताम् ॥ १३२ ॥
श्रुत्वैतन्मुनयः केचिद्दुर्निशंकिताशया ।
अस्तं गते दिवानाथे नेयं कालोचितक्रिया ॥ १३३ ॥
विमृश्यतां कीदृशो धर्मः स्वामिभिः शंकितामिथः ।
उपसर्गसहो योगी प्रसिद्धः परमागमे ॥ १३४ ॥
अथस्तत्र यथामाध्य भाविकर्मशुभाशुभम् ।
तिष्ठामो वयमत्रैव रजन्यां मौनधारयः ॥ १३५ ॥
निशम्यैतद्वचस्तेषां तस्थौ विद्युच्चरो मुनिः ।
नैष्ठं योगं प्रतिष्ठाप्य मौनमाश्रित्य धीरधीः ॥ १३६ ॥
ततोऽन्धतमसा व्याप्तमाशामास्य दुरीक्षणात् ।
विश्वं मिथस्तमायाता लयकाल इव क्षणात् ॥ १३७ ॥

अथांतरे समायाता भूतवेताश्च राक्षसा ।
इत्याऽद्भुतश्च पार्श्वता भीषणाकृतिधारकाः ॥ १३८ ॥
केचिन्मत्तकरश्चा दंदशूकनिभाः परे ।
केचित्तु कुक्कुट्याकारा¹ सतीक्ष्णा नखपक्षयः ॥ १३९ ॥
फत्कारादिरवं केचित्कुर्वतोऽतिभयानकाः ।
नभस्पृष्टाश्चयस्पृष्टैर्मांससंतानितस्ततः ॥ १४० ॥
सद्य श्रीपितसंस्मिश्ररूपास्तोफितपाणयः ।
निर्यद्धूमाग्निभीमास्याः कंठबद्धास्थिसंचयाः ॥ १४१ ॥
रक्ताक्षा व्याददानास्या केचिदस्त्राद्वनैर्मूढ़ताः ।
उरुस्थरुंडमालास्त हसंत इव भीमया ॥ १४२ ॥
गृहाणैनं गृहाणैनं मारयेति वधान्विताः ।
सहुंकाररवं रौद्रा रावावष्टापराः परे ॥ १४३ ॥
मद्यामास्फाल्य मद्दैन ताडयेत् कुक्तिभीषणाः ।
भरयनं मरुन्मार्गे केचित्सप्रासनिर्दयाः ॥ १४४ ॥
इत्यादिविविधापायैः पापाः पापविचारकाः ।
चक्रुर्महोपसर्गं च मुनीनां वक्तुमक्षमं ॥ १४५ ॥
तत्र विद्युच्चरा धीरा महाधैर्यपरायणः ।
चिंतयामिति चित्ते स्वे शुद्धा द्वादशभावनाः ॥ १४६ ॥
जीवनाशां परित्यज्य कृत्वा सन्यासमादरात् ।
इषार्द्रिमिच्छुररव न मन्यमानः स्थिरोऽभवत् ॥ १४७ ॥
तथा यथा न्ययन्येऽपि मुनयः स्वस्थचेतस ।
उपसर्गमहा जाता ज्ञानसंमतिमक्षणाः ॥ १४८ ॥

१ भूषा । २ ...नार्थे ।

स्वाध्यायनिरताः केचित्केचिद्ध्यानावलम्बिनः ।
केचित्कर्मविपाकज्ञा तस्थुर्मेरुरिवाचलाः ॥ १४९ ॥

धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो धर्मं बुधाश्चिन्वते
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं धर्माय तस्मै नमः ।
धर्मान्नास्ति परः सुहृद्भवभृतां धर्मस्य मूलं दया
तस्मिन् श्रीजिनधर्मकर्मनिरतैर्धर्मे मतिर्धार्यताम् ॥ १५० ॥

इति श्रीजम्बूस्वामिचरित्रे भगवच्छ्रीपश्चिमतीर्थकरोपदेशानुसरित-
स्याद्वादानवद्यगद्यपद्यविद्याविशारदपण्डितराजमल्लविरचिते साधु
पासासुतसाधुटोडरसमभ्यर्थिते जम्बूस्वामि
निर्वाणगमनवर्णनो नाम द्वादश पर्व ।

अथ त्रयोदशं पर्व ।

भूयास्स धर्मेष जम्बूस्वामी निष्कर्मतां श्रितः ।
साधुपासांगमस्यास्य तव श्रीसाधुशंकर ॥ १ ॥ इत्याशीर्वादः ।
पार्श्वनाथमहं नौमि ह्वारं विघ्नकर्मणाम् ।
वर्द्धमानं मुनाश्चापि प्रमाणाश्च निभाभवम् ॥ १ ॥
अथोपसर्गसंपूर्ता त च विद्युच्चराद्यः ।
मुनयो भावयामासुरिमाः पारछभावनाः ॥ २ ॥
अनित्या शरणा चैव संसृतेमाद्युचिंतनम् ।
एकत्वचिंतनं चैवमन्यत्वं च ततः परम् ॥ ३ ॥
अशुच्यास्रवभेदे द्वे संवरो निर्जरा ततः ।
लोकसंस्था तथा बोधिदुर्लभो धर्म एव च ॥ ४ ॥
संवेगवर्धनायैषमेषां तस्यानुचिंतनम् ।
अनुप्रेक्षाः स्मृतास्ताश्च द्वादशैवानुपूर्वतः ॥ ५ ॥
ये याता यांति यास्यंति यमिनः पदमव्ययम् ।
द्वादशैताश्च ताः सर्वा भावयित्वा शुभाशयाः ॥ ६ ॥
अन्यत्वं सर्वमेवैतद्वस्तुजातं चराचरं ।
वैभाविकस्वभावत्वात्कर्मणां रसपाकवत् ॥ ७ ॥
आकस्मोदयमेवैतत्कर्मश्रीभावविपर्ययतः ।
तन्निर्माणं कथं लोके नित्य भवितुमर्हति ॥ ८ ॥
अतः कर्मोदयाज्जाताः पर्याया मधुरादयः ।
स्यानुभूत्यैकमात्रत्वाच्छिभास्व तन्मर्मशुराः ॥ ९ ॥

प्रमाणादागमाच्चापि स्वानुभूते समक्षतः ।
तेषामनित्यसंसिद्धौ को विमुह्येत् सकर्मधीः ॥ १० ॥
कृत्वावधिं सहस्रांशुरुदेत्यस्तं महीतले ।
कृत्वावधिं यथा जीवा उत्पद्यन्ते चतुर्गतौ ॥ ११ ॥
यथा वृक्षात्फलं पक्वं विशिष्टमनुभूतकं ।
आवश्यकं पतत्येवं तथा तनुभृतोऽप्यमी ॥ १२ ॥
जीवितं चपलं लोके जलबुद्बुदसन्निभम् ।
रोगैः समाश्रिता भोगा जराक्रांतं हि यौवनम् ॥ १३ ॥
सौन्दर्यं च क्षणध्वंसि संपदो विपदंतकाः ।
मधुबिंदूपमं पुंसां सौख्यं दुःखपरंपरा ॥ १४ ॥
इंद्रियारोग्यसामर्थ्यबलान्यभ्रोपमानि च ।
इन्द्रजालसमानानि राजसौधधनानि च ॥ १५ ॥
पुत्रपौत्रकलत्रादि मित्रबांधवसज्जनाः ।
संयोगश्चपलस्त्वाशु दृष्टनष्टा इव क्षणम् ॥ १६ ॥
इत्यध्रुवं जगत्सर्वं नित्यमात्मा सनातनः ।
भव्य सद्भिर्न कर्तव्यं ममत्वं वपुरादिषु ॥ १७ ॥

॥ अनित्यानुप्रेक्षा ॥

भ्रमतोऽस्य भवावर्ते जेतागतिचतुष्टये ।
यमारातिगृहीतस्य न कोऽपि शरणं भवेत् ॥ १८ ॥
यथा व्याघ्रगृहीतस्य मृगशावस्य कानने ।
पुण्योदयादृते कश्चिद्रक्षितुं न क्षमोऽङ्गिनः ॥ १९ ॥

१ विद्युत् ।

अणिमादिगुणयुक्तानां तेषामपि दिवौकसाम् ।
दिवः मृत्युर्विरेवासीत्का कथान्यशरीरिणाम् ॥ २० ॥
मणिमन्त्रौषधादीनि तावत्सर्वाणि संस्पृशी ।
यावद्यमकरालोऽसौ यमो नायाति सन्मुखम् ॥ २१ ॥
कृतान्तेन गृहीतोऽसौ कुपितेन यदा तदा ।
इन्द्रचक्रखगेन्द्राद्यैः क्षणं त्रातुं न शक्यते ॥ २२ ॥
मत्वेत्यशरणं विश्वं शरण्यं जैनशासनम् ।
उपादेयतया सद्भिर्गृहीतव्यं प्रयत्नतः ॥ २३ ॥
अर्हन्त शरणं सिद्धाः साधवः शरणं त्रिधा ।
शरणं तत्प्रणीतश्च धर्मः सर्वत्र धीमताम् ॥ २४ ॥
मत्वेति धीमतैरेवं धर्मः कार्यः स च द्विधा ।
व्यवहारात् क्रियारूपा निश्चयादात्मदर्शनम् ॥ २५ ॥
॥ अशरणानुप्रेक्षा ॥
द्रव्यं क्षेत्रं तथा कालो भवो भावस्तथैव च ।
एतत्सौपपदाम्नायात् संसारः पंचधा स्मृतः ॥ २६ ॥
तावत्स द्रव्यसंसारो लक्ष्यो सूक्ष्मार्थदर्शिभिः ।
कर्मनोकर्मरूपेण पुद्गलादानलक्षण ॥ २७ ॥
गृहीताश्चागृहीताश्च मिश्राश्चापि निसर्गतः ।
त्रिधेति पुद्गलास्तथा लोकेऽस्मिन्नभिधिताः स्फुटम् ॥ २८ ॥
तद्विवक्षितजीवेन ते येषामपीह पुद्गलाः ।
कर्मनोकर्मभावेन नीत्वा वारामनेकशः ॥ २९ ॥
मुक्तोज्झिताः पुनस्त्वापि ग्रहनीत्वा पुनस्तथा ।
एवं समुदितः सर्वो द्रव्यसंसार उच्यते ॥ ३० ॥

सोऽप्यनेनैव जीवेन कृतपूर्वो ह्यनन्तशः ।
क्षेत्रमाकाशदेशः स्यात्स चाणुमितोऽङ्गिनः ॥ २१ ॥
हानिवृद्धिक्रमाद्व्याप्तो जन्मना मृत्युनाथवा ।
कनकाद्रिमहास्कन्धाः सन्त्यष्टौ मध्यदेशकाः ॥ २२ ॥
विख्याता गोस्तनाकारैर्मूलं लोकस्य मध्यगाः ।
अथ कुर्वंस्तदारभ्य कश्चिज्जीवो विपद्यते ॥ २३ ॥
तावन्मानप्रदेशांश्च नीत्वोत्पन्नो निजोदरे ।
मुक्तायुः सोचिते काले मृत्वोत्पन्नो स कुत्रचित् ॥ २४ ॥
एकप्रदेशमतिक्रम्य तत्रैवोत्पद्यते पुनः ।
एवं क्रमात्परित्यज्य तमेकैकं प्रदेशकम् ॥ २५ ॥
कश्चित्समूर्छते जीवे मृत्वा मृत्वा पुन पुनः ।
यावतः सर्वलोकस्य सर्वदेशाः प्रपूरिताः ॥ २६ ॥
सर्वत्रैकेन जीवेन जन्मना मृत्युना तथा ।
तदा समुदितः सोऽयं क्षेत्रसंसारलक्षण ॥ २७ ॥
सोऽप्यनर्थं कृतोऽनेन पूर्णो वारानन्तशः ।
निरंशः समयः काल साऽपि संलक्ष्यते जिनैः ॥ २८ ॥
अणोः पर्यटतो मन्दगत्या शुद्धस्य मानतः ।
अथोत्सर्पापसर्पाभ्यां देहादीनां समासतः ॥ २९ ॥
सङ्ख्यान्वर्याभिधानौ द्वौ कालभेदौ यथाक्रमम् ॥ ४० ॥

१ तत्र सर्वकालं जीवात्ममध्यमप्रदेशा निरपायाः सर्वजीवानां स्थिता एव । केवलीनामपि अयोगिनां सिद्धानां च सर्वे प्रदेशाः स्थिता एव । व्यायामदुःखपरितापोद्रेकपरिणतानां जीवानां अष्टौ आत्ममध्यप्रदेशवर्जितानां इतरे प्रदेशा अवस्थिता एव । शेषाणां प्राणिनां स्थितास्थितास्थेति । तत्त्वार्थराजवार्तिके ५. ९ १ ।

तथयोत्सर्पिणीकालो यावदुक्तप्रमाणकः ।
सोऽप्यवसर्पिणीकालस्तावानेव जिनागमे ॥ ४१ ॥
कोटीकोट्यो दशाब्धीनां वार्द्धीनां स्वस्य संख्यया ।
प्रमाणं तत्र प्रत्यक्षं दर्शितं विश्वदर्शिना ॥ ४२ ॥
तस्यामारभ्य मानायामाद्यैकस्मिन्निरंशके ।
समयमन्त्या यदा कश्चित् भवेत्सारम्भकस्तदा ॥ ४३ ॥
भुक्त्वा स्वायुर्यथाकालं मृत्वोत्पन्नश्च कुत्रचित् ।
तस्यां द्वितीयेऽस्मिंश्चेदुत्पन्नो भवेत्तदा ॥ ४४ ॥
अतिक्रान्ता निरंशः स समयश्चैकमात्रकः ।
विद्यमाऽन्यं क्रमः सञ्जिर्नान्यादृशः क्रमः कश्चित् ४५ ॥
यावंत समयास्तस्या मन्यमाना निरंशकाः ।
नीताः सर्वेऽपि जीवेन जन्मना मृत्युना च ते ॥ ४६ ॥
तदायं भ्रमितः सर्वः कालसंसृतिरिष्यते ।
साम्प्रतमुक्तपूर्वस्य जीवस्यानंतशः स्फुटं ॥ ४७ ॥
भवो जीवस्य पर्याय साऽप्यायुरुदयश्च कर्मसात् ।
नारकश्चापि तिर्यञ्चो देवश्चेति चतुर्विधः ॥ ४८ ॥
वत्सराणां त्रयस्त्रिंशदब्धया क्षिति नारक ।
उत्कर्षेणापकर्षेण सहस्राणि दश स्थितिः ॥ ४९ ॥
तत्र यदा नरः कश्चिज्जघन्यायी स्थितिमनुपमां ।
भुक्त्वाम्बिता मृतश्चाथ पञ्चम्येत यतस्ततः ॥ ५० ॥
यदा तु दैवयोगात्स स्थितिं प्राप्नोति तादृशी ।
प्रारम्भकस्तदा ज्ञेयो नान्यथा यतसत्तमैः ॥ ५१ ॥

जघन्यस्थितिवर्षाणां यावन्त समया स्मृता ।
तावन्तो वारानसकृत् (कृत्) मृता जातः पुनः पुनः ॥ ५२ ॥
एवं साधिकमेकेन ततोऽप्येकेन साधिकम् ।
समयेन यदायुः स्याद्वर्द्धमानं शरीरिणाम् ॥ ५३ ॥
तदाप्येष क्रमो ज्ञेयो नान्यथा तदतिक्रमात् ।
क्रमादीनाऽधिकस्यापि नोल्लंघ्य कदाचन ॥ ५४ ॥
वर्द्धमानं क्रमादायुः सर्वोत्कर्षं यदा भवेत् ।
पर्याप्ता भवसंसारो देवनारकयोस्तदा ॥ ५५ ॥
एवं तिर्यग्मनुष्याणां स्थितिरान्तर्मुहूर्तिकी ।
जघन्यायानुत्कर्षेण त्रिपल्योपमसंमिता ॥ ५६ ॥
अथारभ्य जघन्याद्या पूर्ववत्समयाधिकम् ।
पुनर्यथा क्रमादायुर्यावदुत्कर्षतां व्रजेत् ॥ ५७ ॥
नानायोनिष्विह सर्वं स युक्तः समवायवान् ।
उच्यते भवसंसारस्तल्लक्षणविदांवरैः ॥ ५८ ॥
साऽप्यनन्तैव जीवेन भ्रमिता यतस्ततः ।
हन्त नित्यनिगोदाद्या सर्वेणाप्यटता भवम् ॥ ५९ ॥
भावो जीवस्य पर्यायः परिणामगुणात्मकः ।
स चाशुद्धश्च शुद्धश्च द्विधा स्यात्समयागमे ॥ ६० ॥
परद्रव्यात्मकः कर्म ज्ञानाद्यावरणं स्वकम् ।
तद्विपाकनिमित्तोऽस्य भावोऽशुद्धः स जन्मिनः ॥ ६१ ॥
कृत्स्नकर्मक्षयाद्यस्तु भावो जीवस्य निष्क्रियः ।
स शुद्ध इति विज्ञेयो यथा सौख्यमतीन्द्रियम् ॥ ६२ ॥

तत्रोपात्तप्रयुक्तिस्वादशुद्धे परिवर्धनम् ।
शुद्धे भवि स्वरूपत्वाच्चास्ति स्वरशृंगवत् ॥ ६३ ॥
स्थितेरध्यवसायानां स्थानानीह सुसंख्यया ।
पतितानि षड्स्थानैर्लोकासंख्यातमात्रतः ॥ ६४ ॥
एवमध्यवसायानामनुभागोचितलक्षणाम् ।
पतितानि च षट्स्थानैर्लोकासंख्यातमात्रकाः ॥ ६५ ॥
लोकासंख्यातमात्राणि योगस्थानानि संख्यया ।
पतितानि चतुःस्थानैर्वृद्धिहानिक्रमादिति ॥ ६६ ॥
अतश्चैषामनंताः स्युर्भेदास्ते च निरंतराः ।
उत्कृष्टोऽनुत्कृष्टश्च जघन्योऽप्यजघन्यकः ॥ ६७ ॥
सर्वां जघन्यादारभ्य यावदुत्कृष्टतां नयेत् ।
जीवः सर्वानिमान् भावान् भावसंसार इत्ययं ॥ ६८ ॥

उक्तं च—

“पढमक्खो अंतगदो आदिगदे संकमेदि विदियक्खो ।
दोण्णि वि गंतूणंतं आदिगदे संकमेदि तदियक्खो ॥ १ ॥”[1]
कृते नित्यनिगोदाद्या भवसंसारभ्रमणतः ।
एषोऽपि भावसंसारः भाषा भवैरनंतशः ॥ ६९ ॥
पंचप्रकारसंसारं मत्वा मोक्षसुखार्थिनः ।
निःसंसारे निजात्मानं निधाप्याराधयंतु भोः ॥ ७० ॥

॥ इति संसारानुप्रेक्षा ॥

१ प्रथमाक्षः अन्तगत आदिगते संक्रामति द्वितीयाक्षः ।
द्वावपि गत्वान्तमादिगते संक्रामति तृतीयाक्षः ॥
गोम्मटसारजीवकांडे गाथा ॥ ४ ॥

एको द्रव्यस्वभावत्वादनादिनिधनः स्वतः ।
पर्यायार्थादनेकत्वेऽप्यस्य चिद्रूपमात्रतः ॥ ७१ ॥
एकाकी भ्रमते दीनो मोहकर्मावृतः शठः ।
कदर्थीपस्तिर्यगाखीकादश्वपूर्णैरितोऽश्रुतः ॥ ७२ ॥
कदाचिन्नारकं दुःखमेकाकी सहते जडः ।
न कोऽपि तत्र साहाय्यं कुर्याद्यावदिति क्षणम् ॥ ७३ ॥
एकाऽथ स्वर्गसौख्यानि भुंक्ते पुण्योदयादिह ।
तिर्यक्त्वेऽपि नरत्वेऽपि सहायपरिवर्जितः ॥ ७४ ॥
उत्पद्यतेऽथ पञ्चत्वं याति जीवो कदाचिव ।
तदापि पुत्रपौत्रादि मित्रबान्धवसज्जनाः ॥ ७५ ॥
ये कलत्रादयस्तेन नापि सार्द्धं पदं दधुः ।
त्रसस्थावरकायेषु दुःखयोनिसतास्वपि ॥ ७६ ॥
एकाकी भ्रमते प्राणी नानाक्लेशौघपीडितः ।
न सख्यश्रीऽपि तत्रासौ क्षणं यावदिति स्फुटम् ॥ ७७ ॥
एकस्तपोऽसिना हत्वा कर्मारातीः स्वपौरुषात् ।
केवलज्ञानसाम्राज्यं निर्भयं पदमश्नुते ॥ ७८ ॥
इत्येकत्वं परिज्ञाय जंतोः संसारमोक्षयोः ।
सावधानस्तयादेयो मोक्षोऽनंतसुखात्मकः ॥ ७९ ॥

॥ इति एकत्वानुप्रेक्षा ॥

वपुषोऽपि विभिन्नाश्चेज्जीवाः सलक्ष्यते क्षये ।
लक्षणादन्यतः स्फुटं कथं स्वीयाः सुतादयः ॥ ८० ॥

---

१ सहचारी ।

मिथ्यात्वं च कषायाश्च योगा विरतयस्तथा ।
संति भावाश्रवस्येह भेदाः श्रीजिनदेशिताः ॥ १०२ ॥
एभिर्द्वारैस्तु जीवानामाश्रवंतीह पुद्गलाः ।
यथा सच्छिद्रपोतस्य वारिमध्ये स्थितस्य च ॥ १०३ ॥
तत्त्वार्थानामश्रद्धानं श्रद्धानं वा तदन्यथा ।
मिथ्यात्वं प्रोच्यते मार्यैस्तच्च भेदादनेकधा ॥ १०४ ॥
सामान्यादेकमेवैतन्मिथ्यात्वं जातिरूपतः ।
विशेषात्पंचधा यद्वा लोकासंख्यातमात्रतः ॥ १०५ ॥
एकांतमतमिथ्यात्वं द्वितीयं विपरीतकं ।
तृतीयं विनयस्तुर्यं संशयोऽज्ञस्तु पंचमम् ॥ १०६ ॥
उक्तं च—
" एयंतबुद्धदरसी विवरीओ बंभ तावसो विणओ ।
इंदो वि य संसयिदो मक्कडिओ चेव अण्णाणी ॥ १ ॥ "
एतेषां लक्षणं मार्गैर्विज्ञेयं परमागमात् ।
यद्वासंख्यातलोकाः स्युः सूक्ष्मास्ते बुद्धगोचराः ॥ १०७ ॥
कर्षंत्यात्मानमेवाथ कषाया इति दर्शिताः ।
पंचविंशतिसंख्याका मोहकर्मोदयोद्भवाः ॥ १०८ ॥
क्रोधो मानश्च माया च लोभश्चेति चतुर्विधः ।
प्रत्येकं ते ह्यनंता स्यु(न्ता)नुबंधिन उदाहृताः ॥ १ ९ ॥
द्वितीयं तच्चतुष्कं स्यादप्रत्याख्यानसंज्ञकम् ।
प्रत्याख्यानं तृतीयं स्यात्तुर्यं संज्वलनाख्यया ॥ ११० ॥

---

१ एयन्तो बुद्धदरसी विवरीओ बंभ तावसो विणओ ।
इंदो वि य संसइओ मक्कडिओ चेव अण्णाणी ॥ गोम्मटसारे जीवकांडे गा. १६ ।

एवं संमिलिता वर्गाः कषाया षोडश स्मृताः ।
नोकषायास्तथा ज्ञेया सस्यया नव तद्यथा ॥ १११ ॥
हास्यो रत्यरती चैव शोको भीतिस्तथैव च ।
जुगुप्सास्त्रीनरक्लीबवेदाश्चोपेक्षिताः क्रमात् ॥ ११२ ॥
एवमेकीकृताः सर्वे पञ्चविंशतिसंख्यकाः ।
कर्मास्रवस्य कर्तृत्वान्महानर्थविधायिनः ॥ ११३ ॥
अविरतिस्तु विख्याता सर्वतो द्वादशात्मना ।
अंतर्भूता कषायेषु पृथगप्युपदेशिता ॥ ११४ ॥
इंद्रियाणि च पंचैव मनः षष्ठमुदाहृतम् ।
तेषामनिग्रहात्प्रोक्ता षोढा विरतिरित्यपि ॥ ११५ ॥
पंचस्थावरजीवानां षष्ठस्यापि त्रसस्य च ।
प्राणापरोपणं हिंसा षोढा सा चेति संमिता ॥ ११६ ॥
धर्मः स्वात्मानुभूत्यात्म प्रमादोऽनवधानता ।
हेतोः कर्मास्रवस्यास्य भेदा पञ्चदश स्मृता ॥ ११७ ॥
उक्तं च—
" विकहा तहा कसाया इंदियणिद्दा तहेव पणयो य ।
चदु चदु पणमेगेगं होंति पमादा हु पण्णरसा ॥ १ ॥ "
योगस्त्वात्मप्रदेशानां परिस्पंदक्रिया मतः ।
मनोवाक्कायरूपाणां वर्गणानां विपाकतः ॥ ११८ ॥
सोऽपि सत्यादिरूपेण भिद्यते नैकधा बुधैः ।
औदारिकादिभेदैश्च काययोगोऽप्यनेकधा ॥ ११९ ॥

---

१ विकथास्तथा कषाया इन्द्रियनिद्रास्तथैव प्रणयश्च ।
चतुश्चतुःपञ्चैकैकं भवन्ति प्रमादा खलु पञ्चदश ॥
गोम्मटसारजीवकाण्डे च १४ ॥

नीनात्संपञ्चियार्थाद विमानस्थानि नियमात् ।
घनाकारपरमीर मनरमनरां (न्या) विस्तरत ॥ ८१ ॥
ये च गगादया माना भावकर्मोदयात्मका ।
विनामासाय ते सर्वे विमायतन्यरूपनः ॥ ८२ ॥
नीरस्थानगुणस्थानचस्थानान्यपि क्रमात् ।
पागस्थानानि मिमानि स्वात्मनः सर्वपाप्यत ॥ ८३ ॥
वयायस्परमायानां स्थानानीह बहूनि च ।
भिमनक्षणमस्यस्माइन्यानीव चिद्रात्मन ॥ ८४ ॥
यथायमनमध्यात्मसस्थात्मनेमत्र ।
विविधान्यपि नग्नाप भिमान्यात्मपमुण्यात् ॥ ८५ ॥
मृगस्थानात्म चि तुल्यदशा स्थिता: स्तन ।
पराभावगाहिम ज्ञानादन्य स्वभावन ॥ ८६ ॥
वर्णादि यथा सम्यक्पयोविद्यनिवर्णाः ।
मनार्थापार्थ ते सर्वे स्पष्टता गुणानयः ॥ ८७ ॥
ज्ञानादादनिस्थानि क्यास्यष्टाध्यभम्यया ।
नात्मात्मनः भिमानि चिद्रपतत्स्वतः ॥ ८८ ॥
तापारसनामका भावा वनिज्ञानादय क्रमात् ।
ते सर्वे यस्य जीवस्य न सर्वापि विनिश्चयात् ॥ ८९ ॥
मर्म वा बद्धावमन्नागपरामात्माद्रूप: ।
मुरुचा विन्मात्ममात्मानमनात्पयम परम ॥ ९० ॥
तस्मात्य योञ्जाय पात्रा यचार्थ प्रभिन्न ।
निर्पग्यन वीतार्यविशेषविर्द यम ॥ ९१ ॥

॥ इति अन्यत्वानुप्रेक्षा ॥

अशुचि सर्वदेहोऽयं शुक्रशोणितयोनिमः ।
असृग्मांसवसाकीर्णः का कथा बाह्यवस्तुषु ॥ ९१ ॥
चर्मासृग्रसमाकीर्णं चर्मबद्धास्थिसंचयम् ।
श्रावयद्भिर्मलानीह बीभत्सुसर्वितापकम् ॥ ९३ ॥
पवित्रमपि सुन्दरं वस्तु पूतं वा यत्संसर्गतः ।
वपुः संसर्गतो नूनं क्षणादशुचितां व्रजेत् ॥ ९४ ॥
अस्य जन्तोस्त्वमी नूनं कात्स्न्येनोपलक्षिताः ।
सर्वे रागादयो भावा हेयाश्चाशुचिर्मदिरा¹ ॥ ९५ ॥
रागसद्भावतो नूनं त्रिदशेऽपि दिवौकसाम् ।
शुचि कुवस्तुनी तेषां कश्मलैर्दूषितात्मनाम् ॥ ९६ ॥
अतश्चैकः स शुद्धात्मा चिद्रूपो रूपवर्जितः ।
त्रिदशेऽपि शुचि साक्षात् स्वतोऽनन्तगुणात्मकः ॥ ९७ ॥
यदि वा दर्शनज्ञानचारित्राणि शुचीन्यहो ।
सम्यक्त्वक्षयोपशमात्मानि तन्मलापगमादितः ॥ ९८ ॥
अशुचित्वं परित्यज्य शुचिर्ग्राह्या मनीषिभिः ।
चैतन्यलक्षणः सोऽव्ययमर्थो निरूपणे ॥ ९९ ॥

॥ इत्यशुचित्वानुप्रेक्षा ॥

आस्रवः स द्विधा प्रोक्तो भावद्रव्याभिभेदतः ।
तत्र रागादयो भावाः कर्मागमनहेतवः ॥ १०० ॥
तस्माद्भावास्रवो ज्ञेयो रागभावः शरीरिणाम् ।
तद्धेतोः कर्मरूपेण भावी द्रव्यास्रवः स्मृतः ॥ १०१ ॥

---

१ हेयाश्चे ।

मिथ्यात्वं च कषायाश्च योगा विरतयस्तथा ।
संति भावास्रवस्येह भेदाः श्रीजिनदेशिताः ॥ १०२ ॥
एभिर्द्वारैस्तु जीवानामास्रवतीह पुद्गलाः ।
यथा सच्छिद्रपोतस्य वारिमध्ये स्थितस्य च ॥ १०३ ॥
तत्त्वार्थानामश्रद्धानं श्रद्धानं वा तदन्यथा ।
मिथ्यात्वं प्रोच्यते मोहस्तच्च भेदादनेकधा ॥ १०४ ॥
सामान्यादेकमेवैतन्मिथ्यात्वं जातिरूपतः ।
विशेषात्पंचधा यद्वा लोकासंख्यातमात्रतः ॥ १०५ ॥
एकमेकांतमिथ्यात्वं द्वितीयं विपरीतकं ।
तृतीयं विनयस्तुर्यं संशयोऽज्ञस्तु पंचमम् ॥ १०६ ॥
उक्तं च—
" एयंतबुद्धदरसी विवरीओ बंभ तावसो विणओ ।
इंदो वि य संसइदो मक्कडिओ चेव अण्णाणी ॥ १ ॥[1] "
एतेषां लक्षणं मार्गविज्ञेय परमागमात् ।
यद्वासंख्यातलोकाः स्युः सूक्ष्मास्ते बुद्ध्यगोचराः ॥ १०७ ॥
कषायास्थानमेवात्र कषायाश्चेति दर्शिताः ।
पंचविंशतिसंख्याका मोहकर्मोदयोद्भवाः ॥ १०८ ॥
क्रोधो मानश्च माया च लोभश्चेति चतुर्विधः ।
प्रत्येकं त अनंता स्यु(स्ता)नुबंधिन उदाहृताः ॥ १०९ ॥
द्वितीयं तच्चतुष्कं स्यादप्रत्याख्यानसंज्ञकम् ।
प्रत्याख्यानं तृतीयं स्याच्चतुर्थं संज्वलनाख्यया ॥ ११० ॥

---

१ एयन्तो बुद्धदरसी विवरीओ बह्म तावसो विणओ ।
इंदोऽवि य संसइया मक्कडी चेवण्णाणी ॥ गोम्मटसारे जीवकांडे गा. १६ ।

एवं समिलिता भेदैः कषाया षोडश स्मृता ।
नोकषायास्तथा ज्ञेया सप्ततया नव तद्यथा ॥ १११ ॥
हास्यो रत्यरती चैव शोको भीतिस्तथैव च ।
जुगुप्सास्त्रीनरक्लीबवेदा मोगेभिता क्रमात् ॥ ११२ ॥
एवमेकीकृताः सर्वे पंचविंशतिसंख्यकाः ।
कर्मास्रवस्य कर्तृत्वान्महानर्थविधायिनः ॥ ११३ ॥
अविरतिस्तु विख्याता सर्वतो द्वादशरूपया ।
अंतर्भूता कषायेषु पृथगप्युपदेशिता ॥ ११४ ॥
इंद्रियाणि च पंचैव मनः षष्ठमुदाहृतम् ।
तेषामनिग्रहात्प्रोक्ता षोढा विरतिरित्यपि ॥ ११५ ॥
पंचस्थावरजीवानां षष्ठस्यापि त्रसस्य च ।
प्राणापरोपणं हिंसा षोढा सा चेति संमिता ॥ ११६ ॥
धर्मैः स्वात्मानुभूत्यास्य प्रमादोनवधानता ।
हेतुः[1] कर्मास्रवस्यास्य भेदाः पंचदश स्मृता ॥ ११७ ॥
उक्तं च—
“ विकहा तहा कसाया इंदियणिद्दा तहेव पणयो य ।
चदु चदु पणमेगेगं होंति पमादा हु पण्णरसा ॥ १ ॥”
योगस्त्वात्मप्रदेशानां परिस्पंदक्रिया मतः ।
मनोवाक्कायरूपाणां वर्गणानां विपाकतः ॥ ११८ ॥
सोऽपि सत्यादिरूपेण भिद्यते नैकधा बुधैः ।
औदारिकादिभेदैश्च काययोगोऽप्यनेकधा ॥ ११९ ॥

---

१ विकथास्तथा कषाया इन्द्रियनिद्रास्तथैव प्रणयश्च ।
चतु-चतु-पंचैकैकं भवन्ति प्रमादा खलु पंचदश ॥
गोम्मटसारजीवकाण्डे च ३४ ॥

उक्तं च—

" [1]कम्मत्तणेण एक्कं दव्वं भावं तु होइ दुविहं तु ।
तं पुण अट्ठविहं वा अडदालसयं असंखलोगं वा ॥ १ ॥"

तारतम्यात्मकं तस्य (च) निकृष्टोत्कृष्टमध्यमम् ।
निरवद्यपात्स्वेषो हि वेदितव्यं महागमात् ॥ १२० ॥
सर्वं हेयं विजानीयादास्रवं परमार्थतः ।
एको निरास्रवः स्वात्मा ग्राह्यो शुद्धानुभवितः ॥ १२१ ॥

॥ इति आस्रवानुप्रेक्षा ॥

आस्रवाणां निरोधो यः संवरः प्रोच्यते बुधैः ।
द्रव्यभावविभेदेन सोऽपि द्वैविध्यमश्नुते ॥ १२२ ॥
यन्नश्चिन कषायाणां निग्रहः स्यात्सुदृष्टिनाम् ।
तन्नश्चिन प्रयुज्येत संवरो भावसंज्ञकः ॥ १२३ ॥

उक्तं च—

" [2]वदसमिदीगुत्तीओ धम्माणुपेहापरीसहजओ य ।
चारित्तं बहुभेया णायव्वा भावसंवरविसेसा ॥ १ ॥"

कर्मणामास्रवी भावा रागादीनामभावतः ।
तारतम्यतया सोऽपि प्रोच्यते द्रव्यसंवरः ॥ १२४ ॥

---

१ कर्मत्वेन एकं द्रव्यं भावो तु होदि द्विविधं तु ।
तत् पुनः अष्टविधं वा अष्टचत्वारिंशत् असंख्यलोकं वा ॥
गोम्मटसारकर्मकाण्डे ॥

२ व्रतसमितिगुप्तयः धर्मानुप्रेक्षापरीषहजयश्च ।
चारित्रं बहुभेदाः ज्ञातव्याः भावसंवरविशेषाः ॥ द्रव्यसंग्रहे ॥

अयमेकः सदा सेव्यः संवरो मोक्षसाधनम् ।
अथ तदविनाभूतः शुद्धः सेव्यश्चिदात्मकः ॥ १२५ ॥

॥ इति संवरानुप्रेक्षा ॥

निर्जरापि द्विधा ज्ञेया भावद्रव्यविभेदतः ।
अपि चैकादशस्थानैः स्याताः संख्यगुणक्रमाः ॥ १२६ ॥
आत्मनः शुद्धभावेन गलत्येतत्पुराकृतम् ।
वेगाद्भुक्तरसं कर्म सा भवेद्भावनिर्जरा ॥ १२७ ॥
आत्मनः शुद्धभावस्य तपसोऽतिशयादपि ।
यः पातः पूर्वबद्धानां कर्मणां द्रव्यनिर्जरा ॥ १२८ ॥
यथाकाले समागत्य दत्त्वा कर्मरसं पतत् ।
निर्जरा सर्वजीवानां स्यात् सविपाकसंज्ञका ॥ १२९ ॥
इयं मिथ्यादृशामेव यदा स्याद्बन्धपूर्विका ।
मुक्तये न तदा ज्ञेया मोहोदयपुरस्सरा ॥ १३० ॥
सविपाका विपाका वा सा स्यात्संवरपूर्विका ।
निर्जरा मुमुक्षामेव नापि मिथ्यादृशां क्वचित् ॥ १३१ ॥
निर्जरालक्षणं ज्ञात्वा मोक्षसिद्धिमभीप्सुभिः ।
सर्वारंभेण शुद्धात्मा संचितव्यस्तदंगव ॥ १३२ ॥

॥ इति निर्जरानुप्रेक्षा ॥

अधो वेत्रासनाकारा मध्ये स्याज्झल्लरीनिभः ।
मृदंगसदृशश्चाग्रे लोकस्येति त्रिधा स्थितिः ॥ १३३ ॥
पापास्तु पापपाकेन पच्यंते छेदनादिभिः ।
सप्तश्वभ्रेष्वधोभागे नारका नारकैः सह ॥ १३४ ॥
केचित्पुण्योदयेनैव स्वर्गेषु सुखसंपदः ।
भुंजते दिव्यभोगांश्च सागरावधिजीविनः ॥ १३५ ॥

क्वचित्सौख्यं क्वचिद्दुःखं मध्यलोके क्वचिद्द्वयम् ।
प्राप्नुवन्ति नृतिर्यञ्चः पुण्यपापवशीकृताः ॥ १३६ ॥
लोकाग्रे शाश्वतं धाम मनुष्यक्षेत्रसंमितम् ।
अनंतसुखसंपन्नाः सिद्धा यत्र वसंत्यहो ॥ १३७ ॥
एवल्लोकत्रयं ज्ञात्वा जन्मदुःखं विभाव्य च ।
हत्वा मोहं दृगाद्यैश्च साधयंतु महर्षयः ॥ १३८ ॥

॥ इति लोकानुप्रेक्षा ॥

बोधिर्बोधनमित्युक्तमनन्यमनसात्मनः ।
दुर्लभा सा हि जीवानां बोधिर्दुर्लभ इष्यते ॥ १३९ ॥
अनंतानंतजीवानां सदानादिवनस्पतौ ।
निःसरंति ततः केचिद्गतेऽनंतेऽप्यनेहसि ॥ १४० ॥
ततः कथंकथंचिद्वै पृथ्वीकायिकादिषु ॥ १४१ ॥
उत्पद्यते यथा दैवात् दुर्गतौ रत्नसंनिधिः ।
ततः कृच्छ्रतमाप्ये हि त्रसपर्यायदुष्कर्मणाम् ॥ १४२ ॥
द्वीन्द्रियादिषु जायेत चिरलाभमिव दुर्गतौ ।
पर्याप्तत्वं ततः कृच्छ्रात्प्राप्यते प्राणिभिः क्वचित् ॥ १४३ ॥
प्रायोऽपर्याप्तका जीवा संत्यत्र नश्यो यतः ।
तथाष्टादशमात्रेण जन्मानि मरणानि च ॥ १४४ ॥
तस्यापायाद्यथावर्यं जायते दुःखजात्यहो ।
अतस्ततोऽपि निःसृत्य कृच्छ्रात्पंचेन्द्रियोऽभवत् ॥ १४५ ॥
ततः कथंकथंचिद्वै संज्ञी भवति मानवः ।
तथाप्यार्यसंदेशेऽस्मिन्नुत्पत्तिर्दुर्लभा नृणाम् ॥ १४६ ॥
तथाप्युच्चैःकुले जन्म दुर्लभं जैनधर्मिणि ।
प्राप्तेऽप्यायुः सुसंपूर्णं वपुरारोग्यमेव च ॥ १४७ ॥

तयोश्चरं सुदुष्प्राप्यं प्राप्यते दैवयोगतः ।
तथापि विषयासक्तानां धर्मबुद्धिस्तु दुर्लभा ॥ १४८ ॥
प्राप्तायां धर्मबुद्धौ च दुर्लभं धर्मपाटवं ।
प्राप्ते तस्मिन्नपि प्रायो दुर्लभा गुरुदेशना ॥ १४९ ॥
प्राप्तौ तस्यां कषायाणां निग्रहस्त्वतिदुर्लभः ।
सति यस्मिन् भवत्येव संयमः कर्मनाशकृत् ॥ १५० ॥
लब्धे तस्मिन्नपि प्राय (प्रायः ?) कालकर्मवशीकृतः ।
शुद्धचैतन्यरूपस्य बोधिलाभस्तु दुर्लभः ॥ १५१ ॥
उक्तं च—
" खओवसमविसोही देसणपाओगकरणलद्धी य ।
चत्तारि वि सामण्णा करणं सम्मत्तजुयस्स ॥ १ ॥ "
इदमत्र हि तात्पर्यं विज्ञेयं परमार्थिभिः ।
दुर्लभे बोधलाभेऽस्मिन् प्रमादो दस्युरेव हि ॥ १५२ ॥

॥ इति बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा ॥

धर्मशब्दस्त्वनेकार्थेऽप्येकार्थं प्रत्ययत्यहो ।
यस्माद्धत्तेऽपदे धत्ते जीवं नीचैःपदादपि ॥ १५३ ॥
धर्मो वस्तुस्वभावः स्यात्कर्मनिर्मूलनक्षमः ।
तथैव शुद्धचारित्रं साम्यभावश्चिदात्मनः ॥ १५४ ॥
व्यवहारेण तत्प्रोक्तो धर्मः संयमसंज्ञकः ।
सर्वप्राणिदयामूलस्तपःशीलसमन्वितः ॥ १५५ ॥

---

१ क्षायोपशमिकविशुद्धी देशनाप्रायोग्यकरणलब्धयश्च ।
चतस्रोऽपि सामान्याः करणं सम्यक्त्वयुतस्य ।

कश्चित्सौख्यं कश्चिद्दुःखं मध्यमाके कश्चिद्द्वयम् ।
प्राप्नुवंति नृतिर्यंचः पुण्यपापवशीकृताः ॥ १३६ ॥
लोकाग्रे शाश्वतं धाम मनुष्यक्षेत्रसंमितम् ।
अनंतसुखसंपन्नाः सिद्धा यत्र वसंत्यहो ॥ १३७ ॥
एतल्लोकत्रयं ज्ञात्वा तन्मूर्द्धस्थ शिवाप्तये ।
हत्वा मोहं दृगादीश्च साधयंतु महर्षयः ॥ १३८ ॥
॥ इति लोकानुप्रेक्षा ॥
बोधिर्बोधनमित्युक्तमनन्यमनसात्मनः ।
दुर्लभा सा हि जीवानां बोधिर्दुर्लभ इष्यते ॥ १३९ ॥
अनंतानतजीवानां सथानादिवनस्पतौ ।
निःसरंति तत कश्चित्प्रतेऽनंतऽप्यनहसि ॥ १४० ॥
तत कथंकथंचिद्धि पृथ्वीकायिकादिषु ॥ १४१ ॥
उत्पद्यंते तथा दैवात् दुर्गतौ त्रसपर्यायैः ।
ततः कृच्छ्रतमात हि त्रसत्वादुष्टकर्मणाम् ॥ १४२ ॥
द्वीन्द्रियादिषु जायंते चिरकालाभिव दुर्गतौ ।
पयाप्तत्व ततः कृच्छ्रात्प्राप्यत प्राणिभिः कश्चित् ॥ १४३ ॥
प्राप्ताऽप्ययपाप्तका जीवा सत्पत्र भवा यतः ।
तपामुच्छ्वासमात्रेण जन्मानि मरणानि च ॥ १४४ ॥
सत्पर्याप्तत्वदुष्प्राप्यं जायंते दुःखभान्यहो ।
अनस्ततोऽपि निःसृत्य कृच्छ्रात्पंचेन्द्रियाऽभवत् ॥ १४५ ॥
ततः कथंकथंचिद्धि सज्ञी भवति मानवः ।
तत्राप्यार्यसत्क्षेत्रेऽस्मिन्नुत्पत्तिर्दुर्लभा नृणाम् ॥ १४६ ॥
तत्राप्युच्चैःकुले जन्म दुर्लभं जैनधर्मणि ।
प्राप्तेऽप्यायुः सुसंपूर्णं वपुरारोग्यमेव च ॥ १४७ ॥

मयस्त्रिंशत्समुद्रायुर्भुक्त्वा सौख्यं निरंतरम् ।
दुर्लभं चाल्पपुण्यानां सर्वं बाधामगोचरम् ॥ १६६ ॥
स्वायुरन्ते ततश्च्युत्वा संप्राप्य चरमं वपुः ।
केवलज्ञानमुत्पाद्य गंतासौ परमां गतिम् ॥ १६७ ॥
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमोऽनंतसुखात्मने ।
नमोऽनंतवीर्याय केवलज्ञानभानवे ॥ १६८ ॥
शतानां पंचसंख्याका भवदत्त्रिमुनीश्वराः ।
अंते सल्लेखनां कृत्वा दिवं जग्मुर्यथायथं ॥ १६९ ॥
जंबूस्वामिजिनेशस्य चरित्रमिदमुत्तमम् ।
मेनागमानुसारेण मोक्षमल्पधिया मया ॥ १७० ॥
यदत्र स्खलितं किंचित्प्रमादाद्वारदं मम ।
स्वल्पजनसंख्यादि तत्संतव्यं जगन्नुते ॥ १७१ ॥
अपारं चातिगंभीरं महाशब्दमतिदुस्तरं ।
को न मुह्यति शास्त्राब्धौ विद्वानपि मनीषया ॥ १७२ ॥
जंबूस्वामिवदुत्तमं मधुरसं भूमौ तथा यो जनः ।
पंचाशारिविशालकामगदनभणीपु द्रावापर्यं ॥
स स्यात्सौख्यनिधिर्नरं ननु सुधा शास्ति निःशंकनिः ।
दुर्लोकं करणापरा निपमुख्य संज्ञास्ति रम्या यदि ॥ १७३ ॥
ये शृण्वंति चरित्रमुत्तममिदं श्रीमंधुनाम्ना मुनेः ।
नानाविधभक्त्याविभूषितपतिमार्गाण्यभावार्पनं ॥
तेषां स्यात्सत्पुण्यकर्मनिपुणा बुद्धिः स्वयंभूरिव ।
स्वनंताग्रपभवभूतगुणमाप्स्याशु यमाप्सदम् ॥ १७४ ॥

द्विधा सोऽप्यागमाभेदात् गृहस्थस्वामिनोर्द्वयी ।
त्रिधा सद्दर्शनज्ञानचारित्रत्रयभेदतः ॥ १५६ ॥
दशधापि तथा धर्मस्तथा लक्षणसंभवात् ।
उत्तमादौ क्षमा ज्ञेया मार्दवार्जवसत्यवाक् ॥ १५७ ॥
शौचं संयम एवात्र तपस्त्यागस्तथोत्तमम् ।
आकिञ्चन्यमथा ब्रह्म ब्रह्मचर्यं सुदुष्करं ॥ १५८ ॥
धर्मोऽमुत्रेह पाथेयं सम्प्रदः (सम्पदः) नित्योपकारकं ।
पिता माता च बन्धुश्च दैवस्याप्यंगिनामिह ॥ १५९ ॥
मत्वेति धीधनैः कार्या धर्मबुद्धिः सनातनी ।
न हि कालकलैः क्वापि नेतव्या स्वल्पापि शिथिला ॥ १६० ॥
सर्वथापि दिशः शून्या विना धर्मेण धर्मिणाम् ।
मत्वैतत्स्वहितं कार्यं यावत्कृतवाप्यसम्म् ॥ १६१ ॥

॥ इति धर्मानुप्रेक्षा ॥

॥ इति द्वादशानुप्रेक्षा ॥

एवं चिंतयतस्तस्य इति द्वादशभावनाः ।
प्रभातमिव सम्भासीद्घोरं चाप्युपसर्गकम् ॥ १६२ ॥
दृढाश्रितं चिदात्मानं स्वानुभूत्येकमानतः ।
विद्युच्चरः समारभ्य जयति स्म परीषहान् ॥ १६३ ॥
व्यतीते चोपसर्गेऽस्य मुनिर्विद्युच्चरो महान् ।
ध्याने ध्यायन्नि यथास्थितो तेजःपुञ्ज इवा(व)युतः ॥ १६४ ॥
प्रातःकालेऽस्य संजाते मोक्षसल्लेखनाविधौ ।
चतुर्विधाराधनां कृत्वागमत्सर्वार्थसिद्धिकं ॥ १६५ ॥

अथ प्रशस्ति

शब्दार्थैरर्थसच्छास्त्र यथेद याति पूर्णताम् ॥
तथा कल्याणमालाभिर्वर्द्धतां साधुधरः ।

अथ संवत्सरेऽस्मिन् श्रीनृपविक्रमादित्यगताब्दसंवत् १६३२ वर्षे चैत्र सुदि ८ वासरे पुनर्वसुनक्षत्रे श्रीअर्गलपुरदुर्गे श्रीपातिसाहिजलाल-दीनअकबरसाहिप्रवर्तमाने श्रीमत्काष्ठासंघे माथुरगच्छे पुष्करगण लोहाचार्यान्वये भट्टारक श्रीमलयकीर्तिदेवा । तत्पट्टे भट्टारकश्रीगुणभद्रसूरिदेवा । तत्पट्टे भट्टारकश्रीभानुकीर्तिदेवा । तत्पट्टे भट्टारकश्रीकुमारसेननामधेयास्तदाम्नायेऽग्रोतकान्वये गर्गगोत्रे मढानियाकोउपास्तव्य श्रावकसाधुश्री (न)न्दन तद्भ्राता साधुश्रीआमू तद्भार्या सरो तया पुत्रत्रय । ज्येष्ठपुत्र साधुरूपचन्द तस्य भार्या जिनमती । तस्य पुत्रत्रय । प्रथमपुत्र साधुजसरथ । तस्य भार्या गाभो तस्य पुत्रत्रय । प्रथम साहठोरचद भाया प्यारी । तस्य पुत्र साहगरीबदास भार्या हमीरदे तस्य पुत्रा पत्र । प्रथम साहखेमराज भार्या गरीबदासपुत्रा द्वौ । दुरगल तृतीयपुत्र हरिवंश साहजसरथपुत्र-द्वितीयसाधुश्रीहेमचन्द्र तस्य भार्या भवानी तस्य पुत्र साधुथानसाह भार्या बूबा जसरथतृतीयपुत्र साधुचौहथ तस्य भार्या भागमती तस्य पुत्रत्रयम् । प्रथम पुत्र साधुमोहन भार्या पारो पुत्र हाउचन्द साधु चौहथ । द्वितीयपुत्र आरथमल भाया साधुरूपचंदद्वितीयपुत्र

पठनीयं पाठनीयं शास्त्रमेतन्मुनीश्वरैः ।
जंबूस्वामिचरित्राय रोमांचमननक्षमम् ॥ १७५ ॥
तत्क्षम्यं शारदे देवि यदत्र गदितं मया ।
न्यूनाधिकं मयेत्किंचित्प्रमादाद्वा मतितोऽथवा ॥ १७६ ॥
जंबूस्वामी जिनाधीशो भूयात्मंगलसिद्धये ।
भवतां भुवि भो भव्याः श्रीधराविमलेश्वरी ॥ १७७ ॥

इति श्रीजम्बूस्वामिचरिते भगवत्पूर्वनिश्चलतीर्थकरोपदेशानुसरित
स्याद्वादानवद्यगद्यपद्यविद्याविशारदपण्डितराजमल्लविरचिते
साधुपासाख्यसाधुटोडरसमभ्यर्थिते मुनिश्रीविद्युच्चर
सर्वार्थसिद्धिगमनवर्णनो नाम त्रयोदशः पर्व ॥

इति जम्बूस्वामिचरितम् समाप्तम् ॥

अथ प्रशस्ति

सम्यगर्थैरर्थयत्नाच्च यथेदं याति पूर्णताम् ॥
तथा कल्याणमालाभिर्वर्द्धतां साधुटोडरः ।

अथ संवत्सरेऽस्मिन् श्रीनृपविक्रमादित्यगताब्दसंवत् १६३२ वर्षे चैत्र सुदि ८ वासरे पुनर्वसुनक्षत्रे श्रीअर्गलपुरदुर्गे श्रीपातिसाहिजलालदीनअकबरसाहिप्रवर्त्तमाने श्रीमत्काष्ठासंघे माथुरगच्छे पुष्करगण लोहाचार्यान्वये भट्टारकश्रीमलयकीर्तिदेवा । तत्पट्टे भट्टारकश्रीगुणभद्रसूरिदेवाः । तत्पट्टे भट्टारकश्रीभानुकीर्तिदेवा । तत्पट्टे भट्टारकश्रीकुमारसेननामधेयास्तदाम्नायेऽग्रोतकान्वये गर्गगोत्रे भटानियाकोल्हवास्तव्य श्रावकसाधुश्री (म)म्दन तद्भार्या साधुश्रीवास् तद्भार्या सरो तयो पुत्रत्रय । ज्येष्ठपुत्र साधुरूपचंद तस्य भार्या जिनमती । तस्य पुत्रत्रय । प्रथमपुत्र साधुजसरथ । तस्य भार्या गाणो तस्य पुत्रत्रय । प्रथम साधुकोरचंद्र भार्या प्यारी । तस्य पुत्र साधुगरीबदास भार्या हमीरदे तस्य पुत्रा पद्म । प्रथम साधुहेमराज भार्या   गरीबदासपुत्री द्वौ । दुरगन तृतीयपुत्र हरिवंश   साधुजसरथपुत्र-द्वितीयसाधुर्भागमल्ल तस्य भार्या भवानी तस्य पुत्र साधुचोमसाह भार्या दूगो जसरथतृतीयपुत्र साधुपीरथः तस्य भार्या भगामती तस्य पुत्रद्वयम् । प्रथम पुत्र साधुमोताल भार्या पारो पुत्र मलूकचंद साधु चौहथ । द्वितीयपुत्र तारपदास भार्या   साधुरूपचंदद्वितीयपुत्रः

साधुरामस्त भार्या चिरो तस्य पुत्र साधुनयमल भार्या चांदनदे साधु-रूपचन्दतृतीयपुत्र साधुश्रीपासा भार्या चोपा तस्य पुत्र साधुटोडर तस्य भार्या कसूंभी तस्य पुत्रत्रय । पुत्र साधुश्रीऋषभदास तस्य भार्या कमलमती । साधुटोडरद्वितीयपुत्र मोहनदास तद्भार्या मथुरी । साधुटोडर तृतीयपुत्र चिरंजीवी रूपमांगद एतेषां मध्ये परमसुश्रावकसाधुश्रीटोडरेण जम्बूस्वामिचरित्र कारापित । लिखापित च कर्मक्षयनिमित्तम् ॥

लिखित गंगादासेन ।

॥ इति ॥

अध्यात्मकमलमार्तण्डः

प्रथम परिच्छेद

प्रणम्य भाव विशदं चिदात्मकं, समस्ततत्त्वार्थविदं स्वभावतः ।
प्रमाणसिद्धं नययुक्तिसंयुतं, विमुक्तदोषावरणं समंततः ॥ १ ॥

---

१ नत्वा । २ परमात्मानम् । अत्र भावशब्दः आत्मवाचको ग्राह्यः । "भाव: सत्तास्वभावा-भिप्रायचेष्टात्मजन्मसु" इत्यमरः । ३ निर्मलम् । अव्यवहितोपरीहितम् । ४ चिदेवात्मा एव आत्मा स्वरूपं यस्य तं चिदात्मकं । चेतनास्वरूपमित्यर्थः । ५ तत्त्व भावस्तत्त्वं । येऽर्थो यथा व्यवस्थितस्तथार्थस्य तथा भावो भवनं तत्त्वमुच्यते । अर्यते गम्यते ज्ञायते निश्चीयते इत्यर्थः तत्त्वेनार्थस्तत्त्वार्थः । तत्त्वमेव वार्थस्तत्त्वार्थः । तत्त्वार्थं सम्यग्दर्शनस्वरूपार्थं । अत्र तत्त्वार्थेन जीवादिपदार्था ज्ञेयाः । तत्त्वार्थग्रहणेन प्रयोजनाभिधेयसम्बन्धादिकं मतं तत्त्वार्थस्य मोक्षप्राप्तेरुपकारत्वात् । अर्थशब्दस्यानेकार्थत्वं । तदुक्तम्—हेतौ प्रकाशने वाच्ये निवृत्तौ विषये तथा । प्रकारे वस्तुनि द्रव्ये अर्थशब्दः प्रवर्तते । ६ । समस्ताश्च ते तत्त्वार्थाः पदार्थास्तान् वेत्ति जानातीति समस्ततत्त्वार्थ-वित् तम् । ६ स्वाभिप्रायस्वरूपेणेत्यर्थो वा । ७ प्रमाणैः प्रत्यक्षपरोक्षादिभिः सिद्धं परमात्मस्वरूपम् । ८ साध्यविशेषस्य निश्चयादिविषयत्वे प्रमाणस्वरूपप्रतिपादननिपुणप्रयोज्ये यथावस्थितस्वरूपेण प्रवर्तनसमर्थन्यायपरो नय उच्यते । वस्तुनोऽंशस्याभिप्राय इत्यर्थः । नयेति प्राप्नोति प्रमाणव्याप्तमिति नयास्तथा युक्तिर्योजनं विविधप्रमाणानां संयोजनम् अथवा प्रमाणं नैगमादिर्नयः युक्तयस्तास सर्वाभिः संयुतं युक्तम् । ९ दोषाः रागद्वेषमोहादयः आवरणमावरणं ज्ञानावरणादि । अथवा दोषा रागादयः आवरणमूला आवरणस्य कारणत्वात्, आवरणं ज्ञानावरणदर्शनावरणादि । विमुक्तं मुक्तिं दोषावरणं यस्य तम् । अर्थात् केवलज्ञानदर्शन-सहितम् । १० समन्ततः सर्वतः प्रकारैः विशिष्टरहितत्वादिविमुक्तदोषावरणमिति । अथवा समन्ततो समीचीनतया भावं प्रणम्येति योजनम् ।

अनन्तधर्मैं समय पदार्थान्निर्दैवं, कुनादिनीदामहतसमासमम् ।
मुनेऽ पदगमणिपिहुमदुर्वं, पदार्थवर्णं भवतापशान्तये ॥२॥ तुभ्यं
नमोऽस्तु तुभ्यं भगवन्य भारति, मसार्थपापं कुरु मां हि किंकरम् ।
तव मसादादिह तत्त्वनिर्णय, यथार्थमेवार्थं विदंधे स्वसंविदे ॥३॥
मोहः संतानवर्ती भवभवगहनद्रा ग्रन्थकर्मोपहतु-
स्तस्यैवानघमूर्तिर्मनमिव खलु *भवपीत न यस्य ।
पोरस्तोभेमयुक्ता [illegible]परिभाव्युतिम ।
गच्छत्वध्यात्मकमलपुर्णिपरपरिम्भापनात्म धिवीऽस्वसं ॥ ४ ॥

---

१ [illegible] । [illegible] ' [illegible] ।
२ [illegible] ' [illegible] " [illegible] ।
[illegible] । " [illegible] " । [illegible] । ३ [illegible] । ४ [illegible] । ५ [illegible] । ६ [illegible] । ७ [illegible] । ८ [illegible] । ९ [illegible] । १० [illegible] । ११ [illegible] । १२ [illegible] । १३ [illegible] । १४ [illegible] । १५ [illegible] । १६ [illegible] । १७ [illegible] । १८ [illegible] । १९ [illegible] । २० [illegible] । २१ [illegible] ।

मुनः पदपदस्य च [illegible] इत्यपि ।
* भवपीत इत्यपि । × [illegible] इत्यपि ।

मोक्षः स्यात्पदमस्य स्थितिविधिविषये कर्मपर्यायहानि-
र्मूर्छाघात्कालविद्यादिमसतरगुणोऽमूविरस्या यथावत् ।

१ आ इति स्मरणे । हे भव्य त्वं स्मरणं कुरु । अस्यात्मनः । शुक्लध्यानस्यादि पृथक्त्ववितर्कवीचारः । मनोवचनकायानामवष्टम्भेनात्मप्रदेशपरिस्पन्दनमात्मप्रदेशचलन-मतीचारविधयं पृथक्त्ववितर्कवीचारं शुक्लध्यानं भवतीत्यर्थः । पूर्वविदः सकलश्रुतज्ञानिनः श्रुतकेवलिनः धर्मारोहणपूर्वकं धर्मध्यानं भवति तस्योर्ध्वं हि शुक्लध्याने भवत्येन सकल-श्रुतधरस्याप्युपशमकस्यापि धर्मध्यानं भावनीयम् । अपूर्वकरणेऽनिवृत्तिकरणे सूक्ष्मसाम्पराये उपशान्तकषाये चेति गुणस्थानचतुष्टये पृथक्त्ववितर्कवीचारं नाम प्रथमं शुक्लध्यानं तेन शुक्लध्यानापिना । अथवा आर्षप्रामाण्येन शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः । परे केवलिनः ॥ इति वचनात्पृथक्त्ववितर्कवीचारमपि प्राप्यम् । तत्तु क्षीणकषायगुणस्थाने संभवति तेनापि । अथवा शुक्लध्यानसम्बन्धेन आर्षरूपमोऽत्र तपःसमितिगुप्तिपरीषहानुप्रेक्षाचारित्र दशधर्मादिसमस्तप्रकारचारित्रविशेषमूलकोऽपि प्रमाणत्वेन प्राप्तात् आत्मन उपशमभावपर्व प्रथमस्थूलं सूक्ष्मं करणानि इन्द्रियाणि च वपुः शरीरं च इत्यादिपरिणतिविशिष्टस्यात्मन । स्वरूपं ध्यानमवलम्बते । अत्र च निःश्रेयसा दर्शनचारित्रमोहनीयक्षयाभावात्सकलकर्मक्षयात् शुद्धरूपोपलम्भात् शुद्धात्मोपलम्भे सकलशुद्धनिश्चयकर्मक्षयात्मन उपलब्धेः प्राप्यात् मोक्षः स्यात् । अत्र आस्यात्मनः स्वात्मप्रदेशस्थितिविधिविषये सकलकर्मक्षयसम्बन्धकर्म-हानिः स्यात्—अस्यार्थः —स आत्मनात्मप्रदेशानां स्थिते विषयभूतान्तर्गत आत्मनात्म-प्रदेशमुक्तस्य स्थितौ स्वात्मस्वभावके तस्मिन् विषये विविधं नानाप्रकारं विधिविधानं स्थित्यपकर्षसम्बन्धादिरूपस्य मार्गस्य धानसार्थे तस्मात् । मूलप्रकृत्युत्तरप्रकृतिदर्शनावरणी-यादिकर्मकाय संपरेतस्य ज्ञानादिकमुभयं चेति कर्मणां पर्यायस्य च हानिः स्वयमेव कर्महानिः अथ च मनुष्यभवपर्यायशरीरहानिः स्यात् । अथ च तत्पर्यायपर्यन्तमनन्तगुणो वृद्धिः स्यात् । तत्र तस्मिन् परमात्मनि पश्चेऽन्तर्मुहूर्तमात्रे । विस्तरं विस्तारार्थ-मध्यवर्तितत्त्वम् । 'एकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात्' इति वचनात् । अथवा तत्पर्या-यवर्तित्वेनेव कर्मणां क्षये सति तत्र विस्तारः स्यात् । 'सम्यग्ज्ञानदर्शनो ज्ञानं ॥' इत्यादि । विमलतया अतिशयेन निर्मलत्वात् गुणाः ज्ञानादयः निरवशेषेण उत्पत्ति स्थिति यावत् । केवलज्ञानकेवलदर्शनवीर्यगुणोत्पत्तिः स्यादित्यर्थः । अथ च परमपर शीघ्रं पूरणं स्यात् ।

अनन्तधर्मं सदयं ह्यतीन्द्रियं, ज्ञानादिभोधामकलङ्कमक्षयम् ।
श्रुतेऽपवर्गमणिपेतुमर्हति, पदार्थतत्त्वं भवतार्पयन्त्वय ॥२॥ इन्द्र
नमोऽस्तु तुभ्यं जगदम्ब भारति, प्रसादधाम कुरु मां हि किंकर ।
तव प्रसादादिह सर्वनिर्णयं, यथास्वैर्याथ विदधे स्वसंविदे ॥३॥
माद्यः संतानवर्ती भवभवजनको द्रव्यकर्मोपधातु-
स्वर्गोद्यानप्रसूतिर्विपिनमिव सत्तु *भवभीते न यस्त ।
माहसांभ्रमयुक्ता रागोद्गमयुवास्य×परिभावत्स्तुतिप ।
गच्छत्स्वपात्मकं प्रगुमणिपरपरिगम्यापनान्य चितोऽस्त्वंस् ॥४॥

१ [illegible] । [illegible] " [illegible] ।
२ समर्थं [illegible] " [illegible] " [illegible] ।
[illegible]
[illegible] । " [illegible] । [illegible]
[illegible] " । [illegible] । ३ [illegible]
[illegible] । ४ [illegible]
[illegible] । ५ [illegible] । ६ [illegible]
[illegible] । ७ [illegible]
[illegible] । ८ [illegible] । ९ [illegible] । १० [illegible]
[illegible] । ११ [illegible] । १२ [illegible] । १३ [illegible] । १४ [illegible]
१ [illegible] । १६ [illegible] । १७ [illegible]
[illegible] । १८ [illegible] । १९
[illegible] । २ [illegible] । २१ [illegible] ।

[illegible] इत्यपि ।
* [illegible] इत्यपि । × [illegible] इत्यपि ।

तत्त्वार्थानां स्वभावाद् ध्रुवविगमसमुत्पादसम्भ्रमभाजां
तत्सम्यक्त्वं वदंति व्यवहरणनयात्कर्मनाशोपशान्तेः ॥ ७ ॥
यथाऽह् निर्मलस्या दृगवगमपरिभाग्सिामान्यरूपो
धैर्यैपर्किविद्यामीति पनुगुणिगुणवीर्विलेक्ष्म परं तत् ।
धर्मं चाधर्ममाकाशरैस्थसमगेपद्रव्यजीवान्तरोणि

प्रमाणं इति मन्यते । केचित्तु सन्निकर्षः प्रमाणं इति मन्यन्ते । सन्निकर्षं इति चेदुच्यते । इन्द्रियं विषयस्य तयोः संयोग सन्निकर्षः तदुभयमपि नियतं तु मणिमुक्ता- वत्यादि सूक्ष्मसिद्धं अप्रमाण्यादिसूक्तम् । १८ अनुमितिकरणमनुमानं तस्मादनुमान- प्रमाणात् । अत्र परोक्षप्रमाणं मतिश्रुतद्वयं बोद्धव्यम् । किमर्थं परोक्षं इति चेदुच्यते इन्द्रियानीन्द्रियाणि पराणि प्रकाशादिकं च आदिग्रहणात् गुरूपदेशादिकं च परं । मतिश्रुतज्ञानावरणक्षयोपशमस्य परं उच्यते । तत्परं पराधीनमपेक्ष्य आत्मन उत्पद्यते यज्ज्ञानद्वयं तत्परोक्षम् । इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं मतं । श्रुतमनिन्द्रियस्य " इतिवचनात् । अवग्रहादिभेदावायधारणा अवग्रहम् । १९ पूर्वं दर्शितं तत् गुणा- श्च गुणिनश्च तेषां निर्वाणिनिर्विरत्वं तेन पुर्व । २ गुणैर्निर्विशेषत्वं इतिमित्याद्यं पुरुषम् ।

१ नवतत्त्वानां पद्द्रव्याणां वा । २ ध्रुवत्वेन धौव्यं विगमस्तत्र व्ययः समु- त्पादस्तमेवोत्पादस्तस्तेषु लक्षण विद्धे तत्सम्मतीति तेषामिति । ३ मनाक् सतः उप- शमिकस्यमो वा सत्योपशान्तिः क्षयोपशम इत्यत्र उमयलक्षणे परिगृहीतमिति । ४ पुण्यविहोऽहम् मिश पुद्गल शरीरादिर्भिन्न इति भावः । ५ दर्शनज्ञाना दिसाविसमान्यरूप. । ६ दीर्घं निरूपेन । ७ पुद्गलाश्रव्यात्मान्तरम् । ८ प्रति- भाति । ९ यद्यपि गुणिनो द्रव्यापास्त तेषां गुण्यश्च तस्मिन् गुणसामान्यादीन् वेदयन- मिति । १ प्रवर्तन् ११ । भिन्नम् । १२ अन्यत् । १३ अत्र लक्षणं द्रव्यलाक्ष. रसा पंचे अक्षे वीर्यें तिष्ठति द्रव्यरतयो " रिति मेदिनीकोशः । १४ गुणे अपि व्यवहारनयेन गन्धः संज्ञा यस्मिन् तत्पुद्गलकं तत्मार्गं च तद्द्रव्यं च पुद्गलद्रव्यं कालद्रव्यं इत्यर्थः । १५ जीवोऽन्तरो मध्ये यस्मिन् तज्जीवांतरम् पुद्गलद्रव्यमिति । यथाद्द्रव्यः धर्म । आकाशस्य पुद्गलद्रव्यं च जीवांतरं वेत्ति ।

स्याच्छुद्धात्मोपलब्धौ परमसमरसीभावपीयूषतृप्ति
शुक्लध्यानादिभावापरकरणतनाः संवराभिर्भरायाः ॥ ५ ॥
सम्यग्ज्ञानदृष्टं त्रितयमपि युतं मोक्षमार्गो विमुक्ता–
स्तर्वे स्वात्मानुभूतिर्भवति च यदिदं निश्चयाच्चस्वरूपैः ।
एवंभूतं च ज्ञात्वा निश्चयमिति समये स्वात्मैतत्त्वं निर्णीय
या निर्भेदोऽस्ति भूयस्स नियतमेव निर्वाणमोक्षमार्गो भवेति चात्मा ।६।
यच्छ्रद्धानं जिनोक्तस्य नैयमसमनात्समयोणाद्वार्थ्या–
स्त्वपेक्षाभावानुमोनात् क्रोडगुणगुणिनिर्णीतिपुक्तं सम्यक्त्वम् ।

१ सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि चारित्रमेव अवलम्ब्य । २ स्वात्मदर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः । निश्चयतस्त्रितयमय आत्मा एव । तदुक्तम्—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र मोक्षस्य कारणं भवेत् । व्यवहारात् निश्चयतो तत्त्रितयमयो निजात्मा । ३ स्वात्माभिमुखम् । ४ उपचरितत्वादि । ५ स्वात्मावलम्बनार्थे । ६ आदिष्ट । कोऽपि सम्यक्त्वं इतिवादिनः । ७ सीमा । ८ स्वात्मस्वरूप ... पुरुषार्थसिद्धिनिर्भेदोऽस्ति । ९ पुनः । १० निश्चयेन । ११ मोक्षम् । १२ प्राप्नोति । १३ निजात्मानुभूतिरूपस्य ... । १४ समयसारे ... सम्यग्दर्शनम् । १५ निर्विकल्पकसमाधानम् ... सहितम् । १६ ... । १७ ... अस्मिन् आत्मा ... । ... । "प्रत्यक्षम्" इति ... प्रत्यक्ष प्रमाणं भवति । ... इति ... भवति । ... । परमं पुरुषम् ... इति । ... । तस्मात् ... । ... किम् । ... ।

× भूयान् इ पाठः ।

तस्यार्थानां स्वभावात् ध्रुवविगमसमुत्पादलक्ष्मभाजां
तत्सम्यक्त्वं यदेति व्यवहरणनयात्कर्मनाशोपशान्त्यै ॥ ७ ॥
एषोऽयं निर्मलस्मो दृगवगमपरिभादिसामान्यरूपो
मन्यैर्यास्किंचिदर्थानीति बहुगुणिभिर्गुणैर्भिर्विलक्ष्म 'परं तत् ।
धर्मे चाधर्मेमाकाशवरेसेपुद्गलगेष्वद्रव्यजीवांतरेऽपि

प्रमाणं इति मन्यन्ते । केचित्तु संनिकर्षः प्रमाणं इति मन्यन्ते । संनिकर्षं इति चोऽर्थः ? इन्द्रियं विषयस्य तयोः संबंध संनिकर्षः तद्गुणमपि निराकर्तुं मतिश्रुता-भ्यादि सूत्रसिद्धं अवाप्यादिसुक्तम् । १८ अनुमितिकरणमनुमानं तस्मात्तनुमान-प्रमाणात् । अत्र परोक्षप्रमाणं मतिश्रुतद्वयं बोद्धव्यम् । किमर्थं परोक्षं इति चेदुच्यते इन्द्रियानीन्द्रियमपि पराणि प्रकाशादिकं च आदित्यप्रकाश गुरूपदेशादिकं च परं । मतिश्रुतज्ञानावरणक्षयोपशमस्य परं उच्यते । तस्मात् बाह्यहेतुसमेतस्य ज्ञानस्य आत्मनः उत्पद्यते यज्ज्ञानं तत्परोक्षम् । इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं तत् । ' श्रुतमनिन्द्रियस्य इति वचनात् । ज्ञानमयोऽयमात्मात्मस्वभावा अमूर्ताः । १९ इत्थं रचितं तत् गुणस्य गुणिनस्य तेषां निर्मापितं तेन गुणं । २ गुणैर्भिर्लक्ष्यमाणैर्भिरन्यैर्गुणम् ।

१ नवतत्त्वानां बहुत्वाना वा । २ गुणवत्त्वेन तेषां विषयत्वेन भवन् समुत्पादलक्ष्मैनोत्पादस्तदेव जन्म सिद्धं तत्प्रभवंति तेषामिति । ३ नाशः क्षयः उपशमिरुपशमो वा नाशोपशान्तिः क्षयोपशम इत्यत्र सम्यक्त्वत्रयं परिगृहीतमिति । ४ पुनरूपितोऽयम् मिथ पुद्गलस्य शरीरादिविभिन्न इति भाव । ५ दर्शनज्ञाना दिज्ञानादिसामान्यस्य । ६ हीति निश्चयेन । ७ द्रव्यजीवाद्यन्यान्तरवर्तम् । ८ प्रति-मानि । ९ बहवो गुणिनो द्रव्याणाम तेषां गुणास्य तस्मिन् गुणसामान्यसेवैकपरक-मिति । १ प्रभवत् ११ । विशम् । १२ प्रभवत् । १३ अत्र तत्त्वरूपो द्रव्यानामकः तत्रो धर्मे करे धीर्षे निष्कामी द्रव्यात्मनो रिति भेदिषीभेषा । १४ धुते काले व्यवहारकाले यत्र संख्या यस्मिन् तत्पुरुषाणां तत्काले च तत्पुरुषं च गुणसम्प्रत्यं कालकस्य इत्यर्थं । १५ जीवेभ्योऽन्यो मध्ये यस्मिन् तज्जीवांतरम् पुद्गलमित्यर्थ । पञ्चाद्धरः धर्मं । आकाशरसम गुणसम्बन्धं च जीवांतरं चेति ।

मेदः सर्वे हि भिन्नं परपरिणतिरप्यात्मकर्मप्रभावा ॥ ८ ॥
निमित्तेनेतीह सम्यग्विगतसकलसंगमोहभावः स जीव ।
सम्यग्दृष्टिर्भवेद्भिन्नयननयकथनातिसंदेहकल्पस्य किंचित् ।
यथास्मा स्वात्मतत्त्वे स्थितनिखिलभेदैकज्ञानी समाधि
साक्षात्सद्दृष्टिरेवायमथ विगतरागश्च लोकैकपूज्यः ॥९॥ युग्मम्.
जीवाजीवादितत्त्वं जिनवरगदितं गौतमादिप्रयुक्तं
चक्रीबाधादिमुक्तं सदर्थतविपुलसूर्यादिगीतं यथावत् ।
तत्त्वज्ञानं तथैव स्वपरभिदमलं द्रव्यभावार्थदक्षम्
संदेहादिप्रमुक्तं व्यवहरणनयात्संविमुक्तं रगादि ॥ १० ॥
स्वात्मन्येवोपयुक्तः परपरिणतिभिश्चित्रगुणग्रामदर्शी
चिच्चित्पर्यायभेदाधिगमपरिणतस्त्वाद्विकल्पापेक्षाः ।
सः स्यात्सम्यक्त्वचंद्रः परमनैयगतत्वाद्विरागी कथंचि-
च्चेत्रास्मन्यच भवन्त्यैसकलनयो वास्तवज्ञानपूर्णः ॥ ११ ॥

---

१ भवत्स्व । २ जीवाजीवमन्योन्यापेक्षिणानीति । ३ निश्चये मोक्षाय यस्य दशा । ४ जिनवरेण गदितं कथितमिति । ५ तस्तु गौतमगणिभिर्गणधरैः प्रयुक्तं प्रकाशरूपेण गुम्फितम् । ६ सूरिभिराचार्यैः कथितमिति । ७ यथा-स्वरूपेण गीतं वेदितमिति । ८ त्रिभेदेन चेतना । ज्ञानचेतना सकर्मचेतना-मिति ज्ञानचेतना अनुभवस्वभावमिति चेतनं ज्ञानचेतना । द्विविधा कर्मचेतना चेतना च । तत्र ज्ञानस्वभावमहं करोमीति चेतनं कर्मचेतना । ज्ञानस्वभाव चेत-येऽहमिति चेतनं ज्ञानचेतना । तत्र ज्ञानचेतना सिद्धानां भवति । संसारिजीवानां मध्ये तु भवतः ज्ञानचेतना चेति ज्ञानादिभावेन चेतनास्य भवतो भेदा ज्ञेयास्तेषाम-भिन्नो ज्ञानं तत्र परिणतत्वादिति । ९ भेदज्ञानेन । १० तत्रज्ञानतो निश्चय-ज्ञानम् । ११ मिलनस्वभावात् । १२ सर्वपक्षपातरहित ।

क्ष मिस्सविदृस्वार्थे नेन्नु समर्समये सममस्तस्वतः स्या-
दक सहैव दृयामा तदस्विलसमयानां च निर्णीतिरेव ।
दार्म्यामवाचिस्वपोद्धिपि मतिरिह "पचैव भक्तिर्दृयात्स्या-
त्संविन्मोक्ष हि पोपो रुचिरतिविमला सैव सौ सदृंगव ॥१२॥
पर्वोचारादिरूपं दृगेषगमयुतं सर्वेचरिम च भक्त
द्रव्यानुष्ठानहतुस्तदनुगतमहारागभाव कथंचित् ।
भदर्शनानुभावादुपशमितकषायमकर्पस्वमावो
भावा जीवस्य सः स्यात्परमनपगतः स्याच्चरित्र सरागम् ।।१३।
स्वात्मज्ञान निलीनो ' गुण इव गुणिनि त्यक्तसवमपंचा
राग' कश्चिव युद्धौ खलु कथमपि वा शुद्धिमः स्यात्तु तस्यै ।

१ वो भग । २ ज्ञानदर्शनमया । ३ नन्विति वितर्के । ४ समः सम्यग् समन्तः गम इति समममयस्तस्मिन् । ५ सम्यक्त्वम् । ६ समस्तान्यमताभिन्नस्तानाम् । ७ निश्चयमेव । ८ ज्ञानरूपमाम्यामेव । ९ विशेषा भेदस्तेन रहितम् । १ ज्ञानदर्शन इयात् । ११ ज्ञानमात्रे । १२ भद्रा । १३ बोधे । १४ भद्रा । १५ सम्यग्ज्ञानमेव । १६ पंचविधमाचारं दर्शनज्ञानचारित्रतपोवीर्यभेदात् अपरिग्रहन्वेन ज्ञान पतयति रूपमा चारित्रपरिक्रिया इत्यादिके परिमाणं तीरव श्री स्वरूपं यस्य तत् । १७ दर्शनज्ञानमनुगतम् । १८ सम्यक्चारित्रम् । १९ वेदितं सत् भक्तिर्विमाने सवावाप्तिनि मेदिनी । २ द्रव्यस्यात्मनोऽनुष्ठानं भाविष्ठानं प्रमादरहितस्य हेतुः । २१ महता भवेन । २२ भेदविज्ञानप्रभावात् । २३ उपशमितः कषायानां प्रकर्षो येनकस्य स्वभावो येन सः । २४ वा भाव । २५ एतम्भवाणचारित्रमधर्व प्रति पदितम् । २६ नितरां लीना निलीना । २७ त्यक्तः सर्वः प्रपंचो विस्तारः सैवाप प्रतारश्च वा येनासौ त्यक्तसर्वस्वसम्पर्कादादरानुष्मिनात्मनि इत्यवरा तत्रलीनात्मा प्रमादेन रहितः । ' प्रपंच' संचयेऽपि दयाद्विस्तार च प्रतारणे " इति मेदिनी । २८ वा अथवा । २ शुद्धिमः शुद्धिर्भिन्ना दशा । ३ हितो स्वरूपे । ३१ मुनेः ।

येन सभावप्रमेयात् इत्यपि ।

मुख्यत्वाच्च हि गौणं यतिवरवृषभाः स्याद्विपायस्तुसंवि
सच्चारित्रं विरागं यदि खलु निगमस्सोऽपि साक्षाद्विरागम् ॥१४॥

इति श्रीमदध्यात्मकमलमार्तण्डाभिधाने शास्त्रे मोक्षमोक्षमार्गलक्षण-
प्रतिपादकः प्रथमः परिच्छेदः ।

---

१ [illegible] । २ यतिवराणां मध्ये वृषभाः श्रेष्ठाः । ३ [illegible] । ४ सोऽपि [illegible] तथा । ५ साक्षात् वीतरागं चारित्रम् ।

द्वितीय परिच्छेद



*जीवाजीवास्रवबन्धौ किल संवरश्च निर्जरणं ।
मोक्षस्त्वेव सम्यग्दर्शनसद्भावविषयमखिलं स्यात् ॥ १ ॥
*आस्रवबन्धांतर्गत पुण्यं पापं स्वभावतो न पृथक् ।
तस्मान्नादिष्टं स्वच्छ तत्त्वज्ञा सूरिणा सम्यक् ॥ २ ॥
जीवमजीवं द्रव्यं तैश्च तेष्वन्य भवंति नीतोऽन्या ।
चिद्पुद्गलपरिणामाः केचित्सयोगजाश्च विभजनमाः ॥ ३ ॥
द्रव्याण्यनाद्यनिधनानि सदात्मकानि
स्वात्मस्थितानि सदकारणवन्ति नित्यम् ।

१ आस्रवश्च बन्धश्च तयोर्द्वन्द्वेऽन्यर्थं मध्यपदमिति आस्रवबन्धौ तर्फेवम् । २ ज्ञानादिभेदैरनेकप्रकारा चेतना सा अस्ति यस्यासौ जीवस्तद्विपरीतोऽजीवः । ३ जीवाजीवयोः । ४ जीवाजीवास्त्रयमध्ये । ५ शुभाशुभकर्मागमद्वाररूपश्च आस्रवः, आत्मना कर्मणश्च परस्परप्रदेशानुप्रवेशलक्षणो बन्धः । आस्रवनिरोधलक्षणः संवरः । एकदेशकर्मसंक्षयलक्षणो निर्जरा । सर्वकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः । ६ अन्ये जीवपुद्गलयोः स्वभावाः । ७ आत्मनश्चेतसुरूपाः संयोगजाः पुनः केचित् संवरनिर्जरामोक्षा विभज्य-नयाश्चेति भावाः । ८ यथास्वं पर्यायैर्द्रूयन्ते द्रवन्ति वा तानि द्रव्याणि । ९ आद्यन्त-रहितानि । १० सत्सत्त्वं आत्मा स्वरूपो येषां तानि सदात्मकानि । ११ स्वस्वात्मनि स्थितानि स्वात्मस्थितान्यवर्थं ।

*एतौ श्लोकौ अमृतचन्द्रविरचिते (१–११ ११) अपि श्लोकेते ।
*आस्रवबन्धपुरिदं इत्यपि ।

एकम संस्थितमपृथगपि विभक्तस्य–
　　लक्ष्माणि तानि कथयामि यथास्वशक्ति ॥ ४ ॥

गुणपर्ययवद्द्रव्यं विगमोत्पादध्रुवत्वमथवापि ।
सल्लक्षणमिति च स्याद्द्वाभ्यामैकेन वस्तु लक्ष्येत ॥ ५ ॥

अन्वयिनः किल नित्या गुणाश्च निर्गुणावयवो (वा) ह्यनन्तांशाः ।
द्रव्याश्रया विनाशप्रादुर्भावा स्वशक्तिभिः शश्वत् ॥ ६ ॥

सर्वेष्वविशेषेण हि ये द्रव्येषु च गुणाः प्रवर्तन्ते ।
ते सामान्यगुणा इह यथा सदादि प्रमाणतः सिद्धम् ॥ ७ ॥

तस्मिन्नेव विवक्षितवस्तुनि मग्ना इहेदमिति चिज्ज्ञाः ।
ज्ञानाद्यो यथा ते द्रव्यप्रतिनियमिनो विशेषगुणाः ॥ ८ ॥

व्यतिरेकिणो ह्यनित्यास्तत्काले द्रव्यतन्मयाश्चापि ।
ते पर्याया द्विविधा द्रव्यावस्थाविशेषपर्यायाः ॥ ९ ॥

एकानेकद्रव्याण्येकानेकप्रदेशसपिण्डः ।
द्रव्यप्रपर्यायोऽन्यो देशावस्थान्तरे तु तस्माद्धि ॥ १ ॥

---

१ वस्तुस्वभावेनाविभक्तान्यपि [illegible] न पतन्ति । २ स्वशक्तिमनतिक्रम्येति यथास्वशक्ति । ३ गुण्यन्ते विशिष्यन्ते पृथक्क्रियन्ते द्रव्यं द्रव्यान्तरात्तैस्ते गुणाः पर्येति पर्ययः स्वभावविभावरूपतया परिणामविशेषः । गुणाश्च पर्ययाश्च गुणपर्ययाः तेऽस्य सन्तीति गुणपर्ययवद्द्रव्यमिति । अत्र मतुप्प्रत्ययो नित्ययोगे [illegible] । ४ द्रव्यस्य [illegible] [illegible] [illegible] स्वजात्यपरित्यागेन [illegible] उत्पादः । तथा पूर्वभावविगमो व्ययः । अनादिपारिणामिकस्वभावेन व्ययोदयाभावात् ध्रुवति स्थिरीभवतीति ध्रुवस्तस्य भावो ध्रौव्यं ध्रुवत्वं वा । ५ पूर्वोक्ताभ्यां लक्षणाभ्याम् । ६ द्वयोर्मध्येऽन्यतरेण वा । ७ गुणेभ्यो निष्क्रान्ता इति निर्गुणाः निर्गुणा अवयवाः [illegible] येषां ते निर्गुणावयवाः । ८ अनन्ता येषां अविभागप्रतिच्छेदा भेदा ते । ९ द्रव्यप्रमाणो भेदो ते ।

या द्रव्यान्तरसमितिं विनैव यस्तामदृक्षसपिण्ड॰ ।
नैसर्गिकपर्याया द्रव्यज इति यपर्यैव गद्विस स्यात् ॥ ११ ॥
द्रव्यान्तरसयागादुत्पन्ना दृगसंघया द्वयम ।
यमादिकपर्याया द्रव्यम इति जीवपुद्गलयोः ॥ १२ ॥
एकैकस्य गुणस्य हि येऽनंतांशा प्रमाणतः सिद्धाः ।
यया हानिवृद्धिर्वा पर्याया गुणात्मका स्युस्त ॥ १३ ॥
पर्मनरण हि य भावा पर्मोगात्मका (हि) द्रव्यस्य ।
द्रव्यांतरनिरपक्षास्त पयायाः स्वभावगुणतनवः ॥ १४ ॥
अ यद्द्रव्यनिमित्ताय परिणामा भवति तस्यैव ।
घमद्वारण हि त विभावगुणपर्या (य) या द्वयारेव ॥ १५ ॥
यैभिस्यग्ययविगमस्यैति द्रव्य पुन्ति नयकार्ये ।
अन्यः पयपभवनैर्धर्मनरण शाश्वत द्रव्यम् ॥ १६ ॥
बहिरंतरगसाधनसद्भाव सति यथा •गैरसादिषु ।
स्यावस्यान्तरा हि प्रादुर्भाव पगादिषम मनः ॥ १७ ॥
मनि फारण यथास्म द्रव्यावस्यांतर हि गनि नियमान् ।
पूर्वावस्याविगमा विगमश्चर्नाह मक्षिना न सम ॥ १८ ॥
पूर्वावस्याविगमेऽपुनरपयापममुत्पाद हि ।
उभयावस्थाम्यापि च तत्रावाम्ययमुराण मभिन्यम् ॥ १० ॥
सद्द्रव्य गय गुण॰ गत्पपाय स्यम्यणाझिया ।
गपामराम्मित्वं गर्व द्रव्यं प्रमाणन सिद्धम् ॥ २० ॥
धाम्याम्यादविनाभा भिमा स्याग्नर्थपिद्धिनि नयन ।
युगपत्गनि विविधं स्याद्द्रव्य नमूर्तगिरिह मर्यान् ॥ २१ ॥

सम्मत्त हर्णी ।

अविनाभावो विगमप्रादुर्भावध्रुवत्रयाणां च ।
गुणिगुणपर्यायाणामेव यथा युक्तितः सिद्धम् ॥ २२ ॥
स्वीयाच्चतुष्टयादिह सदिति द्रव्यं यथार्पितं गदितम् ।
परकीयादिह तस्मादसदिति कस्मै न रोचते तदिदम् ॥ २३ ॥
एकं पर्ययशक्तैः सममदेशैरभेदतो द्रव्यम् ।
गुणिगुणभेदाभिधयाद्यनेकमपि न हि विरुद्धमेतत् ॥ २४ ॥
नित्यं त्रिकालगोचरधर्मत्वात्तत्त्वमभिन्नवस्तुवदपि ।
क्षणिकं कालविभेदात्पर्यायनयात्क्रमाणि सर्वैः ॥ २५ ॥

इति श्रीमदध्यात्मकमलमार्तण्डाभिधाने शास्त्रे द्रव्यसामान्य-
लक्षणसमुद्योतको द्वितीयः परिच्छेदः ।

तृतीय' परिच्छेद ।

मीरा द्रव्यं ममितिविपर्य तद्गुणाश्चरयनन्ताः
पर्यायास्त्व गुणिगुणमवास्त च शुद्धा यशुद्धा ।
मस्यक्ष स्युस्तद्खिलनयार्थानमथ स्वरूपम्
नैषां मस्ये परमगुरुताऽहं च किंचिज्ञ एव ॥ १ ॥
प्राणैर्जीवति या हि जीवितपरः जीविष्यतीह ध्रुव
जीवः सिद्ध इतीह मसणवलास्माणास्तु मतानिनः ।
भावद्रव्यविभक्तता हि यद्गुणा मेना कथंचित्त्व
साक्षात् शुद्धनय मगृष विमम्ना जीवस्य तै चतना ॥ २ ॥
मैस्यातीनमद्वास्तद्नुगनगुणाम्तरूपा चापि भावा
एतद्द्रव्यं हि सर्वं चिदभिदधिगमार्थतुर्जीरन्यादिपुन ।
मवस्मिमेव युद्धिः क इति हि यथा मापत माणभामा
घृस्य मस्य मवेति मवरमतिपुनः कापि धाम्न न पाढः ॥ ३ ॥
जीवस्य यथार्थ विविधविविधपुर्ण सवद्नपु पाव
ज्ञाव' कमभमातं परिणमति यन शुद्धमनम तावत् ।
मावापसाविशुद्धा पवि स्वस्तु विगर्मदृपानिरर्थमद्नः
मासाद्द्रव्य हि शुद्धं यदि कपयपि या पानिवमानि नश्येत् ॥४॥
मम्पार्णीनममेनपु युगपदनिर्न विभेदाभिन्निना
ध्न गामान्या विधपा परिणमनभयानकभद्नभद्रा ।

नित्याज्ञानादिभावाभिद्गमकरा युक्तिपाश्रमभिमाः
भीसर्वैर्गुणास्ते सद्युक्तिवपुषा ज्ञात्मतत्त्वस्य तस्मात् ॥ ५ ॥
मुक्तौ कर्मसमुक्तौ परिणमनमन्यः स्वात्मधर्मेषु यश्च
धर्मोऽसौ स्वकीयाद्गुणगुणतः स्वागमात्सिद्धसत्स्यात् ।
मुक्तेः शुद्धात्मनां हि भवितिविषयास्ते गुणानां स्वभावा
स्पर्याया स्युश्च शुद्धा भवनविगमरूपास्तु हृदय हार्दे ॥ ६ ॥
संसारेऽथ प्रसिद्धे परसमयपति प्राणिनां कर्मभाजां
ज्ञानाद्यत्यादि कर्मोदयसमुपशमाभ्यां क्षयाच्चांचिता या ।
ये भावाः क्रोधमानादि(?)समुपशमाभ्यां सम्यक्त्वादयो हि
वृत्तिभुत्यादिभावाः कुमतिकुलगचारित्र(?)स्यादयश्च ॥ ७ ॥
षड्गुणवृद्ध्यादि चैतद्धि समयपरिणामाश्च संस्थातिरिक्ता ।
सर्वे वैभाविकास्ते परिणतिवपुषा धर्मपर्यायसंज्ञाः ।
प्रत्यक्षादागमाद्वा ह्यनुमितिमतितो लक्षणाच्चैव सिद्ध
स्वस्वस्वान्तः प्रमेयाश्च गतसकलसन्मोहभावैर्विचार्यः ॥ ८ ॥ युग्मं
आत्मासंसर्गात्कद्रव्यपरिणतिर्जीवतत्त्वस्य तस्या
स्पर्याय स्याद्यस्यान्तरपरिणतिरित्यात्मतत्त्वं न्तरा हि ।
द्रव्यात्मा स द्विधोक्तो विमलसमलभेदाद्धि सर्वज्ञगीत-
चिद्द्रव्यासिद्धसद्दर्शी नयविधिमनो रोचनीयः मदर्थं ॥ ९ ॥
कर्माप्राप्य चरमवपुषः किंचिदूनं शरीरं
स्वात्मांशानां तदपि पुरुषाकारसंस्थानरूपम् ।
नित्यं चिद्रीचमनमिति चा कथितं मूर्तिरूपम्
चित्पर्याय विमलमिति चाभिधेयमात्मपर्यगम् ॥ १० ॥

---

१ धनुष्यस्मात्तरस्यको हि एषपि ।

ये देहा देहभाजां गतिषु नरकतिर्यङ्मनुष्यादिकासु
स्यात्मांशानां स्वदेहाकृतिपरिणतिरित्यात्मपर्याय एव ।
द्रव्यात्मा चेत्यशुद्धो जिनवरगदित कर्मसंयोगता हि
देहावस्थांतरश्चेत्यदिवरवपुषि स्याद्विवर्त्यन्तरश्च ॥ ११ ॥
एकोऽप्यात्मान्वयात्स्यात्परिणतिमयता भावभेदाश्रिभाक्तः
पर्यायाथाश्रयाद्वै परसमयरतत्वाद्बहिर्जीवसद्म ।
भेदज्ञानाच्चिदात्मा स्वसमयवपुषो निर्विकल्पात्समाधेः
स्वात्मध्यानांतरात्मा विगतसकलकर्मा स चेत्स्याद्विशुद्धः ॥१२॥
कर्ता भोक्ता कथंचित्परसमयरतः स्याद्विधीनां हि स्वच्छ
रागादीनां हि कर्ता स समस्तनयता निश्चयात्स्याच्च भोक्ता ।
शुद्धद्रव्यार्थिकाद्वा स परमनयत स्वात्मभावात्करोति
स्वेच्छं चैतान् कथंचित्परिणतिनयतो भेदबुद्धयाप्यभेद ॥ १३ ॥
भेदज्ञानी करोति स्वसमयरत इत्यात्मविज्ञानभावान्
स्वेच्छं चैतांश्च शश्वत्पदपरमपद यथैव साऽपि यावत् ।
तावत्कर्माणि बध्नाति समस्तपरिणामान्वितश्च च जीवा
यद्वैनैकेन तिष्ठेत्स परमपदे धर्म कर्ता च तेषाम् ॥ १४ ॥
शुद्धाशुद्धा हि भावा ननु युगपदिति स्वैकतस्त कथं स्यु
रादित्याशुद्धयोस्तमसारिव अद्वयपयार्था विरुद्धस्वभावात् ।
इत्याशंका हि ते धर्म खलु नयवशाद्युगपत्कालेऽपि सिद्धे
स्वैपायेन स्वभावादि करणनयतो जीवतत्त्वस्य भावात् ॥१५॥
सद्दृग्मोहक्षते स्युस्तदुदयमनि(?) भावमणानाम्भिशुद्धा
भावास्त्वत्यायुतकर्मोदयभवपरिणामाभणान्नाश्चशुद्धा ।

१ योरव इत्यपि ।

इत्येव योक्तरीत्या नयनिभजनतो यीय इत्यात्मभावान्
दृष्टिं कृत्वा विशुद्धिं तदुपरितनतो भावतो शुद्धिरस्ति ॥ १६ ॥
संक्लेशासक्तचित्तो विषयसुखरतः संयमादिभ्यपेता
जीवः स्यात्पूर्वपट्ठाऽशुभपरिणतिमान् कर्मभारप्रबाध ।
दानेज्यादौ प्रसक्तः श्रुतपठनरतस्तीव्रसंक्लेशमुक्तौ
तुस्यायासीदभावः शुभपरिणतिमान् सद्विपीनां विधाता ॥१७॥
शुद्धात्मज्ञानदक्षः श्रुतनिपुणमतिर्मोक्षदर्शी सुगापि
चारित्रादिप्रसक्तो विगतसकलसंक्लेशभावो मुनीन्द्रः ।
साक्षात्शुद्धोपयोगी स इति नियमयाभावयायेति सम्य
ग्मोक्षार्थ्य सुत्त स्यायमपिमननतो सद्विकल्पाऽविकल्पः ॥ १८॥
द्रव्यं मूर्तिमदन्यथा हि यदिदं स्यात्पुद्गलः संमतो
मूर्तिश्चापि रसादिभिमयुपी ग्राह्यास्य पंचेन्द्रियैः ।
सप्तभागमत समस्तमिति भो लिंगस्य चोभान्विता
यद्द्रव्य गुणसान्दपर्ययपुतं संसयतो मन्मयम् ॥ १९ ॥
शुद्धः पुद्गलकाय एकपरमाणुः सम्यग्मूर्तिमां
स्तद्भाभितरूपगन्धरससंस्पर्शादियमाम य ।
सच्चायाम भगाय पुद्गलमिति द्रव्यं हि चैतन्यये
सर्वं शुद्धमभद्रपुद्गिव इद चांतातिर्ग सत्यया ॥ २० ॥
रूक्षस्निग्धगुण मन्दगणसंपिण्डी गुणानां मज
स्तथाप्ययमद्भुपर्याऽस्तिसमीपिदं द्रव्य यदुदं च तत् ।
पयापरार्धिरूलीनिर्ता हि गणिभासस्त्यातद्रुषी विधिः ।
मम्यानीतसम समाज्ञयति पानंतमतृष्णी भिपा ॥ २१ ॥

शुद्धकाणुसमाश्रितास्त्रिसमय तत्रैव चाणौ स्थिता
स्तावर' किन्त रूपगधरससंस्पर्शा अनन्तांगिन ।
मूर्तद्रव्यगुणाश्च पुद्गलमया भेदप्रभेदैस्तु ते ।
पनक परिणामिनाऽपि नियमाद्ध्रौव्यात्मका सर्वदा ॥ २२ ॥
पर्याय: परमाणुमात्र इति यच्छुद्धोऽन्वयान्त्य: स हि
रूपादिगुण' प्रदेशचपमा शुद्धस्य मूर्तात्मन ।
द्रव्यस्यापि विभक्तनीतिकथनास्त्यादृक्षव स त्रिधा
सत्त्वांतर्भिदनेकधा भवति सोपीऽति भावात्मक' ॥ २३ ॥
शब्दा बन्ध सूक्ष्मस्थूलौ संस्थानभेदमतमसम् ।
छायातपप्रकाशाः पुद्गलवस्तोरशुद्धपर्याया ॥ २४ ॥
शुद्धेऽणौ खलुरूपगधरससंस्पर्शाश्च ये निश्चिता
स्पर्शा विद्वविधा मिदो हि हरितात्पीता यथाम्रादिवत् ।
गन्धेदात्परिणामलक्षणधर्माद्भेदान्तर सत्यता
पर्याणां परिणाम एव गुणपर्याय स शुद्ध स्थित ॥ २५ ॥
तथाणौ परम स्थितश्च रसरूपरसनगंधात्मका (?)
पर्यङ्कादिविषयकभेदवपुष: पर्यायरूपाश्च य ।
पश्चैति सदा भवति नियमाच्चैनाश्च तथात्मका
पर्याय' सातिनदिरूप इति नाम्नां पर्यायाश्रम (?) ॥ २६ ॥
स्कंधेषु गणुकेष्वपि च गनमशुद्धद्रव्यपर्यायेषु च
य यथा क्रिय रूपगंधरसगंधश्चाश्च तदन्यया: ।
तेषां च स्वभिन्न भिद्यमानत्वपापश्च तत्पुद्गला
पर्यायस्थितिरिष्ट्यन्त इति चाशुद्धस्य पर्यायक ॥ २७ ॥

लोकाकाशमितप्रदेशप्रगुणौ धर्मास्तिकौ संस्थितौ
नित्यौ देशगणप्रकंपरहितौ सिद्धौ स्वतंत्राव तौ ।
धर्माधर्मसमाह्वयाविति तथा शुद्धौ भिदास्ति पृथक्
स्यातां द्वौ गुणिनावथ प्रकथयामि द्रव्यधर्मांस्तयोः ॥ २८ ॥

शुद्धा देशगुणाश्च पर्ययगणा एतद्धि सर्वं समम्
द्रव्यं स्यादिति पर्ययादमूर्तममलं धर्मं ह्यधर्मं च तत्
देशाः किल लोकमात्रगणिताः पिंडीभवंतः स्वयं
पर्याया विमलः स एष गुणिनोऽधर्मस्य धर्मस्य च ॥ २९ ॥

धर्मद्रव्यगुणो हि पुद्गलचितोश्चिद्द्रव्ययोरात्मना
गच्छत्स्थापयतोर्निमित्तगतिहेतुत्वं तयोरेव यत् ।
मत्स्यानां हि जलादिवज्जगति यौगपद्येन सर्वेषु च
प्रत्येकं सकृदेव शब्दनययोगस्यात्मवत्कायवपि ॥ ३० ॥

विशुद्धावयवतोऽस्य पुद्गलचितोऽप्यावासप्रभावं नय
द्धेतुत्वं पथिकस्य मार्गगतवच्छाया यथावस्थिते ।
धर्मो धर्मसमाह्वयस्य गतमाहात्म्यमद्धिः सदा
शुद्धोऽयं सकृदेव शब्दनया स्थित्यस्यात्मवत्कायवपि ॥ ३१ ॥

धर्माधर्मोभयोर्वै परिणमनमहत्त्वलक्षणयोः स्वात्मनैव
धर्मोऽन्यः स्वस्थितागुरुलघुगुणतः स्यात्स्वधर्मेषु मन्यत्
सिद्धास्पर्यायाख्याः प्रतिसमयमय पर्ययः स्याद्द्वयोश्च
शुद्धा धर्माख्यसंज्ञः परिणतिविषयतोऽनादिवस्तुस्वभावात् ॥ ३२ ॥

गगनस्वघनगमनाद्विभरसकलजननिवासस्थानास्पर्गं
त्रिविधमाह कथंचिदसंहितं किल तदयमपीह समन्वयात् ॥३३॥

यावत्स्वाकाशदेशेषु सकलचिदचित्तत्त्वमथास्ति नित्या
तावता लोकसंज्ञा जिनवरगदितास्तत्परे ये प्रदेशाः ।
सर्वे तेऽस्त्यलोकसंज्ञा गगनमभिदपि स्यात्प्रदेशेषु भेद
श्चेदार्थावापलंभाद्द्विविधमपि च तथैव भाष्यते देवा ॥ २४ ॥
भेदातीतप्रदेशा गगनगुणिन इत्याभिधास्तत्र यथा
सत्पर्यायाश्च तत्त्वं गगनमिति सदाकाशधर्मं विशुद्धम् ।
द्रव्याणां चावगाहं वितरति सकृदेवाद्धि यत्तु स्वभावा
द्धर्मोऽपि स्यात्स्वधर्मात्मतिपरिणमनं धर्मपर्यायसंज्ञम् ॥ २५ ॥
गगनानंतांशानां पिण्डीभावः स्वभावता भव ।
पर्याया द्रव्यात्मा शुद्धा नभसः समाख्यातः ॥ २६ ॥
मान्यं द्रव्यं प्रमाणाद्भवति स समयाणु किल द्रव्यरूपो
ह्येकैकप्रदेशस्थित इति नियमात्सोऽपि चैकस्वभावः ।
संख्यातीताश्च सर्वे पृथगिति गणिता निमये कालतत्त्वं
मार्त्तः कालो हि यः स्यात्समयघटिकावासरादि प्रसिद्ध ।२७।
द्रव्यं कालाणुमात्रं गुणगणकलितं चाभिन्नं शुद्धभावं
तच्छुद्धं कालसंज्ञं कथयति जिनपा निश्चयाद्द्रव्यलीनाः ॥
द्रव्याणामात्मना स्यात्परिणमनमिदं वर्तना तत्र हेतु
कालस्यार्थं च धर्मः स्वगुणपरिणतिपर्ययाय एषः ॥ २८ ॥
पर्याया द्रव्यात्मा शुद्धः कालाणुमात्र इति नीतः ।
सानेकसाम्यवधार्मस्थाना रत्नराशिरिव च पृथक् ॥ २९ ॥
पर्याय किम जीवपुद्गलधर्मा या शुद्धशुद्धाख्य
स्थान्यमधमनात्मचं च नहिर्न कर्पकिया अन्यथा

तस्माः स्याच्च परत्वमथापरत्वं मानमथाभिन्नं
तस्मान्मानविशेषणौ हि समयाभिर्भक्तिकामः स यः ॥ ५० ॥
एवं व्यवहृति कालो निश्चयकालस्य गौणि पर्यायः ।
मुख्यः कथंचिदिति तद्विचारणीयं यथोक्तनयवादैः ॥ ५१ ॥
अस्तित्वं स्याच्च षण्णामपि खलु गुणिनां विद्यमानस्वभावात्
पंचानां देशपिंडात्समयविरहितानां हि कायत्वमेव ।
सूक्ष्माणोर्भोपचारात्समयविरहितस्यापि हेतुत्वसत्त्वात्
कायत्वं न प्रदेशप्रचयविरहितत्वाद्धि कालस्य सम्यक् ॥ ५२ ॥

इति श्रीमदध्यात्मकमलमार्तण्डाभिधाने शास्त्रे
द्रव्यविशेषप्रज्ञापकस्तृतीयः परिच्छेदः ।

चतुर्थ परिच्छेद ।

भावा वैभाविका ये परसमयरता कर्मजाः प्राणभाजः
सर्वाङ्गीणाश्च सर्वे युगपदिति सदावर्तिनो लोकमात्राः
ये सम्यग्वैरिकास्ते स्वयमनुमितिताऽन्येन चानैहिकास्तु
प्रत्यक्षज्ञानगम्याः सम्प्रति इति भावाश्रवा भावबन्धः ॥ १ ॥
एतेषां स्युश्चतस्रः श्रुतमुनिकथिता जातयो मर्स्य ताम
न्मिथ्यात्वं लक्षितं तद्व्यविरतिरपि सा यो ह्यचारित्रभावः ।
कालुष्यं स्यात्कषायः समस्तपरिणतो द्वौ च चारित्रमोहः
योगः स्यादात्मदक्षप्रचयचलनता वाङ्मनःकायमार्गैः ॥ २ ॥
चत्वारः प्रत्ययास्ते ननु कथमिति भावाभवा भावबंध
स्त्वैकत्वाद्वस्तुतस्ते बत मतिरिति चेच्चन्न शक्तिद्वयाः स्यात् ।
एकस्यापीह वह्नेर्दहनपचनभावात्मशक्तिद्वयाद्वे
वह्निः स्यादाहकश्च स्वगुणगणबलात्पाचकश्चेति सिद्धेः ॥ ३ ॥
मिथ्यात्वाद्यात्मभावाः प्रथमसमय एवास्रवे हेतवः स्युः
पश्चात्तत्कर्मबन्धं प्रतिसमयसमये तौ भवेतां कथंचित् ।
नव्यानां कर्मणामागमनमिति यदास्ते हि नाम्नाश्रवः स्या
दायत्यां स्यात्स बंधः स्थितिमिति लयपर्यंतमेषो नयोर्भित् ॥४॥
पक्षादौ भेदभावो न परमिह रसोऽप्यागमस्यैव ह्यु
र्यावत्स्यादूसिमपः स्थितिरपि सह तावत् हेतुः स एव ।

सर्वेष्वेवं कषायानपरमिह निदानानि कर्मागमस्य
बन्धस्यापीह कर्मस्थितिमतिरिति यावन्निदानानि भावात् ॥५॥
सिद्धाः कार्म्मणवर्गणाः स्वयमिमा रागादिभावैः किल
ता ज्ञानावरणादिकर्मपरिणामं यांति जीवस्य हि ।
सर्वांगं प्रति सूक्ष्मकालमनिशं तुल्यप्रदेशस्थिताः
स्याद्द्रव्यास्रव एष एकसमये बन्धश्चतुर्धान्वयः ॥ ६ ॥
प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदाच्चतुर्विधो बंधः ।
प्रकृतिप्रदेशबन्धौ योगात्स्यातां कषायतश्चान्यौ ॥ ७ ॥
युगपद्योगकषायौ चिक्कणपटरूपवर्णिताः स्याताम् ।
बंधोऽपि चतुर्धा स्याद्धेतुमतिभिन्नपदशक्तिता भेदः ॥ ८ ॥
त्यागो भावास्रवाणां जिनवरगदितः संवरो भावसंज्ञो
भेदज्ञानाच्च स स्यात्स्वसमयवपुषस्तारतम्यः कथंचित् ।
सा शुद्धात्मोपलम्भः स्वसमयवपुषा निर्जरा भावसंज्ञा
नाम्ना भेदनया स्यात्करणविगतः कार्यनामप्रसिद्धेः ॥ ९ ॥
एकः शुद्धो हि भावो ननु कथमिति जीवस्य शुद्धात्मबोधा
द्भावाख्यः संवरः स्यात्स इति खलु यथा निर्जरा भावसंज्ञा ।
भावस्याख्यस्वतस्तं मतिरिति यदि तन्नैव शक्तिर्द्वयोः स्या
त्पूर्वोपात्तं हि कर्म न्ययमिह विगलेत्तैव बध्येत नव्यं ॥ १० ॥
आस्राम्भंगाभावं गमति रमः पूर्ववद्दमिह नूनम् ।
नाप्यागच्छति नव्यं यथा तथा शुद्धभावतस्तौ द्वौ ॥ ११ ॥
चिच्चिद्भेदज्ञानाभिर्निर्विकल्पात्समाधितश्चापि ।
कर्मागमननिरोधस्तत्कालं द्रव्यसंवरो गीतः ॥ १२ ॥

शुद्धादुपयोगादिह निश्चयतपसश्च संयमादेर्वा ।
गलति पुरा बद्धं किल कर्मैषा द्रव्यनिर्जरा गदिता ॥ १३ ॥
मोक्षो लक्षित एव हि तथापि संलक्ष्यते यथाशक्ति ।
भावद्रव्यविभेदाद्द्विविधः स स्यात्समासतः ॥ १४ ॥
सर्वोत्कृष्टविशुद्धिर्बोधमयी कृत्स्नकर्मलयहेतुः ।
ज्ञेयः स भावमोक्षः कर्मक्षयजा विशुद्धिरथ च स्यात् ॥ १५ ॥
परमसमाधिबलादिह बोधावरणादिसकलकर्माणि ।
विश्लेषम्यो भिन्नीभवति स द्रव्यमोक्ष इह गीतः ॥ १६ ॥
देशैकदेशेन गलेत्कर्मविशुद्धिश्च देशतः सेह ।
स्याभिर्मेरा पदार्थो मोक्षस्यौ सर्वतो द्वयोभिरिति ॥ १७ ॥
शुभभावैर्युक्ता ये जीवाः पुण्यं भवत्यमेवाथे ।
संक्लेशैः पापं तद्द्रव्यं द्वितीयं च पौद्गलिकम् ॥ १८ ॥
ये जीवाः परमात्मबोधपटवः शास्त्रं त्विदं निर्मलं
नाम्नाध्यात्मपयोजभानु कथितं द्रव्यादिविद्भिः स्फुटम् ।
जानन्ति प्रमितेश्च शब्दबलतो यो वार्थतः श्रद्धया
ते सद्दृष्टियुता भवन्ति नियमात्संबोधमाजः सदा ॥ १९ ॥
अर्थाश्चाक्षरसानवर्गेतनयः सिद्धाः स्वयं मानत
स्वाम्नायमतिपादकाश्च शब्दा निष्पन्नरूपाः किल ।
भो विज्ञाः परमार्थतः कृतिरियं शब्दार्थयोश्च स्वतो
मन्ये काव्यमिदं कृतं न विदुषा तद्राजमल्लेन हि ।

इति श्रीमदध्यात्मकमलमार्तण्डाभिधाने शास्त्रे
सप्ततत्त्वनवपदार्थप्रतिपादकश्चतुर्थः परिच्छेदः ।

इति अध्यात्मकमलमार्तण्ड समाप्त ।

एतदधिकमपि उपलभ्यते मूलप्रतौ

कम्मायं फलमेक (का) कज्ज (एवा) ह णाणफलममेक (मयर्मको) ।
चेदयदि जीवरासिं (सी) चदणभावेण तिविहेण ॥ १ ॥
सव्व खलु कम्मफलं थावरकायं (या)
तस्स (सा दि) कज्जजुदं (द) च ।
पाणित्ति विदिक्कता (पाणित्वमतिक्रांता) णाणं विन्दति ते जीवा ॥२॥
तच्चाणेसण काले समयं बुज्झदि सुत्तमग्गेण ।
णो आराहण समये पच्चक्खा अणुहवो जम्हा ॥ ३ ॥
पणमंति सुरासुरवइ पुणं सञ्जइण सव्वजीवाण ।
सुसुइस्स परसुरेण य माराम्मो पत्तया सव्वे ॥ ४ ॥
पण्णवदि (परिणमदि) जेण दव्वं तं कालं (तत्कालं)
तं मयीदि (तन्मयमिति) पण्णवदि (त्वं) ।
तम्हा धम्मो (म्म) प(रि)णदो आदा धम्मो मुणेयव्वो ॥ ५ ॥
ज्ञानाद्धर्ममबुधिर्भवति भुवि भुवां पुण्यपापप्रपंचा ।
ज्ञानात्सौभाग्यपुर्वैर्विबुधमतिपथः प्रार्थितार्थस्य सिद्धिः ।
ज्ञानाल्लक्ष्मीर्विविधा नयविनयगुणैर्ज्ञानतो बुद्धियोगो
ज्ञानाद्यौगस्यनाशस्त्रिभुवनपतिपद ज्ञानतः शुभसिद्धम् ॥ १ ॥
दहति मदनवह्निर्मानसं तावदेव
भ्रमयति तनुभाजां कुग्रहस्तावदेव ।
ग्रसयति गुरुतृष्णा राक्षसी तावदेव
स्फुरति हृदि विवेकी ज्ञानधर्मो न यावत् ॥ २ ॥

शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक् छत्रेण सूर्यातपो
नागेन्द्रो निशिताङ्कुशेन समदो दण्डेन गोगर्दभाः ।
व्याधिर्भेषजसंग्रहैश्च विविधैर्मन्त्रप्रयोगैर्विषं
सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम् ॥ ३ ॥
ज्ञान मदसर्पहरं तेनैव माद्यति तस्य को वैद्यः ।
अमृतं यस्य विषायते तस्य चिकित्सा कथं क्रियते ॥ ४ ॥

अथ प्रशस्तिका

वर्षे वेदाब्धिसिद्धीन्दु (१८४४) मित अमके (?) श्रावणे मासि पूर्वे
कृष्णे पक्षे हि षष्ठ्यां निजविमलकरात्पार्श्वनाथस्य गेहे ।
वृन्दावत्यां नगर्यां व्यसनहरिनृपे श्रीसुरेन्द्रादिकीर्तिः
नाम्ना भट्टारकेन्द्रो शुभपतिमहिताऽमुं लिलेखातिभावात् ॥ १ ॥
जिनादिदासस्य विपश्चितोऽस्य पुस्तात्सुदाव लिपीकृतं मे
शीघ्राशयाज्ञानतया यदशुद्धं यच्चेलिखितं तद्विबुधैर्विशोध्यम् ॥ २ ॥
विपश्चिज्जनसर्वसुखास्याध्ययनार्थं लिपीकृत मया ।



इतिकर्तव्यतामूढः पर्याकुलितचेतसः ।
चिंतयामास चित्ते स्वे भवदेवो नताननः ॥ १७३ ॥
निवृत्त्याथ गृहं यामि किं वा गृह्णामि संयमम् ।
इति संशयदोलायां क्षणं नास्थायि तन्मनः ॥ १७४ ॥
यद्वा दस्यावशिष्टं यत्कार्यं कृत्वानया समम् ।
कांतया दुर्लभान् भोगान् भुंजामीति यथेप्सितान् ॥ १७५ ॥
इदमाकूतं तु मे चित्ते वर्तते स्वमनीषितम् ।
कस्याग्रे कथयाम्यत्र व्रीडयावृतमानसः ॥ १७६ ॥
इदं पदं मुनीशानां दुर्धरं महतामपि ।
अस्मादृशा वराकाः क दृष्टाः कामखगंजकैः ॥ १७७ ॥
अथ चैकं करोम्यत्र गुरुवाक्यमलंघनात् ।
अयं ज्येष्ठो मम भ्राता मायूकल्पापरायणः ॥ १७८ ॥
विमृश्योभयपक्षेऽपि कृत्याकृत्यविशेषतः ।
सन्नस्यः कुधर्मैर्योऽसौ दीक्षामादापयिष्यतः ॥ १७९ ॥
चिंतितं तेन चित्ते स्वे समस्तेन विमृश्यता ।
गमिष्यामि पुनर्गेहं यथाकालमतः परम् ॥ १८० ॥
विमृश्यैतत्सचक्षुः स भवदेवो नताननः ।
अभाषीन्मुनिमुद्दिश्य यथा पूर्वविचारितम् ॥ १८१ ॥
मुने परोपकाराय बद्धकक्ष महातप ।
मयि दीने कृपां कृत्वा देहि दीक्षां स्वमार्हतीम् ॥ १८२ ॥
विज्ञातो मुनिना तूर्णं सावधिज्ञानचक्षुषा ।
गोपयन्नपि दुर्लक्ष्यं स्वामिभावं द्विजोत्तमः ॥ १८३ ॥

१ भवविपाकिता । २ भवसागरात् ।

दीक्षामादातुकामाऽपि विषयं साभिलाषवान् ।
विरागी भवितत्यस्मै दीक्षां भर्दो महामुनि ॥ १८४ ॥
अथादायापि नैर्ग्रंथीं दीक्षां सर्वसमक्षतः ।
दग्ध स्मरानलनति हृदि शल्यमधारयत् ॥ १८५ ॥
मुग्धां सपूर्णतारुण्यां पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।
गृह्याम्यहं पत्नी दीनां मृगाक्षीं तां मुमस्मराम् ॥ १८६ ॥
घनस्तनभरानम्रां कामस्यां पद्मबाधराम् ।
मामृते विरहम्यासां चिंतयन्ती मुहुर्मुहुः ॥ १८७ ॥
एवं चिंतयतस्तस्याजस्रमच्छिन्नधारया ।
स्वाध्यायं ध्यानमप्यतज्ज्ञानमासीत्सदा ध्रुवम् ॥ १८८ ॥
अथैकदा स सौधर्मो गणी सर्वसमन्वित ।
विहरन्नागतो भूयो वर्द्धमानाभिधं पुरं ॥ १८९ ॥
वासायानमन्यासु स्थिता सर्वेऽपि साधवः ।
कायोत्सर्गेण धैर्याद्यं शुद्धाध्यानमिद्धये ॥ १९० ॥
पारणस्य कृते ध्यानादनुग्रामं गतास्तु स ।
भवदेवः स्मृतिमा भाया दृष्टुं मनुसुख ॥ १९१ ॥
पर्येत्यपि चोथ गाभ्यनति स्म स गम्यत ।
अथ भुजामि पत्नीं तां गात्रधारीं गर्वांकुराम् ॥ १९२ ॥
नाग्यमभर्वम्ला वर्षी कामदुपावित ।
मन्यीमिव विना नीपं मामृते विरहातुराम् ॥ १९३ ॥
चिंतयन्निति मार्गेषु प्रमादं ग्राममप्रविशत् ।
गांप्यत्रागतस्ता भानु मर्वांगी च निगीगनाम् ॥ १९४ ॥